गुप्तों के काल के बाद बौद्ध धर्म एवं संस्कृति
(७०० ई. से १२०० ई. तक)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत
इतिहास विषय में पी-एच. डी. उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोधकर्ता

भीम प्रिय अशोक

एम. ए.

निर्देशक

डॉ. अँगने लाल

एम. ए. (गोल्ड मेडलिस्ट), पी-एच. डी., डी. लिट्

प्रोफेसर, प्रा. भा. इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
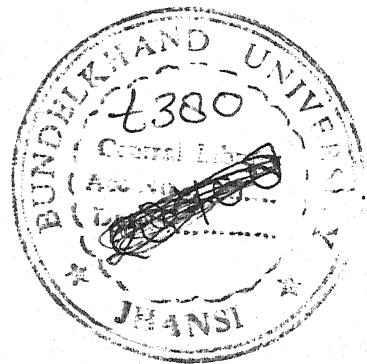
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय

झाँसी

१९९४-१९९५

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी0एच0डी0 उपाधि के लिए श्री भीम प्रिय अशोक के द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध " **गुप्तों के काल के बाद बौद्ध धर्म एवं संस्कृति (700 से 1200 ई0)**" मौलिक शोध-कार्य है । इससे पूर्व इस शोध प्रबन्ध का पूर्ण अथवा आंशिक रूप में कहीं भी प्रकाशन नहीं हुआ है ।

निर्देशक

डॉ0 अँगने लाल
प्रोफेसर, प्रा॰भा॰इतिहास एवं
पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

Dr. A. Lal
M.A.(Gold Medallist)
Sahityaratna, Ph.D., D.Litt.
Professor, Deptt.of A.I History & Archaeology,
Lucknow University, Lucknow.

पुज्यनीया माँ

महाउपासिका अरूणा अशोक (1947–1993)

को

समर्पित

जिन्होने आजीवन डा0 देवी सिंह अशोक का

मार्गदर्शन पाकर वर्तमान बौद्ध धर्म एवं

संस्कृति की महत्वपूर्ण

सेवा की

प्राक्कथन

जिस समय बुद्ध का जन्म हुआ था, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में ज्ञान-मार्गी विचारकों का जोर था। उत्तरी बिहार में ही जनक और याज्ञवल्क्य आदि वैदिक ज्ञान तथा ब्रह्म दर्शक (ब्रह्म विद्या) एवं आत्म दर्शन का प्रचार कर रहे थे क्योंकि वाराणसी के पूर्व का भूभाग अनार्य प्रदेश था।

वैदिक युग के अन्तिम चरण में जो तत्व ज्ञान की लहर जनक और याज्ञवल्क्य के समय मे बह रह रही थी उसी से प्रभावित होकर मनुष्य में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ब्रह्म और आत्मविद्या क्या है ? आत्मा है या नहीं है ? ईसा पूर्व सातवी शताब्दी मे ब्रह्म विद्या एव आत्मा विद्या का प्रचार कुरु पाचाल से लेकर विदेह तक हुआ था।[1] इसी समय हिमालय की तराई (तलहटी) में बसे शाक्य राज्य के राजा शुद्धोदन के यहाँ सिद्धार्थ गौतम का जन्म हुआ। उन्होंने विवाह और एक पुत्र उत्पत्ति के बाद गृह त्याग कर परिव्राजकत्व धारण किया था। भिन्न भिन्न आश्रमो में घूमते तथा आचार्यो से मिलते हुए वह उरुवेल पहुँचे। उन्होने निरजना नदी के किनारे पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान या बोधि (सबोधि) प्राप्त किया। इसीलिए वह ससार में बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए और वह पीपल वृक्ष बोधि वृक्ष कहलाया। गया क्षेत्र के जिस स्थान पर उन्होने ज्ञान प्राप्त किया वह स्थान 'बोध गया' कहलाया। इसका प्रचार कार्य गया से निकल कर सारनाथ से प्रारम्भ हुआ। धीरे धीरे यह मगध, कोसल वज्जिराज्य, काशी तथा वत्स आदि राज्यो मे फैला। महाराज बिम्बिसार से अशोक पूर्व युग तक

---

1. डॉ0 अ0 लाल, भा0 वि0 बौ0 प्रा0 प्राक्कथन, पृ0 2.

में यह धर्म इसी क्षेत्र मे सीमित रहा । परन्तु अशोक के इतिहास में कलिग युद्ध के बाद अशोक का बौद्ध होना इस धर्म के विशेष प्रसार प्रचार का कारण बना ।

बौद्ध धर्म के संगठन तथा प्रचार कार्य में बौद्ध संघ और बौध सभाओ (संगीतियों) का विशेष महत्व रहा है ।

प्रथम बौद्ध सभा

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके वचनो का संकलन करने हेतु मगध सम्राट अजातशत्रु के राज्यकाल में यह बौद्ध सगीति महाकश्यप की अध्यक्षता मे राजगृह में हुई थी । यह सभा बुद्ध धर्म और संघ (त्रिरत्नों) के महत्व को स्थायित्व देने तथा बौद्ध साहित्य का संकलन करने में सफल हुई । अजातशत्रु के बाद कुछ बौद्ध धर्मानुयायियों में मतभेद प्रारम्भ हो गये । इसका उभार वैशाली क्षेत्र के बौद्धों में देखने को मिला । इसका परिणाम ही दूसरी बौद्ध सगीति थी ।

दूसरी बौद्ध संगीति

द्वितीय बोद्ध सगीति बुद्ध के परिनिर्वाण के एक सौ वर्ष बाद कालाशोक (काकवर्ण) के राज्यकाल मे वज्जि जनपद की राजधानी वैशाली (उत्तर विहार) में हुई ।

वैशाली के वज्जि-भिक्षु जिन दस बातो का प्रचार करते थे, वे बुद्ध के उपदेशो, आदेशो तथा विनय-सिद्धान्त के विरुद्ध थीं । यह एक प्रकार का विनय के मूल कतिपय सिद्धान्तो सोना-चाँदी (धन) आदि ग्रहण न करना ताड़ रस (ताड़ी) न पीना आदि की अवहेलना ही थी ।

अधिकाश भिक्षुओ की स्पष्ट घोषणा के विरुद्ध भी वज्जियों ने उनकी बात न मानी और उन्होने अपने दस नियमो को विनय विरुद्ध होते हुए भी स्वीकार किया । यहीं से बौद्ध सघ के दो भेद हो गये 1. स्थविरवाद (या थेर वाद) तथा 2. महासंघिक (वज्जि पुत्रों का मत)।

तीसरी बौद्ध संगीति

अशोक कालीन राज्य और शासन बौद्ध धर्म की उन्नति में पूर्ण रूप से लगा हुआ था। इस महासभा से अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री को लका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने भेजा था। भारत तथा एशिया के अन्य देशो मे भी बौद्ध भिक्षु एवं दूत धर्म प्रचार के लिए भेजे गये थे। इसका परिणाम हिमालय से लंका तक तथा सुवर्णभूमि (लोअर बर्मा) से पश्चिम में हिन्दूकुश पर्वत तक बौद्ध धर्म का प्रसार ही था। अशोक की मृत्यु के बाद बौद्ध धर्म में अवनति होनी प्रारम्भ हो गयी थी। इसका कारण ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान बौद्ध तथा बौद्ध धर्म को राजाश्रय का अभाव था।

इसी समय शुंग सातवाहन काल में ही बौद्ध धर्म मे फिर सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और इसमें भारत के प्राचीन भक्ति धर्म तथा धार्मिक भाषा संस्कृत ने प्रवेश किया। यही महायान महाधर्म था।

यवन-विदेशियों में भी कुछ परम भक्त तथा परम बौद्ध थे। बौद्ध यवनो मे यवन महाराज मिलिंद थे जिनका प्रभाव मद्र देश तक ही सीमित रहा। वे हीनयान के समर्थक थे।

चौथी बौद्ध संगीति

भारत मे चौथी बौद्ध सगीति कुषाण सम्राट् कनिष्क प्रथम के शासन काल मे पेशावर और काश्मीर के कुण्डलवन विहार में सम्पन्न हुई थी। पेशावर सत्र के अध्यक्ष कनिष्क के गुरु भदन्त पार्श्व थे और कुण्डलवन सत्र के अध्यक्ष वसुमित्र थे। इस संगीति का उद्देश्य बौद्ध धर्म को पड़ोसी देशो के लोगो के लिए ग्राह्य बनाना था। पालि त्रिपिटक ग्रन्थो पर संस्कृत भाषा में भाष्य लिखे गये। इस बौद्ध संगीति का परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म की महायान धारा मध्य एशिया एव चीन में भी पहुँची।

इस युग में बौद्ध धर्म और साहित्य के साथ-साथ बौद्ध कला की भी उन्नति हुई बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियां का निर्माण हुआ।

कुषाण युग के क्षीण होने पर ही गुप्त वंश का उदय हुआ । इस युग में पुनः बौद्ध धर्म में सुधार हुआ । इस युग की सबसे बड़ी विशेषता धार्मिक समन्वय और सामंजस्य की नीति थी । फलत बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म एक दूसरे के समीप आये और पारस्परिक विरोधाभास की क्रिया प्रतिक्रिया समाप्त कर धार्मिक एकात्मता स्थापित कर नया प्रयास किया गया और इस प्रकार के सम्पन्न धर्म को परम भागवत धर्म कहा गया । इस काल का बौद्ध धर्म ब्राह्मणी शास्त्रों का विरोधी न था । इस समय बौद्ध धर्म मे दर्शन का जोर था । यही प्रज्ञा दर्शन विकसित होकर प्रज्ञा पारमिता में परिणत हो गया । इस युग मे महायान धर्म का ही विशेष प्रचार था । यद्यपि बौद्धाचार्य बुद्धघोष ने पालि त्रिपिटक ग्रन्थों पर (अर्द्धकथाएं) पालि मे गुप्त युग मे लिखी थी । गुप्त युग की अवनतिकाल मे बौद्धो और ब्राह्मण धर्मियो मे कुछ विरोधाभास प्रारम्भ हो गया । हर्ष के समय कान्यकुब्ज मे सर्व धर्म सम्मेलन के समय ब्राह्मणों द्वारा बौद्ध पूजा गृह में आग लगाना और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ब्राह्मणों का कान्यकुब्ज राज्य से निर्वासन इसी धार्मिक उन्माद को दर्शाता है । स्पष्टत गुप्त शासकों के प्रयास से ब्राह्मण धर्म में बुद्ध को विष्णु का दसवाँ अवतार मान लिया गया । लेकिन यह दिखावा मात्र रहा जैसा कि हर्ष युग की कान्यकुब्ज की घटना से स्पष्ट है । हर्ष के युग में बौद्ध धर्म पूर्वी भारत (बिहार बगाल) मध्य क्षेत्र तथा पश्चिम मे सिन्धु, सौराष्ट्र ओर पंजाब में फैला हुआ था । उसी समय पश्चिमी सीमा पर आक्रमण होने लगे । अपने ही देशवासियो के धार्मिक विद्वेष के कारण बौद्धों को काश्मीर होते हुए तिब्बत भागना पड़ा । इस प्रकार ईसा की सातवी शताब्दी के बाद बौद्ध धर्म का इतिहास इसकी अवनति का ही काल कहा जा सकता है ।

हर्ष और ह्वेनसाग का युग बौद्ध धर्म के इतिहास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण युग था । हर्ष और शशांक के बीच होने वाले संघर्ष की जड में बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म का संघर्ष ही था । कन्नोज मे बौद्ध चैत्य (पूजा घर) को जला देना तथा परिणामतः ब्राह्मणों को हर्ष द्वारा निर्वासित कर देने से इस संघर्ष को और बल मिला । मध्यदेश मे बौद्ध धर्म विशेष उन्नति पर था । मातीपुर मे बौद्ध शासक था । हर्ष के

देहावसान के बाद बौद्ध धर्म की उन्नति में रुकावट आ गयी । कुछ समय तक तो कन्नौज में अंधकार ही छाया रहा । इनके बाद वहाँ (कन्नौज में) यशोवर्मन तथा नागभट्ट द्वितीय आदि प्रतिहार शासक हुए जो ब्राह्मण धर्म को मानने वाले थे ।

बंगाल के पाल शासकों के समय बौद्ध धर्म और कला की विशेष उन्नति हुई । परन्तु इस काल में बौद्ध धर्म को अवनति का भी सामना करना पड़ा ।

आरम्भ से ही महामानव बुद्ध तथा उनके लोक कल्याणकारी उपदेशों में मेरी बड़ी अभिरुचि थी । लेकिन कई वर्ष तक कोई ऐसा उदार मार्गदर्शक गुरु न मिल सका जो इस दिशा में मेरा पथ प्रशस्त कर सकता । मैंने हिम्मत न हारी प्रयास करता रहा और अन्त में श्रद्धेय डॉ0 अंगने लाल, प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ का आशीर्वाद प्राप्त हो ही गया । जब भी अध्याय लिखकर ले गया उन्होंने व्यस्तता हो या अस्वस्थता, उसे वरीयता देते हुये शुद्ध करने का समय निकाला । उनके व्यक्तिगत ग्रन्थालय से इस शोधकार्य में मुझे बहुत सुविधा और सहायता मिली । प्रोफेसर लाल साहब के निर्देशन के अभाव में इस शोध कार्य की सिद्धि कदापि सम्भव न होती । मैं उनका महान आभार मानूँगा ।

दिवंगत पूज्या माता श्रीमती अरुणा अशोक तथा पूज्य पिता डॉ0 देवी सिंह अशोक से निरन्तर प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा । मेरे जीवन में दो लोग हैं जिसमें पहले श्री करन लाल अशोक जिन्होंने सिखाया कि शिक्षा भी ग्राह्य हो सकती है । दूसरे हैं जनाब इरशादुल्ला खान जिन्होंने दर्शाया कि शिक्षक भी विद्यार्थी की नजरों में श्रद्धेय बनकर उसे साधारण से असाधारण बना सकता है । उन गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनका समय काटकर मैंने शोध–प्रबन्ध में लगाया उसी तरह मेरी धर्मपत्नी मंजु अशोक एम0ए0 ने इस मार्ग की पूर्णता में प्रशंसनीय योगदान दिया है ।

अन्त मे नालन्दा महा विहार के अवकाश प्राप्त डाइरेक्टर प्रोफेसर चन्द्रिका सिंह उपासक तथा डॉ0 ए0 बी0 एल0 अवस्थी, टैगोर प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त), प्राचीन भारतीय इतिहास-संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय से समय-समय पर जो महत्वपूर्ण सुझाव प्राप्त होते रहे उनके लिये में कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिन पुस्तकों एवं पत्रिकाओं से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त हुई उनका यद्यपि मैंने यथा स्थान उल्लेख कर दिया है, तथापि उनके लेखकों और सम्पादकों के प्रति में आभारी हूँ।

भीम प्रिय अशोक

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

प्राक्कथन

अध्याय

प्रथम विषय का महत्व तथा अध्ययन के ज्ञान–साधन 1–23

– विषय का महत्व 1
– साहित्यिक साधन 4
– भारत में चीनी यात्रियों की धर्म यात्रा एवं उनके यात्रा विवरण का ऐतिहासिक महत्व 10
– हर्षयुगीन साधन 17
– अल्बरूनी कृत तहकीक–ए–हिन्दी 18
– अभिलेखीय साधन 19

द्वितीय गुप्त युग तक बौद्ध धर्म का सर्वेक्षण 25–41

– बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के कारण 25
– बुद्ध और उनका व्यक्तित्व 28
– बुद्धत्व 30
– बुद्ध की शिक्षाएं 32
– बुद्ध वचनों का संगायन और संचयन 33
– बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार 35
– अशोक और सद्धर्म प्रचार 36
– अशोक के बाद बौद्ध धर्म 37
– कनिष्क द्वारा बौद्ध धर्म प्रचार 38
– गुप्त शासकों का बौद्ध धर्म में योगदान 39

तृतीय बौद्ध–निकाय 42–57

– संघ–भेद की आशंका और बुद्ध वचन संकलन 42
– बौद्ध संघ में पहली फूट 43
– भिक्षु संघ–परिष्कार प्रयास 44
– अठारह निकायों का वर्णन 45

अध्याय | पृष्ठ

चतुर्थ — **भिक्षु और भिक्षुणी संघ** — 58–70

- भिक्षु महत्व 58
- भिक्षु संघ की स्थापना 58
- भिक्षु गुण 59
- भिक्षुचर्या 60
- भिक्षु संघ के नियम : दोष और परिष्कार 62
- संघ–व्यवस्था की गणतन्त्रात्मक विशेषता 63
- भिक्षुणी संघ 64
- भिक्षुणियों के लिये संघीय नियम 65
- भिक्षुणी संघ की महत्ता 65
- गुप्तोत्तरकालीन भिक्षु और भिक्षुणियां 65

पञ्चम — **चैत्य, विहार और संघाराम** — 71–90

- अर्थ और तात्पर्य 72
- महातीर्थ 72
- उत्तरी भारत के बौद्ध मठ एवं विहार 74
- पूर्व देश के विहार एवं मठ 77
- पूर्व–दक्षिण भारत के विहार 83
- दक्षिण पथ और आन्ध्र प्रदेश 85
- पश्चिमी भारत और विन्ध्यवन के मठ और विहार 86
- मध्य देश के मठ और विहार 87

षष्ठ — **उपासक–उपासिकाएँ** — 91–104

- उपासक 91
- राहुल की प्रवृज्या तथा उपासक का स्वरूप 95
- राहुल की शिक्षा 96
- कला और संस्कृति में उपासक–उपासिकाओं का योगदान 97
- कुषाणवंशीय उपासक 98
- गुप्तयुगीन उपासक 98
- वर्द्धनवंशी उपासक–उपासिकाएं 99
- पालवंशी उपासक 100
- महाउपासिका कुमार देवी 101
- राजा जयचन्द्र 103

अध्याय		पृष्ठ
सप्तम	**बौद्ध शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षा केन्द्र**	**105–125**
	– बुद्ध द्वारा शिक्षा पर बल	105
	– बुद्ध विहार अथवा शिक्षण केन्द्र का मूल्य	106
	– बुद्ध क्षेत्र	108
	– पूर्व गुप्त शिक्षण	108
	– ह्वेनसांग और दिवाकर मित्र	110
	– प्रवेश विधि	112
	– विद्यार्थियों के गुण एवं विद्यालय में प्रवेश की योग्यता	112
	– पाठ्य विषय एवं शिक्षण प्रणाली	113
	– गुरु–शिष्य सम्बन्ध	113
	– प्रमुख बौद्ध विद्या केन्द्र	114
अष्टम	**बौद्ध धर्म प्रचार एवं प्रचारक**	**126–151**
	– अशोक का हृदय परिवर्तन और धर्म विजय	127
	– आन्ध्र–सातवाहन युग	132
	– कुषाण–युग	133
	– चौथी बौद्ध सभा	134
	– गुप्त युग में बौद्ध प्रचारक	135
	– भारत में विदेशी धर्म प्रचारक	143
	– हर्ष युग के बौद्ध धर्म प्रचारक	145
	– पालि युग के बौद्ध धर्म प्रचारक	150
नवम	**वास्तुशिल्प, मूर्ति एवं चित्रकला**	**152–173**
	– प्रारम्भिक स्वरूप	152
	– नगर वास्तु	153
	– स्तूप निर्माण	154
	– स्तम्भ	159
	– चैत्य एवं गुहा विहार	160
	– विहार वास्तु	162
	– बौद्ध काला में प्रतीकवाद	167
	– बौद्ध मूर्तिकला	169
	– बौद्ध चित्रकला	172

अध्याय		पृष्ठ
दशम	भारत में बौद्ध पराभव	174–195
	– ब्राह्मण–विद्वेष	176
	– ब्राह्मणधर्मी शासकों द्वारा बौद्ध धर्म की हानि	178
	– साहित्यकारों का विद्वेषभाव	181
	– भाषा परिवर्तन का षडयन्त्र	183
	– ब्राह्मण आचार्यों द्वारा बौद्ध धर्म के विनाश की प्रेरणा	184
	– समन्वयवादी नीति : आत्मसात का प्रारम्भ	185
	– अवतारवाद – एक षडयन्त्र	187
	– समन्वयवाद का कुप्रभाव	188
	– बौद्ध संघ विभाजन	189
	– बौद्ध केन्द्रों का ब्राह्मणीकरण और हथियाना	189
	– राजाश्रय की कमियाँ	191
	– तुर्क आक्रमणकारियों की विनाश लीला	193
एकादश	निष्कर्ष	196–211
	– मूल स्रोतों के अध्ययन की उपेक्षा	196
	– हूण आक्रमण	198
	– कलि–कलह	198
	– मुस्लिम आक्रमण	199
	– बुद्ध अहिंसावाद की आत्मनिष्ठ व्याख्या	200
	– राष्ट्रभाषा हिन्दी के जन्मदाता–सिद्ध सरहपाद	203
	– अठारह निकायों में महायान नहीं	204
	– त्रिपिटक, तृतीय बौद्ध संगीति की देन है	104
	– जयचन्द्र बौद्ध शासक एवं अन्तिम चक्रवर्ती सम्राट	205
	– ब्राह्मण धर्म का द्वेषभाव	206
	– छद्मवेशी भिक्षु	207
	– विचार स्वातन्त्र्य	207
	– कर्मफल की आत्मनिष्ठ व्याख्या	208
	– बौद्ध धर्म की उपादेयता	209

सहायक ग्रन्थ–सूची 212–232

मूल स्रोत ग्रन्थ

– पालि ग्रन्थ 212
– संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ 213
– संस्कृत ग्रन्थ 214

गौण स्रोत ग्रन्थ

– हिन्दी–ग्रन्थ 218
– अंग्रेजी ग्रन्थ 222

चित्र–सूची

1. भारत के प्रमुख बौद्ध केन्द्र (700–1200 ई0) xvii
2. बोधगया 76ए
3. नालन्दा महाविहार 114ए
4. बोधिधर्म 141ए
5. ह्वेनसांग 144ए
6. बैरोचन 146ए
7. अतिश दीपांकर श्रीज्ञान 149ए
8. पद्मसंभव 150ए
9. अवलोकितेश्वर 169ए
10. बुद्ध का महापरिनिर्वाण 170ए
11. ध्यानमग्न बुद्ध 170बी
12. मंजूश्री 170सी
13. पद्मपाणि 170डी
14. बुद्ध–चित्र (गुफा सं0 1), अजन्ता 171ए

संकेत–सूची xv-xvi

***

संकेत–सूची

अ0	:	अध्याय
अ0 इं0	:	अशोक ऐण्ड हिज़ इन्सक्रिप्शन्स (बलाक)
अ0 इ0 म0	:	अर्ली इण्डियन मोनास्ट्रज (ला0 वी0 सी0)
अ0 नि0	:	अंगुत्तर निकाय (पाली टेक्सूट सोसाइटी)
अ0 ति0	:	अतिश एण्ड तिब्बत
अ0 का0 भा0	:	अश्वघोष कालीन भारत (डॉ0 लाल)
अ0 मा0 बु0	:	अर्ली मोनास्टिक बुद्धिज़्म (न0 दत्त)
अ0 वि0 बु0 लि0	:	अर्लियस्ट विनय ऐण्ड दि बिगिनिंग्स ऑफ बुद्धिस्ट लिटरेचर
अ0 हि0 इं0	:	अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ)
ऑ0 यू0 ट्रै0 इं0	:	ऑन यूआन च्वांगस ट्रैवल्स इन इण्डिया (वाटर्स)
इ0 चा0	:	इण्डिया एण्ड चाइना
इ0 कु0	:	इण्डिया अण्डर द कुवाणाज़
इ0 ब0	:	इण्डिया एण्ड बर्मा
इ0 बु0	:	इन्साइक्लोपीडिया ऑफ बुद्धिज़्म
ए0 इ0 क0	:	एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज
ए0 इ0 यू0	:	एज ऑफ इण्डियन यूनिटी (भा0 वि0 भ0)
ऐ0 इ0	:	ऐन्शेन्ट इण्डिया (आर0 सी0 मजूमदार)
ऐ0 जा0 इ0	:	ऐन्शेन्ट जाग्रफी ऑफ इण्डिया (वॉल 2)
कला0 ए0	:	क्लासिकल एज
क0 सु0	:	कलाम सुत्त
चा0 ए0 इं0	:	चाइनीज एकाउन्ट ऑफ इण्डिया
जि0	:	जिल्द
ज्या0 डि0	:	ज्याग्राफ़िकल डिक्शनरी ऑफ इण्डिया (डे0)

दिव्या0	:	दिव्यावदान
दीघ0	:	दीघ निकाय (लखनऊ)
धम्म0	:	धम्मपद
बु0 इं0 अ0	:	बुद्धिज़्म इन इण्डिया एण्ड अब्रॉड
बु0 च0	:	बुद्ध चरित
बु0 भा0 भू0	:	बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
बौ0 ध0 वि0 इ0	:	बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास
बौ0 सं0	:	बौद्ध संस्कृति
भ0 बु0 उ0 ध0	:	भगवान बुद्ध और उनका धर्म
म0 ए0 ची0 भा0 सं0	:	मध्य एशिया और चीन में भारतीय संस्कृति
म0 ए0 भा0 सं0	:	मध्य एशिया और चीन में भारतीय संस्कृति
म0 बु0	:	महायान बुद्धिज़्म
मं0 मू0 क0	:	आर्य मंजु श्री मूल कल्प
रि0 बु0 रि0	:	दि रिकॉर्ड ऑफ बुद्धिस्ट रेलिजन एज प्रैक्टिस्ड
ललित0	:	ललित
स0 पु0	:	सद्धर्म पुण्डरीक
सं0 बौ0 सा0 भा0 जी0	:	संस्कृत बौद्ध साहित्य में भारतीय जीवन
स्ट0 बु0 क0 इ0	:	स्टडीज़ इन बुद्धिस्ट कल्चर ऑफ इण्डिया
ह0 च0	:	हर्षचरित
हि0 लि0 इ0	:	हिस्ट्री ऑफ लिटरेरी इंसक्रिप्शन
हि0 बु0	:	हिन्दुज़्म एण्ड बुद्धिज़्म
ह्वे0 भा0 या0	:	ह्वेनसांग की भारत यात्रा

भारत के प्रमुख बौद्ध केन्द्र
(700-1200 ई०)

कपिशा
पुरुषपुर
तक्षशिला
साकल
जालन्धर
थानेश्वर
दिल्ली
अतरंजीखेड़ा
मथुरा
कम्पिल
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
कन्नौज
अयोध्या
वैशाली
प्रयाग
सारनाथ
पाटलिपुत्र
कौशाम्बी
वाराणसी
विक्रमशिला
नालन्दा
गया
राजगृह
उज्जयिनी
सांची
गिरनार
वलभी
बाघ
ताम्रलिप्ति
अजन्ता
एलोरा
धौली
नासिक
कार्ले
भाजा
अमरावती
काञ्ची
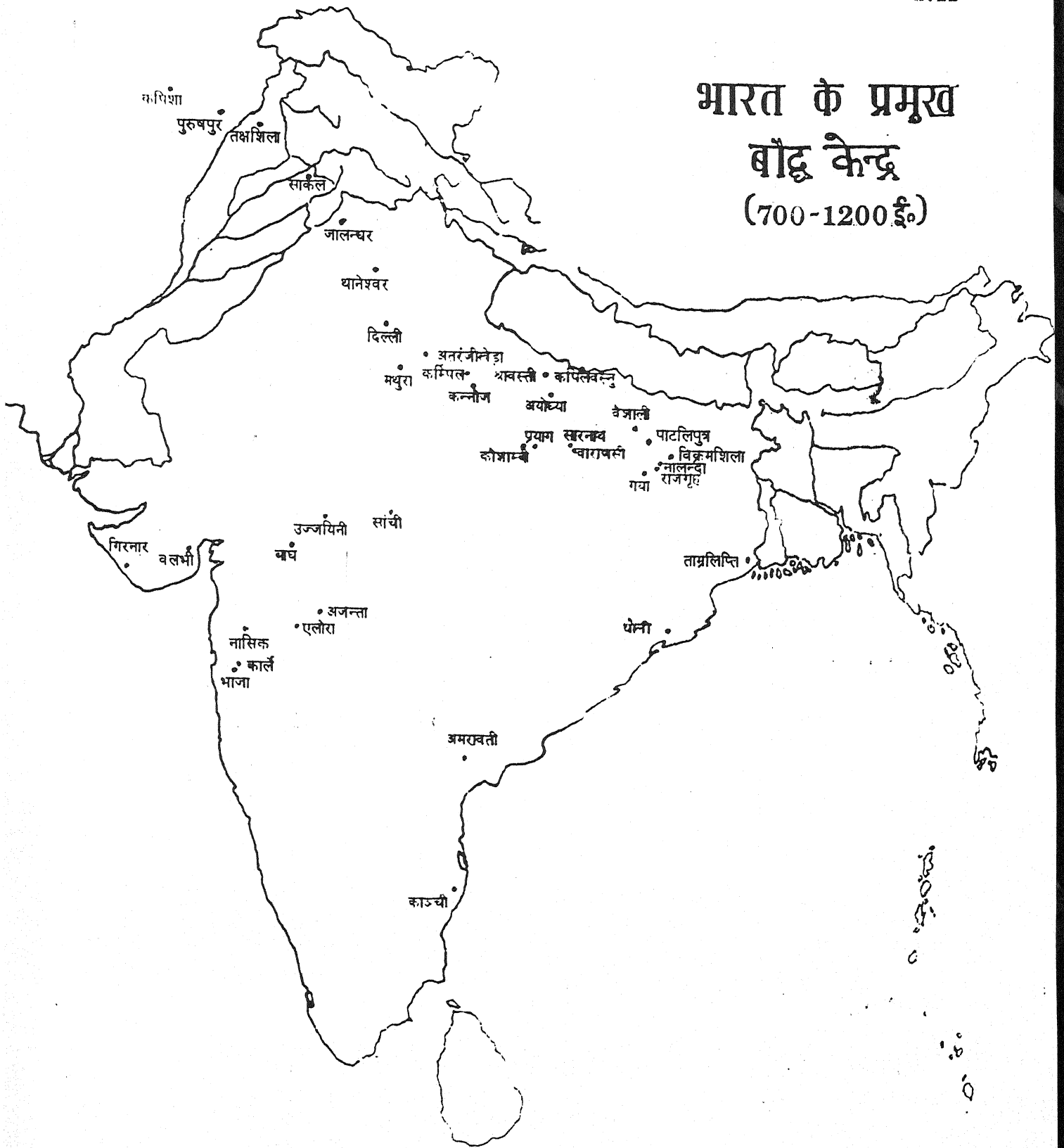
प्रथम अध्याय

विषय का महत्व तथा अध्ययन के ज्ञान–साधन

विषय का महत्व :

पृथ्वी के सात द्वीपों में जम्बूद्वीप पवित्र है और जम्बूद्वीप में भी भारत भूमि तीर्थ और कर्मभूमि है जिसमें कपिलवस्तु नगर के शाक्य वंश में शुद्धोदन के घर में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था । वस्तुतः उनका जन्म महल या घर में न होकर एक रमणीक वन (लुम्बिनी–वन) में हुआ था, जहाँ स्थापित अशोक के स्तम्भ पर आज भी अंकित है कि "हिद बुधे जाते सक्य मुनीति" ।[1] विवाह के बाद जन्मतः वन्य--वृत्ति हो उन्होंने वन-विहार और वैराग्यपूर्ण जीवन यापन करते हुए ज्ञान की खोज में गया के पवित्र क्षेत्र में निरन्जना नदी के किनारे विजन वन में पिप्पल वृक्ष के नीचे ध्यान-योग रत हो सम्बोधि प्राप्ति की । तत्पश्चात् वे बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए तथा उनके दिए गये उपदेशों तथा धर्म शिक्षाओं को ही बौद्ध धर्म कहते हैं ।

उनका जन्म और कर्म दिव्य था । इस दिव्य जीवन की ज्योति ने विश्व को प्रकाशित किया तथा भारतवर्ष के इतिहास में एक युग ही ऐसा हुआ जिसे बौद्ध युग कहते हैं । जब राजनैतिक और सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन में बौद्ध धर्म तथा बौद्ध राजनीति की ही प्रधानता थी ।

भारत के उपनिषद युग की प्रबुद्ध चेतना ने अनन्त सुख तथा शाश्वत दुःख के अन्त की खोज ने सिद्धार्थ के हृदय में भी प्रश्न उत्पन्न किये थे –

मनुष्य का अन्त मृत्यु है और मृत्यु महादुःख है ; इसके पहले जरा अवस्था है, यह अति दुःखदायी है । जब शरीर की सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं । चलने में लकड़ी का सहारा लेना पड़ता है । युवा अवस्था भोग का काल है परन्तु धन कमाने की चिन्ता तथा कुटुम्ब के भरण-पोषण की समस्याओं में ही मनुष्य फंसा रहता है । रात सोने में ही या स्त्री के सम्भोग में ही बीत जाती है । स्त्री के न रहने पर जीवन पुराना जीर्ण वन ही हो जाता है । बाल्यकाल खेल-कूद और पढ़ने का समय है । इस प्रकार साधारण मनुष्य का

---

1. अशोक रुम्मिन देई स्तंभ अभिलेख पं0 2 . दृष्टव्य, हि0लि0इ0, पृ0 39 (डॉ0 राजबली पाण्डेय, वाराणसी 11)

जीवन तो संसार की भट्ठी में ही तापों में संतप्त बीतता है । उनसे बचने के साधन सोचने के लिए उसके पास समय ही नहीं है । बुद्ध के आत्म प्रकाश ने परितप्त मनुष्य को सुपथ (सत्पथ) पर चलने के लिए सद्धर्म पथ बनाया जिस पर चलता हुआ वह निर्वाण पा सकता है । यही "सद्धर्म पथ" 'मध्यम मार्ग' कहलाया ।

उनका धर्म सुख–दुःख के सिरों के बीच मध्य मार्ग था जिसमें न तो भोगाधिक्य से पथभ्रष्ट होना ही श्रेयस्कर था ओर न दुःखों की अनन्त श्रृंखला में बंधकर रोते–रोते ही जीवन खो देने का सुझाव था । बुद्ध ने सुख–दुख के उभय छोरों (भोगासक्ति और कठिन वैराग्य) के मध्य का सुगम मार्ग प्रशस्त किया । इसे ही मध्यमा प्रतिपदा या मज्झिम मार्ग कहा गया है । यह मार्ग सभी मनुष्यों के लिए अनुपालन करने योग्य है । प्रथमतः दुःख और दुःख मुक्ति के लिये अष्टांगिक मार्ग का भी उपदेश है जो योग–मार्ग ही है ओर साधक को धीरे-धीरे समाधि तक ले जाता है ।

बुद्ध का कार्यक्षेत्र गया काशी(सारनाथ), श्रांवस्ती, कुशीनगर, वैशाली और राजगृह वन अर्थात् मगधारण्य, गया–वन, काशी–वन (सारनाथ) चम्पारण्य, कपिलवस्तु आदि रहा था । जीवन भर पदचारिका करते हुए अपने जीवन का कुशीनगर में त्याग किया ।

उन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध किया तथा स्तूप आदि बनाकर उनके उपदेशों पर ही चिन्तन करने पर विशेष बल दिया । कालान्तर में उनके प्रबुद्ध शिष्यों ने ही उनके वचनों का चिन्तन करते–करते अपने दृष्टिकोण से कई दार्शनिक सिद्धान्तों को भी जन्म दिया । इस प्रकार बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने बौद्ध धर्म और दर्शन को सुदृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित किया । कालान्तर में सैकड़ों प्रबुद्ध चिन्तक और दार्शनिक विद्वान् तथा श्रमण हुए । इनमें अश्वघोष, नागार्जुन, बुद्धघोष आदि युगस्रष्टा बौद्ध महाश्रमण थे । ईसा की पाँचवीं-आठवी शताब्दी के बीच ऐसे महान् दार्शनिक चिन्तकों और बौद्ध कवियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई । जिसके परिणामस्वरूप विविध बौद्ध-विद्या केन्द्रों की भी स्थापनाएं हुईं । अजन्ता का विशाल केन्द्र, हर्षचरित में उल्लिखित दिवाकर मित्र के आश्रम[1] का स्मरण करता है । डॉ0 राधाकुमुद के अनुसार यह एक यूनीवर्सिटी ही था ।[2]

---

1. ह0 च0, पृ0 265
2. मुकर्जी, हर्ष, पृ0 133

बौद्ध युग :

मगध सम्राट बिम्बिसार तथा अजातशत्रु ने नवोदित बुद्ध धर्म को राजाश्रय देकर इसकी वृद्धि की और कालान्तर में अशोक ने इसे भारत और भारत के बाहर प्रचारित कर इसे अन्तर्राष्ट्रीय धर्म का स्वरूप दे दिया ।

मगध के इस साम्राज्यवादी युग में बुद्ध और बौद्ध धर्म का समाज में खूब प्रचार हुआ । बुद्ध धर्म और बौद्ध विचारों की प्रधानता के कारण इसे बौद्ध युग कहा जाता है । इस युग में हिमवंत-खण्ड, गान्धार, महाराष्ट्र (मैसूर देश) तथा सीलोन और वर्मा में भी इसका प्रचार हुआ । काश्मीर, कलिंग, मध्य प्रदेश बिहार और आन्ध्र तथा महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म की धाक जम गई ।सातवाहन सम्राटों ने भी बौद्ध धर्म और कला को प्रोत्साहित किया । यवन सम्राट् मिलिन्द और बौद्ध भिक्षु नागसेन के प्रश्नोत्तरों के परिणामस्वरूप सृजित "मिलिन्द प्रश्न" बौद्ध धर्म की अक्षय निधि हैं ।

देवपुत्र-कुषाणों के राज्यकाल में मध्य एशिया, चीन तथा काश्मीर, लद्दाख और तिब्बत में बौद्ध धर्म और संस्कृति का खूब प्रचार और प्रसार हुआ । इसी समय महायान धर्म का भी उदय हुआ । अब बौद्ध श्रमणों ने पालि के स्थान पर संस्कृत को धर्म भाषा स्वीकार कर लिया जिससे संस्कृत बौद्ध साहित्य का विकास हुआ । इस विपुल साहित्य में सद्धर्म पुण्डरीक अत्यन्त महत्वपूर्ण महायान- महाधर्म का ग्रन्थ है, जिसमें हमें महायान बौद्ध धर्म एवं सामाजिक राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन की भी झांकी प्राप्त होती है । अस्तु इस ग्रन्थ से बौद्ध धर्म और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है ।

प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ आर्यमंजुश्री मूलकल्प, मन्त्रयान और तन्त्रयान से सम्बन्धित अति गूढ़ ग्रन्थ है जिससे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आते हैं । यह ग्रन्थ हमें युगान्त काल तक ले जाता है, जब आर्यावर्त (मध्य देश) तथा बिहार के वक्षस्थल पर म्लेक्ष-आघात हो रहे थे । जिसके कारण नालन्दा, विक्रमशिला तथा अन्य महा विहार (विश्वविद्यालय) और चैत्य विहार कथा शेष मात्र रह गये थे ।

गुप्तोत्तर कालीन बौद्ध धर्म और संस्कृति के चित्र पर अभी तक विद्वानों का विशेष ध्यान नहीं गया है । न तो इस युग पर कोई भी आधुनिक ग्रन्थ सामने आया है और न

किसी की इस ओर अभिरूचि ही दिखाई पड़ी । अत ए0 लाल (प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, लखनऊ विश्वविद्यालय) के मार्ग दर्शन में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों, अभिलेखों तथा बुद्ध क्षेत्रों का अध्ययन किया गया और परिणामस्वरूप इस शोध--प्रबन्ध का महत्व तो प्रत्यक्ष है ।

साहित्यिक साधन

विवेच्य युग के बौद्ध धर्म के अधिक विविध साधन स्रोतों में साहित्यिक साधन मुख्य हैं । यहाँ प्रमुख स्रोतों का विवरण -विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

सद्धर्म पुण्डरीक एवं महायान :

भारत भूमि में बौद्ध धर्म का उदय एवं विकास यहाँ के राजनीतिक एवं धार्मिक इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण रहा है । राजाश्रय - बिम्बिसार (600 ई0पू0) से पालवंश के उत्कर्ष काल तक लगभग 1500 वर्ष तक समाज को नये विचारों तथा संस्थाओं से प्रभावित करता रहा है । बुद्ध दर्शन ने प्रसिद्ध ब्राह्मण विद्वानों तथा सन्यासियों, यथा - कश्यप, अश्वघोष और नागार्जुन आदि को भी अपनी ओर आकृष्ट किया । इससे बौद्ध दर्शन की उत्कृष्टता सिद्ध है ।बुद्ध वचनों को धारण कर अश्वघोष को एक नई दिशा मिली और बुद्ध वचनों का रहस्योद्घाटन कर उन्होंने क्रमश: विज्ञानवाद एवं शून्यवाद दार्शनिक तत्वों को प्रकाशित किया ।

महायान धर्म का उदय भी ऐसे प्रबुद्ध बौद्ध दार्शनिकों तथा चिन्तकों की देन है । महायान सूत्रों में सद्धर्मपुण्डरीक अति प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण धर्म ग्रन्थ हैं । इसका अध्ययन भार त के आध्यात्मिक जीवन का रहस्योद्घाटन करता है । जिसका पहली बार अध्ययन डॉ0 अंगने लाल द्वारा अपने ग्रन्थ संस्कृति बौद्ध साहित्य में भारतीय जीवन प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी तक प्रस्तुत किया गया है । सद्धर्म पुण्डरीक में बौद्ध धर्म को महायान- महाधर्म[1] तथा महापथ[2] कहा गया है । इसका भी उपदेश बुद्ध द्वारा ही राजगृह में अजातशत्रु के राज्यकाल में

---

1. स0 पु0 (वि0), पृ0 1
2. वही, पृ0 2

ही दिया गया था ।[1] इसका प्रयोजन महायान धर्म की उतनी ही प्राचीनता सिद्ध करना अभीष्ट था जितनी हीनयान की प्राचीनता बुद्ध वाणी में निहित है । इसीलिए इस ग्रन्थ का प्रारम्भ राजगृह की धर्मपरिषद से होता है जिसमें प्रबुद्ध बुद्धगण, बोधिसत्वों, अर्हतों, भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों एवं दक्ष नर किन्नर, गन्धर्व आदि देवपुत्रों के मध्य बुद्ध भगवान को धर्म की देशना करते हुए पाते हैं ।[2]

सद्धर्म पुण्डरीक ने कई प्रथित विद्वानों -- डॉ० एच० कर्न, डॉ० नलिनाक्ष दत्त एवं डॉ० राम मोहन दास (हिन्दी अनुवाद एवं पाठ) आदि को आकृष्ट किया है । डॉ० कर्न ने सद्धर्म पुण्डरीक को अंग्रेजी अनुवाद की अपनी विस्तृत भूमिका में इसके महत्व और स्वरूप का प्रतिपादन किया है ।[3]

आचार्य नरेन्द देव ने भी अपने ग्रन्थ बौद्ध धर्म दर्शन में सद्धर्म पुण्डरीक का संक्षिप्त विवरण दिया है।[4] पं० बलदेव उपाध्याय ने भी इस ग्रन्थ के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं । परन्तु इस ग्रन्थ के महत्व तथा इसके विवेचन को प्रस्तुत नहीं किया जा सका ।

भारतीय विद्वान स्वयं इन ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करते हैं और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ही अनुप्राणित है । कर्न महोदय की भूमिका का भी इन लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । कर्न साहब भगवद् गीता और सद्धर्म पुण्डरीक के विचारो का बड़े परिश्रम तथा वैदुष्यपूर्ण विवेचन किया है । यह स्तुत्य कार्य है । जब महायान सूत्रों (अष्टसाहस्त्रिका, प्रज्ञापारमिता, सद्धर्म पुण्डरीक, ललित विस्तर, लंकावतार, सुवर्ण प्रभास, मण्डव्यूह तथा गत गुह्यक, समाधिराज और दशममीश्वर) को नेपाल में नवधर्म (धर्मपर्याय) कहते हैं ।[5] इन्हें वैपूल्यसूत्र भी कहते हैं । नेपाल में इनकी पूजा होती है ।[6]

महायान के वैपूल्य सूत्रों का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ सद्धर्म पुण्डरीक है ।[7]

---

1. स० पु० (वि०), पृ० 3
2. वही, पृ० 1–3
3. स० पु० अंग्रेजी अनुवाद, सेक्रेड बुक आफ ईस्ट, सं० 22 पृ० 29
4. बौ० ध० द०, पृ० 146–149
5. बौ० द०, पृ० 92- 94
6. बौ० ध० द०, पृ० 141
7. वही, पृ० 141

सद्धर्म पुण्डरीक :

महायान धर्म का यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो सम्भवतः चीनी भाषानुवाद पर आधारित है, इसका फ्रेंच भाषा में अनुवाद बरनॉफ (Bernauf) द्वारा किया गया है। डॉ0 एच0 कर्न महोदय ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद[1] करते समय फ्रेंच-अनुवाद को अपना आधार माना। डॉ0 कर्न उच्चकोटि के विद्वान् थे और उनकी प्रतिभा आज भी जीवित है। यह अनुवाद तथा उनका विषय-विवेचन भी उनके वैदुष्य का ही साक्ष्य है। इस अनुवाद के अतिरिक्त नंजियों एवं प्रो0 (डॉ0) नलिनाक्ष दत्त[2] और डॉ0 पी0 एल0 वैद्य द्वारा सम्पादित सद्धर्म-पुण्डरीक[3] (केवल मूल पाठ)ही प्रकाशित हुए हैं।

डॉ0 राममोहन दास द्वारा बिहार राष्ट्रभाषा द्वारा सद्धर्म पुण्डरीक[4] का हिन्दी में अनुवाद कर्न महोदय के अंग्रेजी अनुवाद पर ही आधारित है। परन्तु डॉ0 दास ने कर्न की समीक्षात्मक भूमिका की अपेक्षा की। इसका कारण भी नहीं बताया। यदि इतने बड़े विद्वान् के विचार अग्राह्य थे तो उनका विवेचन करना चाहिए था। बिहार राष्ट्रभाषा प्रकाशन भी एक सामान्य संस्था है और इसके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ को बहुमूल्य बनाना लेखक अथवा अनुवादक का पुनीत धर्म है।

इस ग्रन्थ रत्न में भगवान् बुद्ध का भगवत्स्वरूप (आराध्य) एवं बुद्ध भक्ति तथा धर्मग्रन्थों (यथा सद्धर्म पुण्डरीक आदि) का श्रवण तथा बुद्धमूर्ति और बोधिसत्वों की पूजा का वर्णन किया गया है। इससे महायान धर्म पर भक्ति का स्पष्ट प्रभाव झलकता है। अवलोकितेश्वर का नाम स्मरण ही अनेक संकटों से बचाने वाला कहा गया है। स्मरण भी (नवधा) भक्ति का एक अंग है। देवपुत्रों (कुषाणों) के शासनकाल में यह महाधर्म मध्य एशिया और चीन तक फैल गया। चीन तथा जापान में भी सद्धर्म पुण्डरीक की विशेष धार्मिक महिमा विद्यमान हे। इस ग्रन्थ रत्न की रचना तिथि ईसा की प्रथम शताब्दी और चौथी शताब्दी के मध्यकाल ही मानी गयी है।

---

1. स0 पु0 (लोटस आफ दि टूला) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1980
2. एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1923
3. मिथिला विद्यापीठ, 1960
4. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना, 1966

मध्य एशिया के विधि प्राचीन बौद्ध केन्द्रों में इसकी हस्तलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। इस पर टीकाएँ और अनुवाद भी इसकी लोकप्रियता के साक्ष्य हैं।

सद्धर्म पुण्डरीक में कुल सत्ताइस परिवर्त (अध्याय) हैं। मुख्य रूप से अर्थ, अनर्थ एवं परमार्थ का विभेदन करते हुए परमार्थ को ही श्रेयस्कर सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया गया है। कर्म – शुभाशुभ ही सुख–दुःख एवं हीनोच्च पद का मूल है। कोई जीविका के लिये कूड़ा साफ करता है और कोई रत्नों के व्यापार हेतु रत्नद्वीप जाता है। यही संसार की विषमता है।

सम्पूर्ण संसार (त्रयतापों की अग्नि से तप्त) आग से जलते हुए एक मकान की भाँति है। सुरक्षा और सुगति के लिए मनुष्य घर संसार से बाहर भागने अर्थात् राग द्वेष में लिप्त संसार से बाहर आकर बुद्ध की शरण में आने तथा वन गिरिगुहा में एकान्त सुख विहार (ध्यान) को, उपाय कौशल द्वारा प्रोत्साहित किया गया है। जीवन की सार्थकता परमार्थ सिद्धि में ही है।

प्रथम निदान परिवर्त में इस ग्रन्थ और महायान महाधर्म की महिमा का वर्णन है। राजगृह के (गृद्धकूट) गिरि पर ही धर्म सभा में बुद्ध धर्म ज्योति का उदय और धीरे–धीरे सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को आलोकित करने की ऐतिहासिक घटना का चित्रण है। द्वितीय परिवर्त – उपाय कौशल्य है। यहाँ हम सारिपुत्र को कहते हुए सुनते हैं "मैंने बहुत बड़ी भूल की जो हीनयान में प्रविष्ट हुआ।"[1] इससे महायान की श्रेष्ठता ही सिद्ध करने का प्रयास प्रतीत होता है। तृतीय परिवर्त में धनाढ्य श्रेष्ठी और जलते हुए घर से बच्चों को बाहर निकालने तथा धर्म की ओर उन्मुख करने का उपाय–कौशल्य वर्णित है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ में समाज को धर्मपथ पर से जाकर कल्याणप्रद (पद) स्थान पर से जाने वाला महायान (धर्म) और बोधिसत्व (सार्थवाह तारक) के आदर्शों (त्याग तथा सेवा) का वर्णन है। यही गुण महायान धर्म का हृदय है। बुद्ध भगवान वैद्य हैं, जो संसार को संसार धर्मों (जन्म, मृत्यु जरा व्याधि) से मुक्त करते हैं। यही बुद्ध–औषधि है।

---

1. स0 पु0 (मि0), पृ0 240–241

चैत्य (स्तूप) दर्शन (पूजा) एवं बुद्ध बोधिसत्व पूजा तथा एकान्त निर्जन प्रदेश में दिवा–बिहार (ध्यान) महाधर्म था । इससे ही बौद्ध धर्म ने भारतीय कला का भी सुसंस्कार किया । अस्तु सद्धर्म पुण्डरीक को "धर्मपर्यायः मूर्ध प्राप्तः" अर्थात् भवसागर को पार करने का साधन भी कहा गया है ।[1] इसीलिए सभी महायान सूत्रों में इसकी प्रधानता है ।

सद्धर्म पुण्डरीक में भी पृथिवी, द्वीप, जम्बूदीप एवं देशों, नगरों और पर्वतों आदि का वर्णन किया गया है । रत्नद्वीप (लंका) की प्रसिद्धि थी । नेपाल की तराई में स्थित कपिलवस्तु, लुम्बिनी तथा हिमवन्त से लेकर दक्षिण समुद्र में स्थित रत्नद्वीप तक विस्तृत क्षेत्र को बुद्ध और उनके अनुयायियों को धर्म में दीक्षित किया गया था । यही सद्धर्म का प्रसार था । इस ग्रन्थ में समाज एवं विविध धर्म, आर्य और अनार्य (सामाजिक विषमता), वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम–व्यवस्था, कुटुम्ब परिवार, कुल, समाज तथा स्त्रियों की स्थिति एवं खाद्य पेय वस्त्राभूषण, आमोद–प्रमोद (यथा संगीति आदि का भी चित्रण किया गया है । प्राचीन बौद्ध आचार्यों ने समाज की उपेक्षा नहीं की थी । वे समाज के दुःख–सुख से जुड़े थे । राजतंत्र, राजधर्म या राजनीति की भी उपेक्षा नहीं की गयी थी । संस्कृत बौद्ध साहित्य में राज–कथाओं के प्रसंग में राज्य, राजा, मन्त्री, सेना, कोष, मित्र और राष्ट्र (या देश) अर्थात् राज्य तन्त्र के विभिन्न अवयवों के उल्लेख मिलते हैं । सद्धर्म पुण्डरीक में नरेन्द्र राजा[2] जनपद प्रदेश[3] कोष[4] बल (सेना)[5] तथा अमात्य[6] (महामात्र) के उल्लेख सिद्ध करते हैं कि यह ग्रन्थ राज्य व्यवस्था से परिचित था ।

इस युग में राजत्व ही प्रचलित था । गणराज्यों का विलय मगध महासाम्राज्य (नन्द मौर्य साम्राज्य) में ही हो गया था । शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु[7] ही शाक्य मुनि की जन्मस्थली थी । वैशाली के लिच्छवियों तथा मल्लों से भी उनका सम्पर्क बना रहा । परन्तु विवेच्य युग में इनका महत्व और अस्तित्व समाप्त हो चुका था ।

---

1. स0 पु0 (मि0), पृ0 243
2. स0 पु0 (मि), पृ0 18/3 स0 पु0 वि0, पृ0 466
3. वही (मि0), पृ0 71/22/25
4. वही, 71/26/74/32
5. वही, पृ0 291
6. वही, पृ0 290
7. वही, पृ0 314; 14/44

समृद्ध कुषाण युग में अर्थ का महत्व था । समाज धन–धान्य से सम्पन्न था और बड़े–बड़े सेठ (श्रेष्ठि) वार्ता (कृषि आदि) तथा विशेषकर वाणिज्य करते थे । रत्नद्वीप को रत्न के व्यापारी कष्टों को सहते हुए भी जाते थे । समाज में आर्थिक दृष्टिकोण से एक दुर्बल वर्ग भी था जो मजदूरी (भृति) द्वारा बड़ी कठिनाई से जीवन यापन करता था । मोटे, फटे और मैले कपड़े पहने सत्तू आदि का भोजन तथा कूड़े आदि की सफाई में लगा यह दयनीय वर्ग था । यह वहाँ की सामाजिक विषमता का ही दोष था । कृषि और पशुपालन के साथ–साथ देश विदेश से वाणिज्य होता था । रत्नद्वीप से रत्नों को लेने भारतीय वणिक् जहाजों पर जाते थे । शिल्प (कारु कर्म) भी प्रचलित था । दुर्भिक्ष[1] का भी उल्लेख मिलता है ।

बौद्ध मठ शिक्षा, विद्या, साहित्य एवं कला के केन्द्र थे । बौद्ध कला और संस्कृति बौद्ध धर्म के ही पोषक अंग हैं । धर्म ने कला को प्रेरणा दी । बौद्ध धर्म, ध्यान पर विशेष बल देता है । बुद्ध ने भी गया के वन में अश्वत्थ वृक्ष के मूल में आसीन होकर सम्यक् समाधि द्वारा संबोधि प्राप्त की थी ।

सद्धर्म पुण्डरीक, गिरि–वन के एकान्त वातावरण में विशेषकर पर्वतीय गुफाओं में दिवा–विहार (ध्यान द्वारा समाधि सुख विहार) का उल्लेख करता है । उड़ीसा (भुवनेश्वर के निकट) में धौली की गुफाएँ तथा महाराष्ट्र में नासिक (पूना) के बौद्ध कला के क्षेत्रों में तथा औरंगाबाद, अजन्ता एवं एलोरा की गुफाएँ बौद्ध भिक्षुओं की साधना के केन्द्र थे ।

इसी धर्म में चैत्य पूजा भी प्रचलित थी जिसके लिये साँची, भरहुत, अमरावती आदि स्थानों में स्तूपों का निर्माण हुआ है । ये बौद्ध संघ के केन्द्र थे, जहाँ महाविहारों तथा विहारों का निर्माण हुआ । ये महाविहार ही शिक्षा के भी केन्द्र बन गये । नालन्दा, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, सोमपुर, वलभी, नागार्जुनी कोण्डा आदि के प्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालय, विश्व विश्रुत बन गये । यहाँ विदेशों से अध्ययन करने के लिए सैकड़ों विद्यार्थी–भिक्षु आते थे ।फाहियान, ह्वेनसांग और इत्सिंग ऐसे ही धर्मयात्री थे जिन्होंने यहाँ अध्ययन भी किया । यही भारत की धर्म विजय थी जिसका लक्ष्य था सभी को श्रेष्ठ, शिष्ट और धर्मिष्ट बनाना ।

---

1. स० पु० (मि०), 6/12

भारत में चीनी यात्रियों की धर्मयात्रा एवं उनके यात्रा विवरण का ऐतिहासिक महत्व

जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) बुद्ध की जन्मभूमि, लीला भूमि और धर्म-प्रचार भूमि रही है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में चीन (महाचीन) में भी बुद्ध-ज्योति का प्रकाश फैला। कनिष्क प्रथम के विशेष धर्मोत्साह से सम्पूर्ण मध्य-एशिया बौद्ध धर्म और इसके दर्शन से प्रभावित हो गया था। यहीं से चीन में बुद्ध के सद्धर्म का प्रचार हुआ। बहुत से धर्मिष्ठ चीनी विद्वान् और जिज्ञासु असीम कष्टों, कठिनाइयों तथा खतरों को सहते हुए भारत में आकर यहाँ बुद्ध के जीवन तथा उनके धर्म से सम्बन्धित पवित्र स्थानों – कपिलवस्तु, लुम्बिनी, बोध गया, सारनाथ, कुशीनगर, राजगृह (गृधकूट) आदि के दर्शन करते तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्या केन्द्रों (नालन्दा आदि) में अध्ययन भी करते रहे।

गुप्त युग में चन्द्रगुप्त द्वितीय (देवराज्य-देवगुप्त) के राज्य काल में चीनी धर्मयात्री फाहियान ने भारत की यात्रा की थी। उसके यात्रा विवरण से गुप्त युग में बौद्ध धर्म की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सांची (काकनाद बोट) महाविहार के लिए पच्चीस दीनार दान में दिये।[1] इससे सिद्ध होता है कि गुप्त सम्राट परम वैष्णव होते हुए भी बुद्ध धर्म के प्रति कितने उदार थे।

फाहियान और भारत तथा भारत के बाहर बौद्ध धर्म :

जिस समय गुप्तकालीन सूर्य आकाश में उच्च शिखर पर विराजमान था, भारत में देवराज (देवगुप्त) चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य राज्य कर रहे थे। वे उदार सम्राट थे और उन्होंने सांची के बौद्ध विहार को दान भी दिया था।

ऐसे ही उदार शासनकाल में चीनी यात्री फाहियान भारत में आया था। वह भारत में बौद्ध तीर्थों का दर्शन करने तथा बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन और बौद्ध ग्रन्थों की खोज करने आया। वह भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में गया और वहाँ बौद्ध धर्म का अध्ययन किया

---

1. ए गाइड. टु सांची, सर जौन मार्शल, पृ0 17
2. ची0 बौ0 ध0 इ0, पृ0 60

तथा बहुत से ग्रन्थों को अपने साथ चीन को वापसी में ले गया।

फाहियान अपने शैशवकाल में ही बौद्ध हो गया था। बीस वर्ष की अवस्था पूर्ण होने पर उसने श्रामणेर अवस्था पूर्ण की। अब वह बौद्ध संघ में प्रविष्ट हो गया था। 399 ई0 में उसने चीन से भारत की ओर प्रस्थान किया। मध्य एशिया के मरुस्थल को पार कर निर्जन प्रदेशों में भटकता हुआ खोतान पहुँचा। आगे बढ़ने पर वह दुर्गम हिम पर्वत (हिमालय)होते हुए गान्धार देश में आया। यहाँ अशोक वंशीय राजा धर्मविवर्धन राज्य करता था।

इसके बाद पुनः हिमालय की पहाड़ियों और वनों में भ्रमण करता हुआ सिन्धु नदी पार कर वह मो–तो–लो (मथुरा मण्डल) राज्य में होकर मध्य देश में आया। मध्यदेश में वह पाटलिपुत्र गया। तत्पश्चात् वह गया के किनारे–किनारे चलता हुआ समुद्र तट तक पहुँचा और वहाँ से वह लंका (सिंहल) गया जहाँ दो वर्षों तक रहा और दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थों को प्राप्त किया। भारत से उसने सम्पूर्ण विनयपिटक के अंशों को एकत्र किया था। बौद्ध ग्रन्थों को प्राप्त करने के बाद वह व्यापारिक जहाज द्वारा मार्ग में समुद्री तूफान तथा व्यापारियों के क्रोध का भी सामना करता हुआ वह सकुशल अपने देश को पहुँच गया।वह भारत में लगभग 12–13 वर्ष (399 ई0 412 ई0 तक) रहा। इस प्रकार स्पष्ट है कि उसके विवरणों से गुप्तयुग में बौद्ध धर्म की स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

ह्वेनसांग (युअनच्वांग)जीवन वृत्त यात्रा विवरण और उसका महत्व

गुप्त युग के बाद बौद्ध धर्म के इतिहास में कान्यकुब्ज सम्राट हर्षवर्धन एवं ह्वेनसांग या (युअनच्वांग) के नाम, विचार और कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

महाराज हर्षवर्धन के राज्यकाल में ही चीनी बौद्धयात्री (बोधिसत्व) ह्वेनसांग अनेक आपत्तियों, आंधी, तूफनों, दस्युओं एवं दुर्गम मार्गों की कठिनाइयों को अपने दृढ़ संकल्प और विश्वास तथा बुद्ध भक्ति द्वारा ही जीतता हुआ भारत में आया। उसने भगवान बुद्ध उनके जीवन एवं धर्म और अन्य धर्मिष्ठ बौद्ध श्रमणों से सम्बन्धित पवित्र स्थानों की यात्रा की।

उसकी धर्मयात्रा ईसा की सातवीं शताब्दी का भारत का सर्वेक्षण ही था जिसका अनुगमन एवं अनुसरण तथा अनुसन्धान प्रसिद्ध पुरातत्ववेता कनिंघम ने किया था। इन दोनों

ही (प्राचीन और अर्वाचीन) साक्ष्यों से हम तत्कालीन भारत में बौद्ध धर्म की स्थिति का विश्लेषण करेंगे ।

इस धर्मयात्रा की पृष्ठभूमि में मध्य एशिया ओर भारत का सम्पर्क विशेष रूप से उल्लेखनीय है । शक–यवन काल के पूर्व अशोक का गान्धार और हिमवन्त प्रदेश में धर्म प्रचार हो चुका था और अशोक के बाद कुणाल का योगदान भी कम महत्वपूर्ण न था । परन्तु देवपुत्रों (कुषाणों) के शासनकाल में मध्य एशिया और भारत, सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अधिक सन्निकट हो गये थे । कनिष्क प्रथम के युग में चीन के धार्मिक जीवन में बुद्ध धर्म ने विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया तथा ह्वेनसांग सदृश जिज्ञासु धर्म–स्वाध्याय करने वाले बौद्धों के हृदय में बुद्ध और बुद्ध भूमि के प्रति अदम्य उत्कंठा भर दी जिसकी साक्षी बोधिसत्व ह्वेनसांग की जीवनी है । यह कथा (विवरण) धर्म कथा ही है , जिसमें औपन्यासिक कुतूहल कम नहीं है । यद्यपि उसके पूर्व फाहियान ने भी यात्रा की थी परन्तु वह केवल आत्मोद्धार एवं आत्मतृप्ति के लिए ही अधिकांश घूमा, देखा–भाला, अध्ययन किया तथा वर्णन भी किया परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा में वैज्ञानिक आधुनिकता है जिसने भारतीय इतिहास को अमूल्य निधि दान की है ।

ह्वेनसांग धर्म व्यक्तित्व

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" कहावत प्रसिद्ध ही है । स्नेहसिक्त शरीर तेजस्विता और मनीषा के लक्षण ह्वेनसांग में विद्यमान थे । 13 वर्ष की ही अवस्था में जो कुछ भी चीन में उपलब्ध ज्ञान था उसे इस अद्भुत बालक ने आत्मसात कर लिया । परन्तु उसे सन्तोष न था । उसकी ज्ञान पिपासा ने ही मध्य–एशिया के बालुकार्णव में जल और ज्ञान की खोज के लिए बुद्ध–देश की ओर अपने वे कदम बढ़ाये जिन्होंने पीछे मुड़ना ही नहीं चाहा और भोग–विलास में फंसकर रुकना भी नहीं सीखा । ये ही तो महापुरुष के बोधिसत्व लक्षण हैं ।

मध्य एशिया के बीहड़ निर्जन पर्वतों, वनों, नदियों और मरुस्थलों को पार कर वह भारत के उत्तरी पश्चिमी द्वार पर आ पहुँचा । कपिश (लमग़न) बामियान, जलालाबाद (नगरहार) होता हुआ गांधार प्रदेश में पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर) के पवित्र स्थान में आ पहुँचा ।

काश्मीर, जलंधर, कुलूत, थानेश्वर, मथुरा, मातीपुर (माचीपुर, मण्डावर, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश) कान्यकुब्ज, अयोध्या, कौशाम्बी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वाराणसी (सारनाथ), वैशाली तथा गया के बोधि वृक्ष के दर्शन, पूजा और नमन करने के बाद नालन्दा तथा वहाँ अध्ययन कर बिहार प्रदेश में मुंगेर (हिरण्य देश), चम्पा, पुण्ड्वर्धन (उत्तरी बंगाल) समतट, कर्ण सुवर्णा आदि देशों व स्थानों को देखने के बाद दक्षिण भारत की ओर मुड़ा। वह लंका भी जाना चाहता था। उड़ीसा, दक्षिण कोशल (नागार्जुन जन्म भूमि), धनकटक (अमरावती, आन्ध्र प्रदेश) और कांची तक गया। यही उसका दक्षिण भारत में अन्तिम पड़ाव था। पुनः उत्तर की ओर वनवासी और महाराष्ट्र होता हुआ भृगुकच्छ, गुर्जर, मालवा, वलभी, सौराष्ट्र, उज्जैन, जझोति, महेश्वरपुर आदि की यात्रा की। सिन्ध तथा मूलस्थान (मुलतान) की भी उसने यात्रा की। इसके बाद काश्मीर के निकट सम्भवतः इरावती नदी की ऊपरी पहाड़ी घाटी के तपोवन में दो माह तक ठहरा। इसे उसने पो–फ्रेटो (पर्वत) नाम दिया है।

इस संक्षिप्त रूपरेखा से स्पष्ट है कि उसने काश्मीर से लेकर द्रविड़ देश में स्थित कांची तथा पूर्वी समुद्र तट से पश्चिमी समुद्र तट तक भारत की यात्रा की। उसके विवरण से उस समय की बौद्ध धर्म की स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता हे।[1] सम्पूर्ण देश स्तूपों (चैत्यों), संघारामों (मठों) और भिक्षुओं से भरा हुआ था।

उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म, बौद्ध साहित्य तथा बौद्ध दर्शन का एशिया में सबसे बड़ा केन्द्र था। अस्तु यह मान्य नहीं हो सकता कि उस समय बौद्ध धर्म अवनत दशा में था। मध्य देश में सारनाथ, कन्नौज, मातीपुर तथा पश्चिमी भारत में वलभी तथा सिन्ध प्रदेश में बौद्ध धर्म उन्नत दशा में था। उड़ीसा ओर दक्षिण कोशल के वन्य भागों की पहाड़ी गुफाओं में भी बौद्ध विद्या (तंत्रायन) के केन्द्र थे।

---

1. ह्वेनसांग की यात्रा विवरण के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं :
सी–यू–की (चीनी भाषा) से इसका अंग्रेजी अनुवाद सेमुअल बील ने चार खण्डों में किया है जिसे चाँद एण्ड कम्पनी ने प्रकाशित किया हें। सेमुअल बील कृत लाइफ आफ ह्वेनसांग; हिवली – दि लाइफ ; भूगोल सम्बन्धी विवरण के लिए कनिंघम ऐन्शियन्ट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया तथा स्थानों की पहचान के लिए डॉ0 अवध बिहारी लाल अवस्थी कृत प्राचीन भारतीयभूगोल द्रष्टव्य।

उड़ीसा की रत्न गिरि की विशाल बुन्द बोधिसत्व तथा तारादेवी की मूर्तियाँ अत्यन्त उच्चकोटि की शिल्प कृतियां हैं ।

चीनी यात्री ईत्सिंग का यात्रा विवरण

फाहियान तथा ह्वेनसांग की भाँति चीनी यात्री इत्सिंग का भी भारत में बौद्ध धर्म सम्बन्धी विवरण बौद्ध-धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण है ।

इत्सिंग ने ह्वेनसांग की मृत्यु के बाद भारत यात्रा की थी । उसने स्वयं ही अपनी यात्रा का विवरण लिखा है । उसका जन्म 634 ई0 में हुआ था और सात वर्ष की अवस्था में उसने बौद्ध महाविहार में प्रवेश किया । जब वह बारह वर्ष का था तब उसके गुरु की मृत्यु हो गयी ।

उसने बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त लौकिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था । चौदह वर्ष की अवस्था में वह भिक्षु बना । यद्यपि भारत यात्रा की इच्छा उसके हृदय में बहुत पहले, जब वह अठारह वर्ष का था तभी से थी । परन्तु उसकी यह इच्छा उसके सैंतीसवें वर्ष में पूरी हो सकी अर्थात् वह 671 ई0 में भारत की ओर चला । उसने अपनी यात्रा समुद्री मार्ग से एक पारसीक-नाव (पारसीक व्यापारी की नाव)द्वारा प्रारम्भ की । बीस दिन की यात्रा के बाद उसका जलयान सुमात्रा पहुँचा । वहाँ वह आठ महीने रहा, छः महीने श्री विजय (पालेमबांग में और दो महीने मलाया में) । उसके बाद उसने सुमात्रा की नौका द्वारा बंगाल की खाड़ी पार की और 673 ई0 में वह ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बन्दरगाह में उतरा । भारत भ्रमण में सुविधा की दृष्टि से आगे बढ़ने के पूर्व ताम्रलिप्ति में उसने संस्कृत भाषा का ज्ञान बढ़ाने के लिए वहाँ साल भर रहा ।

सर्वप्रथम उसने गया और कुशीनगर की यात्रा की और तत्पश्चात् दस वर्ष वह नालन्दा में रहकर अध्ययन करता रहा । वहाँ उसने लगभग 400 बौद्ध ग्रन्थों का संग्रह किया । स्वदेश लौटते समय वह श्री विजय में चार वर्ष तक रहा । वहाँ भी वह बौद्ध धर्म के संस्कृत और पाली के ग्रन्थों का अध्ययन और अनुवाद करता रहा । 689 ई0 में वह चीन लौट गया । उसका देहान्त 79 वर्ष की अवस्था में 713 ई0 में हो गया । उसके अनुसार बोध गया और नालन्दा प्रसिद्ध बौद्ध विद्या तथा धर्म के केन्द्र थे । उसने वैशाली, सारनाथ (मृगदाय) तथा

कुक्कुटपाद गिरि की भी यात्रा की थी । वह भारत में दस वर्ष तक (675 ई0 – 685 ई0) तक रहा और धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करता रहा । चीन में उसने बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया । ये 320 खण्डों में थे । उसके समय में 'चेलिकिटो' राजा से आज्ञा लेकर सिंहल के सम्राट् ने भारत के सिंहलक बौद्धों के लिये बोध गया में एक बिहार बनवाया था । चेलिकिटो की पहचान श्री गुप्त से की गयी है ।

आर्य मन्जु श्री मूलकल्प

आर्य मन्जु श्री मूलकल्प अति प्रसिद्ध संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ है । यह प्राचीन भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है । परन्तु यह रहस्यमय ग्रन्थ है । इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

1. इसमें हमें भगवान् बुद्ध एवं बुद्ध युग से सम्बन्धित बिम्बिसार, अजातशत्रु और उसके उत्तराधिकारियों का उल्लेख प्राप्त होता है ।
2. नन्दवंश का वर्णन मिलता है ।
3. मौर्यवंश, चन्द्रगुप्त, अशोक और उसका राज्यकाल, अशोक के उत्तराधिकारी तथा मौर्य साम्राज्य का पतन बोध होता है ।
4. शकवंश का वर्णन है ।
5. वाकाटकवंश भी वर्णित है ।
6. गुप्तवंश का विवरण भी मिलता है ।
7. श्रीकण्ठ देश (स्थाण्वेश्वर) का वैश्यवंश (हर्ष आदि) वर्णित हैं ।
8. बलभी राजवंश और
9. उत्तर गुप्त सम्राटों का भी यह ग्रन्थ उल्लेख करता है ।
10. गोड़ देश के प्रारम्भिक पाल सम्राट इसके अतिरिक्त कामरूप नेपाल, गौड़ और काशी का स्थानीय इतिहास भी इस ग्रन्थ में मिलता है ।
11. पाल शासक गोपाल का उल्लेख महत्वपूर्ण है । डॉ0 के0 पी0 जायसवाल के अनुसार इस ग्रन्थ की तिथि 770 ई0 है । यह गोपाल[1] की मृत्यु की तिथि है । अधिक से अधिक

---

1. आ0 म0 मू0 क0 (त्रिवेन्द्रम सं0), पृ0 632

वह 800 ई0 की रचना मानी जा सकती है । [1]

गोपाल बलवान बौद्ध सम्राट था । उसने सत्ताइस वर्ष तक राज्य किया वह विजेता और महान् निर्माता भी था ।[2] इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व के राजाओं की तालिका दी गयी है । इनमें पोराणिक राजवंशों तथा महाभारत में उल्लिखित राजाओं – नहुष, बुद्ध, शुक, शान्तनु, चित्र, सुचित्र, पाण्डव कार्न्तवीर्य, दशरथ आदि का नाम सम्मिलित है ।

उदयन (वत्सराज) कोसलक प्रसेनजित, महाराज बिम्बिसार विद्योत तथा प्रद्योत को शाक्य सिंह बुद्ध का समकालीन कहा गया है ।[3]

इस ग्रन्थ में अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना यह दी गई है कि उकाराख्य (उदायिन या उदयिभद्र) ने बुद्ध की शिक्षाओं को विस्तार के साथ लिखवाया था ।

तदेतत् प्रवचनम् शास्तु लिखाययिष्यति विस्तरम् ।[4] नन्दों के बाद मौर्या – चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार का उल्लेख हे । ये बुद्ध के अनुयायी न थे ।

अशोक ओर उसका बौद्ध–धर्म के उत्थान तथा विस्तार के लिये स्तूपों आदि के निर्माण कराने का इस ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया गया है । अशोक के सिंहासन पर आने के पूर्व तथा बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद का काल अन्धकार युग था ।[5] इसके बाद ही बौद्ध आचार्यों एवं महाश्रमणों – नाग (नागार्जुन), मातृचेठ, असंग, नन्दक आदि का उल्लेख हुआ है जो बहुत महत्वपूर्ण है ।[6]

गुप्त सम्राट बालादित्य (नरसिंह गुप्त) बौद्ध था और उसके अल्प काल में भी बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त था तत्पश्चात् हरवारख्य (हर्षवर्धन) और शखाराख्य (शशांक)के वर्णन महत्वपूर्ण हैं ।

---

1. भूमिका
2. आ0 म0 मू0 क0, पृ0 632
3. वही, पृ0 606
4. वही, पृ0 604
5. वही
6. वही, पृ0 616

आर्य मन्जुश्री मूलकल्प बौद्ध धर्म की मन्त्रयान शाखा से सम्बन्धित अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । जिसमें अशोक के बाद देवपुत्रों – तुरुष्कों (कुषाण सम्राटों) का महायान धर्म में महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख है ।

उत्तरापथ, हिमवन्त प्रदेश तथा भारत और इसके बाहर समुद्र द्वीपों में बुद्ध क्षेत्रों का उल्लेख बौद्ध धर्म के प्रसार तथा धर्म–कला केन्द्रों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है ।

इस युग में वलभी, नालन्दा, आदि अत्यन्त प्रसिद्ध बौद्ध विद्या केन्द्र थे । कनकमुनि बुद्ध के स्तूप (कनकशास्तु – चैत्य) का भी उल्लेख महत्वपूर्ण है ।[1] अशोक के निगली सागर लघु स्तम्भ अभिलेख[2] (चित्र सं0   ) में भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें कनक मुनि बुद्ध के स्तूप (बुधस कोनाकमनस थुबे)[3] का उल्लेख है जिसे अशोक ने दोगुना सम्बर्द्धन किया था (दुतियं वढिते)[4]।

---

1. आ0 म0 मू0 क0, पृ0 640
2. पाण्डेय, राजबली, हि0 लि0 इ0, पृ0 40
3. निगली सागर लघु स्तम्भलेख, पं0 2
4. वही, पं0 2

हर्ष युगीन साधन

बाण कृत हर्षचरित :

गुप्त वंश के बाद जब हम बौद्ध धर्म के इतिहास में प्रवेश करते हैं तो हमारा ध्यान हर्षवर्धन तथा बाण कवि रचित हर्षचरित पर भी जाता है । कान्यकुब्ज सम्राट हर्ष ने बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर स्वयं अपने ग्रन्थ नागानन्द में बोधिसत्व-जीवन का चित्रण किया है ।

हर्ष के पूर्वज ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे । परन्तु उनके ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन को 'परमसौगत' कहा गया है । उल्लेखनीय है कि सुगत बुद्ध का एक नाम है । इससे सिद्ध होता है कि हर्ष के हृदय में बुद्धांकुर पहले से ही अधिष्ठित था और बाद में वह पूर्णरूपेण बुद्धानुयायी हो गया था ।

बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र का आश्रम :

बहन राज्यश्री की खोज करते-करते हर्ष विन्ध्य वन की ओर बढ़ते चले गये उन्होंने देखा कि निर्जन वन में विविध धर्मों -ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा विविध दार्शनिक विचारधाराओं के साधक शान्ति के साथ साधना में लगे रहते हैं । चिता में जलने के लिए तैयार राज्यश्री से हर्ष ने बौद्ध धर्म को अपनाने की प्रतिज्ञा की थी ।

यमुना और नर्मदा के दक्षिण विस्तृत वन्य खण्ड में ही विदिशा के निकट सांची में काकनादवोट महाविहार था जहाँ चारों दिशाओं से श्रमण आते रहते थे । पास की पहाड़ियों - ग्यारसपुर के निकट का क्षेत्र - स्तूपों से आज भी समलंकृत हैं । इन निर्जन गिरि कन्दराओं में बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म को उस समय भी जीवित रखा ।

श्री हर्षदेव रचित नागानन्द नाटक :

महाराज हर्ष ने भिक्षु दिवाकर मित्र मुनि के प्रभाव से अपना मन बुद्ध भगवान् की ओर लगाया । चीनी यात्री ह्वेनसांग के प्रभाव से वह बुद्ध का परम भक्त बन गया ।

नागानन्द, प्रिय दर्शिका और रतनावली, इन तीनों नाटकों के लेखक महाराज हर्ष ही माने गये हैं ।

नागानन्द नामक नाटक में बोधिसत्व के आत्मोत्सर्ग का वर्णन किया गया है । नाटक के प्रारम्भ में ही प्रार्थना की गयी है ।

बुद्धो जिनः पातु वः[1]

शान्ति और दान पारमिताओं के अतिरिक्त करुणा[2] तथा अहिंसा के सिद्धान्त का भी सुन्दर चित्रण इस नाटक में किया गया है।

यह ध्यान देना आवश्यक है कि विन्ध्यवन जहाँ दिवाकरमित्र का 'आराम' कान्तार वन (अटवी) में स्थित था वह प्रसिद्ध बुद्ध क्षेत्र था। वहाँ दिवाकर मित्र के बहुत से शिष्य भी रहते थे। इसे वन-ग्राम (वन्य वस्ती) भी कहा गया है। पास ही अटवी में व्याघ्रकेतु का नाम हमें 'महाकान्तरक व्याघ्रराज' का स्मरण कराता है। बौद्ध मुनि दिवाकर मित्र के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के साधक भी वहां रहते थे। बौद्ध मुनि के व्यक्तित्व का हर्ष पर विशेष प्रभाव पड़ा। आगे चलकर कन्नौज में ह्वेनसांग की बुद्ध भक्ति ने हर्ष को और भी दृढ़ बौद्ध बना दिया। इस प्रकार हर्ष बौद्ध धर्म के उन्नायक बन गये।

अल्बरूनी[4] कृत तहकीक-ए-हिन्द :

अल्बरूनी कृत तहकीक-ए-हिन्द से भी बौद्ध धर्म की स्थिति पर धुँधला प्रकाश पड़ता है। उनका समय 973 से 1047 ई0 तक माना जाता है।[5] वह बौद्ध भिक्षुओं को शमनिया लिखता है जो पालि समय और संस्कृत श्रमण शब्द से बना है। वह बौद्ध के प्रसिद्ध त्रिरत्न-बुद्ध, धर्म और संघ से भी परिचित था वह उन्हें 'बौद्ध त्रिमूर्ति' कहता है। बौद्ध आचार्यों ने चन्द्र नाम वैयाकरण तथा सुग्रीव नामक ज्योतिष शास्त्री का उल्लेख किया है। पेशावर में कुषाण सम्राट कनिष्क द्वारा निर्मित विशाल बौद्ध विहार और चैत्य को अल्बरूनी ने स्वयं देखा था। यही नहीं बौद्धों की धार्मिक लिपि को वह 'भिक्षु की लिपि' बतलाता है।[6]

---

1. नागानन्द, 1/2 (पूना, 1953 सं0आर0डी0 कर्मकर
2. वही, 5/30
3. हर्षचरित, पृ0 312,330 आदि
4. यह मुस्लिम विद्वान सुल्तान महमूद गजनी (जिसका शासनकाल 997 से 1030 ई0) के साथ भारत आया था और पंजाब में कई वर्ष रहा। भारत के दर्शन ज्योतिष आदि से वह बहुत प्रभावित हुआ उसनें संस्कृत का अध्ययन किया और मूल संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ा, समझा और उनके विषय में लिखा। उसने कई संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद भी किये। उसने 20 से अधिक ग्रन्थों (मूल तथा अनुवाद) को लिखा।
5. डिक्शनरी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 27
6. अल्बरूनी का भारत, भूमिका, पृ0 12, हिन्दी अनुवादक, श्री रजनीकान्त शर्मा, प्रकाशक, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1967, प्रथम संस्करण

उसने बमियान की दो बौद्ध मूर्तियों पर एक पुस्तक भी लिखी जिसका नाम बमियान की दो मूर्तियों की कथा' है ।[1]

अभिलेखीय साधन

साहित्यिक साधनों के साथ-साथ पुरातत्वीय साधन भी गुप्त युग के बाद के बौद्ध धर्म पर प्रकाश डालते हैं। इन साधनों को अभिलेखीय और मौद्रिक साधन विशेष महत्वपूर्ण हैं। इसकी पृष्ठभूमि के अध्ययन के लिए गुप्तकाल के भी कुछ अभिलेख अपरिहार्य हैं। यहाँ विवेच्य युग के प्रमुख स्रोत अभिलेखों का वर्णन किया गया है ।

कुमार गुप्त द्वितीय का सारनाथ का बुद्ध मूर्ति अभिलेख :

गुप्त युग के सन्ध्याकाल (गुप्त सं0 154, 473 ई0) में सारनाथ से प्राप्त बुद्ध मूर्ति पर कुमार गुप्त द्वितीय का अभिलेख प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि अभय मित्र नामक बौद्ध भिक्षु (यति) द्वारा पूजा के लिए भगवान बुद्ध (शास्ता) की प्रतिमा स्थापित की गयी थी। इस समय (154 गु0 स0 = 473 ई0 में) कुमार राजा (भूपाल) था ।[2]

बुधगुप्तकालीन सारनाथ अभिलेख :

सारनाथ से ही प्राप्त बुधगुप्तकालीन सारनाथ बुद्ध प्रतिमा अभिलेख (गु0 सं0 157, 476 ई0)[3] से ज्ञात होता है कि पृथिवी पर बुधगुप्त के शासनकाल में अभयमित्र नामक शाक्य भिक्षु द्वारा यह भगवान बुद्ध की दिव्य प्रतिमा छत्र और पद्म से विभूषित तथा चित्रयुक्त (रंगी हुई) स्थापित की गयी थी ।

वाकाटक महाराज का हरिषेण कालीन अजन्ता गुफा अभिलेख :
(ईसा की छठी शताब्दी)

अजन्ता की बौद्ध गुफाएं विश्रुत हैं। कुल मिलाकर 30 गुफाएं हैं जो विन्ध्यतन के एकान्त निर्जन प्रदेश में प्रकृति के मनोरम वातावरण में बौद्ध शिल्पियों द्वारा उत्कीर्ण की गयी

---

1. अल्बरूनी का भारत, भूमिका, पृ0 8
2. हि0 लि0 इं0, पृ0 102
3. वही, पृ0 103-104

थीं । यहाँ वाकाटक महाराज हरिषेण के समय का एक अभिलेख मिला है ।[1] इस अभिलेख में गवाक्ष, वीथी एवं वेदिका युक्त मनोहर चैत्य मन्दिरों को सुरेन्द्र (इन्द्र) कन्याओं (अपसराओं) द्वारा अलंकृत किया गया है ।[2]

महानाम का बोध गया अभिलेख :

बौध जगत में बौध गया का नाम विश्रुत है यहीं पर गु0 सं0 268 = 587 का महानाम का एक अभिलेख[3] मिला है । इस अभिलेख में कहा गया है कि महानाम भिक्षु द्वारा बोधिमण्ड[4] के पास भगवानबुद्ध का मध्य प्रासाद (मन्दिर)[5] स्थापित करवाया गया था । महानाम[6] लंका में पैदा हुआ था वह महाकाश्यप के शिष्य प्रशिष्य परिवार से सम्बद्ध था ।

देवखंग का अशराफपुर :

ताम्रपत्र अभिलेख :

इस अभिलेख का समय 670–85 ई0 है ।[7] इस अभिलेख में भगवान मुनीन्द्र[8] (बुद्ध) के विहार–विहारिका हेतु भूमि–विक्रय का विस्तृत उल्लेख है । इस विहार को बौद्ध आचार्य संघमित्र ने बनवाया था[9] और इस लेख को बौद्ध (परमसौगत) उपासक पूरदास ने लिखा था ।[10]

---

1. हि0 लि0 इ0, पृ0 114, 118.
2. वही, पृ0 117.
3. सरकार, डी0 सी0, से0 इ0 भाग 2, पृ0 56–58 अभि0 सं0 12.
4. बोधिमण्ड : बोध गया का यह पवित्र ऐतिहासिक स्थल है वहां भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया था । इस समय भी यह स्थान पूजित है जो महाबोधि मन्दिर के पीछे बोधि वृक्ष के नीचे एक काले पत्थर की चौकी से दर्शाया गया है ।
5. इस भव्य प्रासाद का तात्पर्य वर्तमान महाबोधि मन्दिर से है । 587 ई0 में महानाम ने उसका जीर्णोद्धार कर अभिवृद्धि करवायी होगी क्योंकि इस मन्दिर का निर्माण इसके पूर्व हो चुका था ।
6. सरकार, डी0 सी0, से0 इ0 भाग 2, पृ0 103–13.
7. सरकार, डी0 सी0, से0 इ0 भाग 2, अभि0 सं0 पृ0 41–43.
8. वही, पं0 2.
9. वही, पं0 14.
10. वही, पं0 18.

हर्षवर्धन का बांस खेड़ा अभिलेख :

सम्राट हर्ष का यह अभिलेख जिला शाहजहाँपुर के बांसखेड़ा स्थान से प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख हर्ष के शासनकाल के 22 वर्ष = 628 ई0 का है।[1]

इस अभिलेख में महाराजाधिराज प्रभाकर वर्धन के ज्येष्ठ पुत्र श्री राज्यवर्धन को "परम सौगत सुगत इव पर हितैकरत"[2] (सुगत अर्थात भगवान बुद्ध के समान परहित करने वाले 'परम सौगत) कहा गया है। महाराज हर्ष को यहाँ परम माहेश्वर ही कहा गया है। जिससे यह सिद्ध है कि हर्ष उस समय तक शिव का उपासक था। बाद में बौद्ध बना लेकिन राज्यवर्द्धन बुद्ध के परम अनुयायी थे। दिवाकर मित्र के कथन से यही सिद्ध होता है कि राज्यवर्द्धन बौद्ध थे। परन्तु उनकी हत्या कर दी गयी थी। हर्ष तथा ह्वेनसांग की कान्यकुब्ज सभा के वर्णन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि हर्ष बौद्ध हो गया था।

यशोवर्मदेव का नालन्दा शिलालेख :

इस नालन्दा अभिलेख की तिथि लगभग 725 ई0 है।[3] यह अभिलेख बुद्ध की वन्दना से प्रारम्भ होता है। बुद्धाय नित्यं नमः।[4] अर्थात् नित्य ही बुद्ध को नमस्कार।

इसमें बोधिसत्व द्वारा दूसरे के लिये करुणावश अपने शरीर का भी उत्सर्ग करने वाले तथा मनुष्यों के संसार–मोक्ष (भव चक्र से मुक्ति) मार्ग दिखाने वाले करुणामय और सभी तत्वों के ज्ञाता भगवान बुद्ध के लिये नित्य प्रणाम का उल्लेख है।[5]

नालन्दा महाविहार (विश्वविद्यालय) को आगम, कला, विद्या तथा विद्वानों के लिये विख्यात था और शुभ्र विहारों की पंक्तियों से सुशोभित बतलाया गया है।[6]

महान् विजेता बालदित्य नृप द्वारा विस्थापित शुद्धोदन पुत्र (भगवान बुद्ध) का यह विशाल प्रासाद कैलास पर्वत के समान विशाल एवं शुभ्र स्थित था।[7]

---

1. पाण्डेय, हि0लि0इ0, पृ0 145.
2. वही अभिलेख, पंक्ति 5.
3. पाण्डेय, हि0लि0इ0, पृ0 155.
4. वही, यशोवर्धन का नालन्दा लेख, श्लोक 42.
5. वही
6. वही, श्लोक 6.
7. वही, श्लोक 4–5, पंक्ति 6–7.

बालादित्य नरसिंह गुप्त ही गुप्त सम्राट था । जिसके शासन काल में यह भिक्षुसंघ को प्रदान किया गया था (भिक्षु संघाय दत्ताम्) ।[1]

धर्मपाल का खलिमपुर दानपात्र अभिलेख (ईसा की नवीं शताब्दी) :

यह अभिलेख नवीं शताब्दी का है ।[2] इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि —

1. परम सौगत महाराजाधिराज श्री गोपाल देव, उनके पुत्र — उत्तराधिकारी धर्मपाल भी बौद्ध धर्म के उन्नायक थे ।[3]
2. भारत के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में पाल सम्राटों का युग महत्वपूर्ण युग था । बौद्ध धर्म और बौद्ध विद्या तथा बौद्ध कला की उन्नति में भी इन सम्राटों की महत्वपूर्ण भूमिका थी ।
3. इस युग में भारत का सामुद्रिक द्वीपों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे ।

प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ के अनुसार इस युग में बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई । पाल युग की कीर्ति प्रतीक उस युग के प्रसिद्ध विद्या केन्द्र विक्रमशिला, नालन्दा, ओदन्तपुरी, सोमपुर तथा देवकोट विहार हैं । इन महाविहारों में यहां सम्पूर्ण एशिया के बौद्ध जन शिक्षा ग्रहण करने आते थे । इस युग की कला से भी बौद्ध धर्म पर प्रकाश पड़ता है ।

कुमार देवी का सारनाथ अभिलेख[4] :

बारहवीं शताब्दी का मध्य कुमार देवी महाराज श्री गोविन्द चन्द्र (गहडवाल वंशीय) की महारानी थी । उन्होंने सारनाथ में धर्माशोक द्वारा बतलाये गये श्री धर्मचक्र-विहार का जीर्णोद्धार करवाया था । इस जीर्णोद्धारित विहार को धर्मचक्र जिन विहार[5] कहा गया है ।

इस प्रकार गुप्तयुग के पश्चात् बौद्ध धर्म के अध्ययन स्रोतों के रूप में सद्धर्म पुण्डरीक, लंकावतार सूत्र, अष्ट सादृस्त्रिका प्रज्ञा पारमिता, सुवर्ण प्रभास, गण्डव्यूह तथागत गुहयक समाधिराज सूत्र आर्यमन्जुश्री मूलकल्प , सम्राट अशोक द्वारा रचित नागनन्दा नाटक,वाण

---

1. पाण्डेय, हि0लि0इं0, श्लोक 9.
2. वही, पृ0 225.
3. वही, अभिलेख, पं0 29.
4. वही, पृ0 179-183.
5. वही, अभिलेख, पृ0 24-25.

कृत हर्षचरित, फाहियान ह्वेनसांग, इत्सिंग तथा लामातारानाथ के यात्रा विवरण प्रमुख साहित्यिक स्रोत हैं । इनके अतिरिक्त कुमार गुप्त द्वितीय का सारनाथ बुद्ध प्रतिमा अभिलेख (गुप्त संवत 154=473 ई0) वाकाटक वंशी महाराजा हरिषेण कालीन अजन्ता गुप्त अभिलेख (छठी शताब्दी ई0), महानाम का बोध गया अभिलेख (गुप्त सं0 268=587 ई0), देवखड्ग का अशराफ अभिलेख (लगभग 670 ई0), हर्षवर्धन का बांसखेड़ा अभिलेख (628 ई0), यशोवर्धन का नालन्दा अभिलेख (लगभग 725 ई0) धर्मपाल का खालिमपुर दानपात्र अभिलेख (नवीं शताब्दी ई0)गहडवाल वंशी महारानी कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख (बारहवीं शताब्दी) में भी विवेच्य युग के बौद्ध धर्म की स्थिति पर व्यापक प्रकाश पड़ता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म (महायान–महाधर्म) का पावन प्रवाह भारत से निकल कर भारत भूमि को परिप्लावित कर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप (नेपाल, तिब्बत, मध्य एशिया चीन, जापान और दक्षिण पूर्व एशिया) में जन जीवन को धर्म–वारि से शुद्ध स्नान कराकर बुद्धत्व प्राप्ति के लक्ष्य की ओर प्रेरित कर रहा है ।

--------:0:-------

द्वितीय अध्याय

गुप्त युग तक बौद्ध धर्म का सर्वेक्षण

ज्ञातव्य है कि बौद्ध धर्म का उदय ईसा पूर्व छठवीं और पांचवी शताब्दी की क्रान्तिकारी घटना थी। जिसने सम्पूर्ण भारत के लोगों के हृदय को झकझोर दिया। इस युगान्तकारी घटना ने एक सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन का स्वरूप धारण कर लिया था। इस अध्याय में उन कारणों और परिस्थितियों का वर्णन किया गया है, जो इस नवीन क्रान्ति के लिए उत्तरदायी थीं। बुद्ध के उत्कृष्ट व्यक्तित्व, उनकी ज्ञान गरिमा और बहुजन हितकारी एवं बहुजन सुखकारी उपदेशों का भी उल्लेख है। साथ ही गुप्त युग तक उसके विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

बुद्ध वचनों के संग्रह के लिए बुद्ध के महापरिनिर्वाण के कुछ समय बाद ही प्रथम बौद्ध संगीति हुई थी। इसी प्रकार समय-समय पर विभिन्न भू-भागों में चार बौद्ध संगीतियां हुईं। इन्हीं संगीतियों में (तृतीय एवं चतुर्थ बौद्ध संगीति) विदेशों में भी बुद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यक्रम बने और श्रेष्ठ बौद्ध भिक्षुओं को विभिन्न भू-भागों और विदेशों को सद्धर्म प्रचार के लिए भेजा गया। त्रिपिटक ग्रन्थों पर भाष्य (टीकाएं) भी लिखी गईं। अस्तु उनका तथा आचार्य प्रवरों का वर्णन भी इसी अध्याय में है। यद्यपि यह कहा जाता है कि गुप्त सम्राट् वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। परन्तु उनके धर्म को अभिलेखों में भागवत धर्म कहा गया है जो बौद्ध और वैष्णव दोनों धर्म का सम्मिलित स्वरूप था। इसीलिए यहाँ बुद्ध को विष्णु का अवतार भी माना गया है। वास्तव में गुप्त शासकों का बौद्ध धर्म के लिए किसी प्रकार भी कम योगदान नहीं था। यहाँ संक्षेप में इन्हीं बिन्दुओं पर समीक्षात्मक विचार किया गया है।

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के कारण :

यह विचारणीय विषय है कि वे क्या कारण, शक्तियाँ या परिस्थितियाँ थीं जिनके प्रभाव से बौद्ध धर्म का उदय हुआ। इस विषय का विवेचन विभिन्न विद्वानों और चिन्तकों ने किया है। जिनमें प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। वैदिक ऋषियों और मुनियों ने भी दुःख तथा दुःख के कारणों पर विचार किया था लेकिन वह विचार ही रह गया।

वैदिक युग के अन्तिम भाग में भी ऋषि मुनि आत्म दर्शन, ब्रह्म विद्या या ब्रह्म ज्ञान एवं परिव्राजक सन्यास धर्म द्वारा मोक्ष पर विचार कर रहे थे। लोगों का यह कथनहै कि इस प्रकार के विचारों से ही सम्बन्धित मोक्ष शास्त्र भी प्रचलित हो गया। इसी युग में जनक एवं याज्ञवल्क्य नामक महान धार्मिक चिन्तक हुए। याज्ञवल्क्य के आत्म दर्शन (आत्मा वारे दृष्टव्यः श्रोतव्यः, मन्तव्यः निदिध्या सितव्यः) का उपदेश अपनी पत्नी मैत्रेयी को दिया था। उन्होंने ही अमृतत्व की प्राप्ति को मानव की सर्वोच्च उपलब्धि या श्रेष्ठ धर्म बताया था जो धन से नहीं प्राप्त हो सकता है। अमृतत्व का अर्थ है मृत्यु से मुक्ति अर्थात् जन्म मृत्यु के चक्कर (भव चक्र)से मुक्ति। हजारों परिव्राजक सन्यासी और ऋषिगण देश के विभिन्न भागों में भ्रमण कर रहे थे। बहुत से आश्रमों में तथा कुछ पर्वतों की कन्दराओं में ही रहते थे।

काशी का अजातशत्रु, पाञ्चाल का ब्रह्मदत्त, विदेह का जनक आदि ऐसे अनेक राजा और राजर्षि भी जीवन एवं जगत की असारता को समझकर राज्य त्याग कर वनों में रहने लगे थे या भ्रमण करते थे। कुछ लोगों को मानना है कि इसी वैराग्य, तप और सन्यास से प्रभावित होकर शाक्य राज पुत्र सिद्धार्थ भी गृह त्याग कर प्रवृजित हो गये। यह कथन पूर्णतया ग्राह्य नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होता है। सिद्धार्थ ने मनुष्य के दुःख और दुःख के कारणों पर विचार किया जिससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तृष्णा ही दुःख का मूल कारण है। अविद्या से ही जन्म, जरा, मरण का भव चक्र उत्पन्न होता है।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का कथन है कि "जिस समय भगवान बुद्ध का लोक में जन्म हुआ ... उस समय विचार जगत में उथल–पुथल हो रहा था। ब्राह्मण और श्रमण दोनों में ही विचारचर्चा हो रही थी। श्रमण अवैदिक थे। वे वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते थे। वे यज्ञ–यज्ञादि क्रियाकलाप को महत्व नहीं देते थे। इनके कई सम्प्रदाय तपस्या को विशेष महत्व देते थे। पालि निकाय में जिन श्रमणों का उल्लेख है उनमें प्रायः नास्तिक ही हैं। ब्राह्मण और श्रमण दोनों परम्पराएं प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। ये एक दूसरे से प्रभावित हुई।इनमें नैसर्गिक वैर था। उपनिषद् काल में ब्रह्म विद्या की चर्चा बढ़ने लगी। ऋषि आश्रमों में निवास करते थे, और ब्रह्म चिन्तन में रत रहते थे। ब्राह्मण धर्म के

अन्तर्गत तापस भी होते थे जिनको 'वैखानस' कहते थे । ... बौद्ध भिक्षुओं में भी ऐसे भिक्षु होते थे जो वैखानसों के नियमों का पालन करते थे । ... वैखंनसों से प्रभावित होकर बौद्धों में भी इसी प्रकार के यति होने लगे ।"[1]

"ऐसे काल में जब इन दार्शनिक प्रश्नों पर विचार होता था और सद्गृहस्थ भी सत्यान्वेषण में घर बार छोड़कर भिक्षु या वनस्थ होते थे । बुद्ध का शाक्य वंश में जन्म हुआ था । इनका कुल क्षत्रिय[2] और गोत्र गौतम था । इनका नाम सिद्धार्थ था । ... उस समय पूर्व के देशों में क्षत्रियों का प्राधान्य था । ब्रह्मवादी जनक ... मिथिला के थे ।"[2]

राजकुमार सिद्धार्थ तपस्वी साधु-भिक्षु की भाँति घर छोड़कर भिन्न-भिन्न आश्रमों और आचार्यों से विचार-विमर्श करने के पश्चात् उरुवेला में उग्र तप से वह वस्तु न प्राप्त कर सके, जिसके लिये घर छोड़कर जंगलों में घूम रहे थे । पुनः दृढ़ प्रज्ञ आसनस्थ चिन्तन करते हुए बोधि प्राप्त करने में सफल हुए और तभी से बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुए । उनके उपदेशों तथा उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म-पथ ही बुद्ध धर्म कहलाया । उन्होंने जीवन पर्यन्त बुद्ध धर्म का प्रचार किया ।

यद्यपि श्रीमती राइज डेविड्स की धारणा है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्म का विस्तारित स्वरूप था ।[3] परन्तु इनका मत समुचित प्रतीत नहीं होता है । वस्तुतः बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्म का प्रतिरोधी धर्म था । बौद्ध धर्म की उत्पत्ति ईश्वर की अपौरुषेयता, आत्मा की अमरता, हिंसा पूर्ण यज्ञों से स्वर्ग की प्राप्ति, तथा देवी-देवता, वर्ण व्यवस्था, और जाति प्रथा जनित मानवीय ऊँच-नीच, भेद-भाव के विरोध स्वरूप हुई थी । इसका मुख्य उद्देश्य मानव के सुख शान्ति

---

1. आचार्य नरेन्द्र देव, बौ0ध0द0, पृ0 1-2.
2. पालि बौद्ध वांगमय में बुद्ध को खत्तिय वंश में उत्पन्न बताया गया है । खतिय का संस्कृत अनुवाद क्षत्रिय किया गया है और हिन्दी में भी इसी अर्थ को लोगों ने ग्रहण कर लिया है । लेकिन 'खत्तिय' शब्द खेती और खेतिहर का द्योतक है । ज्ञातव्य है कि शाक्य गणराज्य में कृषि का विशेष महत्व था और एक कृषि इसके लिये एक विशेष उत्सव "कृषि महोत्सव" मनाया जाता था ।कुमार सिद्धार्थ को क्षण भंगुरता का ज्ञान इसी एक कृषि महोत्सव में ही हुआ था । इसी प्रकार तत्कालीन सभी गणराज्य खेतिहर थे और उनके अधिकांश नाम भी उपज के नाम पर पड़े थे ।
3. बौ0 ध0 द0, पृ0 2.

के लिए प्रशस्त मार्ग दिखलाना था जो अविद्यान्धकार को तिरोहित कर सद्ज्ञान प्रकाश करता था। अस्तु वह ब्राह्मण धर्म का विस्तार कैसे हो सकता था। बौद्ध धर्म तो ब्राह्मण धर्म का विपरीत स्वरूप था।

कुछ विद्वान् श्वेताश्वतर उपनिषद् का बुद्ध पर प्रभाव मानते हैं। इस उपनिषद् के पहले श्लोक में ही ब्रह्म वेत्ताओं की सभा में विचार विमर्श करते हुए प्रश्न उठे :

क्या कारण है ?

कैसे हमारी उत्पत्ति हुई ?

हम किस आधार पर टिके हैं ?

हमारे सुख-दुःख का क्या कारण है ? इत्यादि।

उत्तर में विचार करते-करते सोचते थे - काल, स्वभाव, नियति आदि हैं", नहीं हैं। उन्होंने ध्यान योग द्वारा देवात्मा शक्ति को अपने हृदय की गुफा में छिपा देखा।[1]

बुद्ध की साधना भी ध्यान योग पर आधारित थी। इसलिए बुद्ध पर लोग इस उपनिषद् का प्रभाव मानते हैं। किन्तु लोगों की उक्त धारणा तर्क की कसौटी पर पूरी सही नहीं सिद्ध होती है। उपर्युक्त उद्धरण में उपनिषदिक ऋषयों को ध्यान योग से हृदय में छिपी देव शक्ति दिखाई पड़ती थी। जबकि बुद्ध के ध्यान योग में मानव का दुःख और उसका निदान दिखाई पड़ता था। वे देव शक्ति में कोई विश्वास नहीं करते थे। अस्तु बौद्ध धर्म पर उनका प्रभाव मानना असंग प्रतीत होता है।

बुद्ध और उनका व्यक्तित्व :

वास्तव में बौद्ध धर्म बुद्ध के उदात्त व्यक्तित्व की देन है। अंग्रेजी में एक कहावत है :

"व्हेयर देयर इज़ एक विल, देयर इज़ ए वे" अर्थात् जहाँ दृढ़ निश्चय होता है तो उसके लिये रास्ता निकल ही आता है। संस्कृत में भी कहा गया है कि "क्रिया सिद्धिः सत्ये भवति महतां"।

किसी महापुरुष की कार्य सिद्धि उसके पौरुष तथा अन्तःकरण की शक्ति पर निर्भर करती है। साथ ही सत्व शुद्धि परमावश्यक है। ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म की यह परम्परा थी कि कठिन तप से सभी मल जल जाते हैं। सिद्धार्थ ने भी प्रारम्भ में उस कठिन तप-मार्ग को अपनाया और

---

1. श्वेताश्वतर उपनिषद्, प्रारम्भिक श्लोक

इतना कठोर तप किया कि उनका शरीर सूख कर जर्जर हो गया था । शरीर पर हाथ फेरने पर खाल भूसी की भाँति हाथ में आ जाती थी । खड़े होने पर भी चक्कर आ जाता था । अन्त में उन्होंने ऐसा कठोर तप निरर्थक माना, काम सुख भोग विलास की निरर्थकता गृहस्थ जीवन में ही परख चुके थे । अस्तु मध्यम मार्ग (मज्झिम पतिपदा) का सिद्धान्त स्थापित कर मन और कर्म की शुद्धि तथा चित्त की निर्मलता को कल्याणगामी मार्ग बतलाया :

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा ।

सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं ।।

तथागत के निरज्जना नदी के तट पर शिलाखण्ड पर विराजमान हो विचार किया[1] – इस प्रकार दृढ़ता और सत्व बुद्धि से उनका कर्मकार्य स्वयं धर्म–कार्य बन गया । यह तो कोई साधक ही अनुभव कर सकता है ।

"तम्मे मतिं होति चरामिधम्मं" ।

दृढ़तापूर्वक जीवन की अन्तिम श्वांस तक उपदेश देने तथा सर्वलोक हित के भाव से वे कल्याण धर्म देशक विश्वबन्धु बन गये और उनका धर्म भी विश्वधर्म बन गया । जिसने धर्मनिष्ट दार्शनिकों, कवियों और कलाकारों को विविध रूप में बुद्ध का दर्शन कर बुद्ध रूप सजाया है ।

बुद्ध चरित्र अश्वघोष का अमृत काव्य है जिसमें धर्म–दर्शन और काव्य रस की त्रिवेणी का प्रवाह पाठक के हृदय कमल को प्रफुल्ल कर देता है । इसके पढ़ने से पाठक को बुद्ध के व्यवितत्व की झांकी प्राप्त होती है । इसके कुछ अंशों को नीचे उद्धृत किया जाता है ।

सूर्यः स एवाम्यधिकं चकाशे

उज्वाल सौम्यार्चि एनो रितोऽग्निः ।

---

1. मुझमें मे भी श्रद्धा है
   वीर्य (उत्साह) है
   स्मृति, समाधि और प्रज्ञा है ।
   मैं स्वयं धर्म का साक्षातकार करूँगा ।

2. बुद्ध चरित, 1/22.

उनका आविर्भाव अन्धकारपूर्ण जगत के बोध के लिए (बोधाय जातोऽस्मि)[1] सूर्योदय ही था । उनका धर्म संसार में श्रेष्ठ मार्ग था ।[2]

उन पुरुषोत्तम (स पुरुषोत्तम) के ज्ञान से जरा, व्याधि और मृत्यु को जानते हुए कौन आदमी संसार में सुख से बैठा रह सकता है, कौन सुख से सो सकता है या हँस सकता है ।

जरा व्याधिं च मृत्युं च को जानन्य चेतनः ।
स्वस्यस्तिष्ठेन्निवीं देद्वा शयेद्वा किं पुनर्हसेत् ।[3]

विषय सुख में सोते हुए (प्रमादी) जगत को भगवान् बुद्ध ने जगाकर प्रबुद्ध मार्ग पर सरलता से सतत धर्म सरिता के समान निर्वाण प्राप्ति के लिए जीवन भर बहते रहे ।

<u>बुद्धत्व</u> :

प्रज्ञा (बुद्धि) के द्वारा प्राप्त बोध (ज्ञान) से ही बुद्ध होता है । जब पाँचों भिक्षु उनको त्यागकर चले गये तब सिद्धार्थ "बोध" के लिए कृत संकल्प (सम्यक् संकल्प) हो पीपल मूल में पर्यंक बद्ध हुए और यह प्रतिज्ञा की जब तक मैं कृत कृत्य नहीं होता तब तक इसी आसन में बैठा रहूँगा । रात्रि के प्रथम याम में उनको पूर्व जन्मों का ज्ञान हुआ । दूसरे याम में दिव्य चक्षु विशुद्ध हुआ, अन्तिम याम में 'द्वादश अंगी प्रतीत्य समुपाद' का साक्षात्कार हुआ और अरुणोदय (अन्तिम चौथे याम) में उनकी सर्वज्ञता का प्रत्यक्ष हुआ । यह उनका बुद्धत्व है । उस दिन से वे बुद्ध कहलाने लगे । सर्वज्ञता का साक्षात्कार कर भगवान ने जो आप्त वचन (उदान) कहे, उनकों हम यहाँ उद्धृत करते हैं :–

"कष्टमय जन्म बार–बार लेना पड़ा । मैं गृहकारक की खोज में संसार में व्यर्थ भटकता रहा । किन्तु गृहकारक अब मैंने तुझे देख लिया । अब तू गृह निर्माण फिर न कर सकेगा । तेरी सब कड़ियां टूट गईं । गृह शिखर ढह गया । चित्त को निर्वाण का लाभ हुआ । तृष्णा का क्षय देख

---

1. बुद्ध चरित, 1/15.
2. वही, 1/79.
3. वही, 4/59.

लिया ।"[1]

उन्होंने तृष्णा को दुःख का कारण माना जो निर्वाण प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है । इसी तृष्णा का पूर्ण क्षय निर्वाण की स्थिति है ।(तण्हखयो विरागः निरोधो निब्बानों) यह निर्माण कुशीनगर के शाल वन में प्राप्त निर्वाण (महापरि निर्वाण) से भिन्न था । बोध गया का निर्वाण शरीर रहते हुए निर्वाण (साधु पाद निर्वाण) था । कुशीनगर में प्राप्त निर्वाण को "निरूपाधिशेष निर्वाण" कहा गया है । सात दिनों तक वे विविध वृक्षों तले बैठकर विमुक्ति सुख का आनन्द लेते रहे । भगवान को बुद्ध, तथागत, सुगत आदि कहते हैं । भगवान के श्रावक, सौगत, शाक्य पुत्रीय बौद्ध कहलाते हैं । ऐसी कथा है कि बुद्धत्व प्राप्त कर भगवान बुद्ध को धर्म उपदेश की अनिच्छा हुई । किन्तु ब्रह्म सहंपति की प्रार्थना पर वे धर्मोपदेश के लिए तैयार हुए । पहले उनका विचार आलार-कालाम" और उद्रक रामपुत्र को धर्म का उपदेश (देशना) देने का हुआ । क्योंकि उनके साथ पर्याप्त समय रह चुके थे । किन्तु यह जानकर कि अब वे जीवित नहीं हैं । अस्तु उन्होंने उन पाँच भिक्षुओं को धर्म का उपदेश करने का निश्चय किया जो उनका साथ छोड़कर ऋषिपत्तन मृगदाव (सारनाथ, काशी का तपोवन) चले गये थे ।

आसाढ़ पूर्णिमा के दिन उनका पहला उपदेश सारनाथ में हुआ । यह उपदेश "धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र" कहलाता है । पाँचो भिक्षु बुद्ध के शिष्य बन गये ।[2] वाराणसी का एक वणिक पुत्र यश भी उनका शिष्य बन गया और उनके बाद उस यश के चौवन साथी भी बुद्ध के शिष्य हो गये । इस प्रकार बुद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार कार्य भी सारनाथ से ही प्रारम्भ हुआ [3] और यही सारनाथ में प्रथम बार भिक्षु संघ की स्थापना भी हुई ।

---

1. भगवान गौतम बुद्ध, पृ0 45 (भदन्त बोधानन्द), बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ प्रकाशन ।
   "अनेक जाति संसार संधविस्सं अनिब्बिसं
   गहकारक गवेस्सन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं
   गहकारक दिट्ठोसी पुन गेहं न काहसि
   सब्बा ते फासुगा भग्गा गहकूट विसंखतं
   विसंखार गतं तण्हानं खय मज्झगा ।"
2. पंचवर्गीय भिक्षु इस प्रकार थे – 1. कोडिन्य, 2. वप्प, 3. भद्दिय, 4. महानाम, 5. अश्वजित ।
3. महावग्ग, पृ0 23–33.

बुद्ध की शिक्षाएं :

भगवान बुद्ध की धर्मशिक्षा का मूलाधार मनुष्य का दुख ही था जिससे मुक्ति पाने का मार्ग खोजना ही बुद्ध का एक उद्देश्य था। उन्होंने बताया कि –

दु:ख है।
दु:ख का हेतु (कारण) है।
दु:ख का निरोध (नाश भी हो सकता है) है।
दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपदा (दु:ख नाश का मार्ग) भी है।
इस निरोध गामिनी मार्ग के आठ अंग हैं। इसीलिये इसे 'अष्टांगिक मार्ग'[1] कहते हैं। यह बुद्ध का धर्म मध्यम मार्ग भी कहलाता है।

ऋषिपत्तन मृगदाव में भी भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को मानव के हित सुख कल्याण के लिये धर्मोपदेश (सद्धर्म देने) के लिए निर्देशित किया था और कहा था कि हे भिक्षुओ सद्धर्म का उपदेश करो जो आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है, अन्त में कल्याणकारी है।[2] वे भिक्षुओं के साथ पदचारिका करते हुए जीवन के अस्सी वर्षों तक उपदेश करते रहे।

भगवान के परि निर्वाण के बाद मगध सम्राट् अजातशत्रु के संरक्षण में बुद्ध वचनों का संकलन करने के लिये प्रथम बौद्ध संगीति राजगृह (मगध की राजधानी) में हुई। बुद्ध ने अपने सरल वचनों में ही गूढ़ अर्थ (परमार्थ) भर दिया जिसका प्रभाव कालान्तर के कबीर आदि साधु कवियों पर बहुत पड़ा। बुद्ध ने उनका भाष्य नहीं किया।जिसकी जैसी बुद्धि और प्रतिभा हो वह उसका वैसा ही रस (आनन्द) पान करे।

यही कारण है कि उनके वचनों पर ही आधारित एक ही धर्म ओर संघ के भिन्न–भिन्न भेद हो गये। प्रज्ञाशील तथा मन कर्म और वाणी की शुचिता सहित चिन्तन से व्यक्ति बुद्धत्व की ओर अग्रसर होता है। संसार के प्रलोभन–धन, अधिकार यश और स्त्री आदि मोहक और बाधक (मार विघ्न) है। वैराग्य और त्याग बहुत कठिन है। वैर तथा द्वेष त्याग कर मैत्री भाव उससे भी कठिन है। दूसरे को बचाने के लिये अपने शरीर का त्याग करना और भी कठिन है। लेकिन बोधिसत्व इन सभी गुणों से सम्पन्न होते हैं।

---

1. अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग इस प्रकार हैं – 1. सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक वचन, 4. सम्यक् कर्मान्त, 5. सम्यक् आजीविका, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति, 8. सम्यक् समाधि।
2. देसेथ भिक्ख वे धम्मं आदि कल्याणं मज्झे कल्याणं परियो सानं कल्याणं।

बुद्ध वचनों का संगायन और संचयन

प्रथम धर्म संगीति :

महाराज अजातशत्रु के राज्य काल में प्रथम बौद्ध संगीति मगध की राजधानी राजगृह में सप्तपर्णी गुफा में हुई थी ।[1] जिसमें भगवान बुद्ध के सुभाषित कल्याण-वचनों का संकलन किया गया। यही बौद्ध धर्म साहित्य का आदि स्रोत पिटक, विनयपिटक और धर्मपिटक था । यह धर्म संग्रह किसी न किसी रूप से आज भी सुरक्षित है । इसके भिन्न-भिन्न अंगों (निकायों)पर बुद्धघोष ऐसे विद्वान बौद्धाचार्यों ने भाष्य लिखे थे । इस धर्म-वचन सरोवर के रत्नों को चुनने के पहले ही हंस स्वरूप फाहियान, ह्वेनसांग और इत्सिंग आदि कितने दूर देशस्थल से उड़कर भारत आते रहे ।

इस संगीति के अध्यक्ष महाकाश्यप थे । संग्रह कार्य के लिए केवल अर्हतों को ही चुना गया था । उस समय तक आनन्द अर्हत नहीं थे । यद्यपि आनन्द भगवान के वचनों का 'टेपरिकार्ड' ही थे जिन्होंने भगवान बुद्ध के सभी उपदेशों का श्रवण किया था । लेकिन संगीति प्रारम्भ होने से पूर्व ही उन्होंने अर्हत-पद प्राप्त कर लिया और उन्हें संगीति में सम्मिलित किया गया । इस घटना से तथा महाकाश्यप की अध्यक्षता से सिद्ध होता है कि ज्ञान प्रधान स्थविर ही धर्म संग्रह के कोषाध्यक्ष थे । इसमें बुद्ध वचनों को विनय और धम्म दो भागों में संकलित किया गया जिसके लिए विनय समिति के अध्यक्ष के रूप में उपाली तथा धम्म समिति के लिए अध्यक्ष के रूप में आनन्द को चुना गया था ।[2]

बुद्ध के उपदेश, देश-काल की सीमा से परे, सर्वकालिक और सर्वजनीय थे । यह बुद्ध वचन साहित्य मीठे जल का समुद्र था जिसे पीने और हृदय में धारण करने की जिसमें जितनी क्षमता हो उसे धारण कर ले । उन्होंने रहस्य ज्ञान को सरल जन भाषा में कथाओं के माध्यम से समझाया था ।

द्वितीय धर्म संगीति

धार्मिक जीवन में ध्यान (चिन्तन) का विशेष स्थान रहा है । बुद्ध धर्म तो चिन्तन प्रधान धर्म ही है । भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ही उसमें मतभेद के चिन्ह उभरे । परन्तु वे उस समय तो दबे ही रहे । यद्यपि यत्र-तत्र भिक्षु गण अपनी मनमानी भी करने लगे । विनय और आचार

---

1. महावस्तु, जि0 1/70/19.
2. वही, जि0 1/70/15-19.

के नियमों में ढिलाई बरतने लगे । यह भेद वैशाली के भिक्षुओं में स्पष्ट दिखाई देने लगा जिसके कारण द्वितीय बौद्ध संगीति का आह्वान किया गया । यह संगीति वैशाली में सम्पन्न हुई थी । इसके परिणाम स्वरूप बौद्ध संघ में दो भेद हो गये :

1. स्थविरवाद और
2. महासांधिकवाद ।[1]

दीपवंस और महावंस (सिंहल के बौद्ध ग्रन्थ) से पता चलता है कि विनय के दस नियमों के विषय में मतभेद उत्पन्न हुआ था । वैशाली के भिक्षुओं को परिवार पाठ (विनय का एक भाग) नहीं मान्य था । वे दस बातों को भी मानते थे जिनका भगवान बुद्ध ने निषेध किया था । इनमें विकाल भोजन और सोना चांदी ग्रहण भी सम्मिलित था । काकण्ड पुत्र यश ने इसका विरोध किया जिससे विवाद उत्पन्न हो गया था । इसके निपटाने के लिये वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति हुई ।[2] इस संगीति में भाग लेने के लिए बारह लाख बौद्ध भिक्षु एकत्रित हुए थे जिनमें सात सौ अर्हत भिक्षुओं को ही संगीति के लिए चुना गया । सात सौ भिक्षुओं के भाग लेने के कारण इस संगीति को 'सप्तसतिका' भी कहा गया । आठ महीने तक यह बौद्ध संगीति चली तथा दसों बातों को निषिद्ध घोषित किया गया ।

इससे दस हजार वण्जिपुत्र भिक्षु असन्तुष्ट हुए और उन्होंने एक दूसरा सम्मेलन करके महासांघिक आचार्यवाद की प्रतिष्ठा की ।[3]

इस प्रकार भिक्षु संघ स्थविरवाद और थेरवाद में विभक्त हो गया ।

त्रिपिटक : तृतीय धर्म संगीति

प्रथम बौद्ध संगीति में बुद्ध वचनों का संकलन केवल दो भागों में किया गया – विनयपिटक और धम्मपिटक । कालान्तर में तृतीय बौद्ध संगीति में धम्मपिटक को दो भागों में – अभिधम्मपिटक और सुत्तपिटक में विभक्त किया गया । उसी समय इसे त्रिपिटक कहा गया । सुत्तपिटक को भी पांच निकायों – दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, खुद्दकनिकाय, संयुक्तनिकाय और अंगुत्तरनिकाय में विभाजित किया गया ।

---

1. डॉ0 अँगने लाल, सं0 बौ0 सा0 भा0 जी0, पृ0 130.
2. दृष्टव्य, महावंस, चतुर्थ परिच्छेद ।
3. महावंस, पृ0 19–20.

अट्ठकथा और आचार्य :

पालि त्रिपिटक के भिन्न-भिन्न अंगों (निकायों)पर लिखे गये भाष्यों का सिंहली परम्परा के अनुसार अट्ठकथा प्रणयन प्रथम बौद्ध संगीति के समय (राज्यगृह) में हुआ । इसका विकास आगे की संगीतियों में हुआ ।

लंका में इसका प्रवेश महेन्द्र द्वारा हुआ जो सम्राट् अशोक के पुत्र थे और उन्होंने ही सिंहली में इसका रूपान्तर किया था । ईसा की पांचवी शताब्दी में आगे चलकर बुद्धघोष ने सिंहली से पुनः पालि (मागधी) में इसका अनुवाद किया ।[1] कांचीपुर में धम्मपाल ने भी श्री लंका जाकर कुछ निकायों पर भाष्य लिखे थे ।[2]

इस प्रकार अट्ठकथा से हमारा तात्पर्य बौद्ध धर्म का प्राचीन संकलित स्वरूप है । कथा-वस्तु के भाष्य से हमें विविध सम्प्रदायों के धार्मिक सिद्धान्तों का ज्ञान होता है । गुप्त युगीन बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ विख्यात ही हैं ।

बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार :

बौद्ध धर्म एक 'मिशनरी धर्म' है । जिसका मिशनरी जीवन भगवान बुद्ध के ही मिशिनरी जीवन से प्रभावित हुआ है । बौद्ध गया में बोधि प्राप्त करने के बाद कुशीनगर में अन्तिम श्वांस तक अपने महापरिनिर्वाण के पूर्व भगवान बुद्ध एक स्थान से दूसरे स्थान को धर्म का प्रचार करते हुए घुमते रहे ।

स्वयं धर्म प्रचारक भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को भी प्रारम्भ से ही भिन्न-भिन्न दिशाओं में घूम-घूम कर धर्म का प्रचार करने का आदेश दिया था ।[3] इस प्रकार अनेक शिष्यगण धर्म प्रचार करते रहे । भारत और भारत के बाहर इस धर्म का प्रचार करने का विशेष श्रेय महाराज सम्राट् अशोक, महाराज कनिष्क प्रथम, महाराज हर्षवर्धन तथा पाल सम्राट महाराज धर्मपाल और देवपाल एवं असंख्य बौद्ध भिक्षुओं को रहा है ।

---

1. डॉ0 श्रीमती यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 13.
2. वही, पृ0 133-34.
3. धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र ।

अशोक और सद्धर्म प्रचार :

दिव्य कार्य में दिव्य पुरुषों को दिव्य पथ पर लाने के लिए दिव्य घटनाएं घटित होती रही हैं। कलिंग विजय में नर संहार को देखकर अशोक का मन दुःख और निर्वेद की ओर मुड़ा। विमर्श हुआ जिसने उसके मुख से दिव्य वाणी मुखरित की। इससे मेरी वेदना बढ़ गयी है (वाढ़ं च वेदन मतं)[1] यह शरसत्य विजय (शस्त्र विजय) तुच्छ है (लहुकाहि सरसकं विजय)[2]। एक ही विजय महान है जो धर्म विजय है (इयं च मुखं मते विजयो वो धम्म विजयो)[3]। इस धर्म विजय का आधार प्राणि-कल्याण है। इसीलिए अभिलेखों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी महाराज अशोक इच्छा करते हैं कि सभी प्राणियों की अक्षति हो। उनको किसी भी प्रकार से क्षति न हो। सभी प्राणियों के प्रति अक्षति, संयम, समवर्या (व्यवहार समता) मृदुता, मुदिता के प्रीति रस के साथ उनको हृदय से अपनाया जाय :

देवानांपिय पियदसी राजा इक्षति सब भूतानं
अछतिं सयमं च समचेरा मादवं चं।[4]

बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के इतिहास में तृतीय बौद्ध संगीति का विशेष महत्व है। यह संगीति सम्राट् अशोक के संरक्षण में पाटलिपुत्र के अशोकाराम विहार में मोग्गलिपुत्र तिस्य की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई थी।[5] इसी संगीति में भारत तथा भारत के बाहर विभिन्न भू भागों में निम्नलिखित प्रथित स्थविर धर्म प्रचार के लिए भेजे गये।[6]

भिक्षु	देश
1. मज्झिन्तिक	काश्मीर और गन्धार
2. महादेव	महिष मण्डल (मैसूर)
3. रक्खित	वनवासी (उत्तरी कनारा)
4. योन, योनक धम्म रक्खित	अपरान्तक (जिला थाना, महाराष्ट्र)

---

1. अशोक का 13 वां शिलालेख, पं0 2.
2. वही, पं0 11.
3. वही, पं0 8.
4. वही, पं0 8.
5. महावंस, परिच्छेद 12.
6. डॉ0 श्रीमती यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 52.

भिक्षु	देश
5. महा धम्म रक्खित	महारट्ठ (महाराष्ट्र)
6. महारक्खित	योन देश
7. मज्झिम	हिमवन्त प्रदेश
8. शोण और उत्तर – सुवर्ण भूमि	(पेगू वर्मा का समुद्र तटीय भाग)
9. महेन्द्र, इट्ठिय, उत्तिय, सब्बल और भद्दसाल	(श्री लंका) सिंहल

अशोक के बाद बौद्ध धर्म :

अशोक के बाद बौद्ध धर्म की धारा मन्द पड़ गयी थी। उसके वंशजों में कुछ तो बौद्ध धर्मानुयायी ही नहीं थे और जो धर्मावलम्बी थे। उनमें शक्ति और उत्साह की कमी थी।बाद में पुष्यमित्र शुंग तो बौद्ध धर्म का विनाशक ही था जिसने एक बौद्ध भिक्षु के वध के लिए कई सो स्वर्ण मुद्राओं (दीनार) का इनाम रखा था।[1] कदाचित अपने शासन के अन्तिम चरण में वह धर्म सहिष्णु हो गया था जब बौद्धों ने सांची तोरण द्वार का निर्माण करवाया था। सांची के तोरण द्वार से प्राप्त लेख 'सगम राजे'[2] से सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म और कला के क्षेत्र में सांस्कृतिक उन्नति की धारा प्रवाहित होती रही है। साँची स्तूप नं0 1 के तोरण द्वार पर भी कला के उत्कृष्ट साक्ष्य है। यह शुंग काल में भी बने थे।

सातवाहन युग में पश्चिम भारत का नासिक, पूना और आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी की घाटी बौद्ध गुफाओं और विहारों तथा संघारामों से भरा हुआ है।

भारत के प्रथम रसायन शास्त्री और बौद्ध धर्म के प्रथित आचार्य नागार्जुन इसी युग की महान विभूति हैं जिनके द्वारा स्थापित बौद्ध विश्व विश्वविद्यालय (महाविहार) के अवशेष नागार्जुन कोण्डा में प्राप्त हुए हैं।

---

1. डॉ0 श्रीमती यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 96.
2. मिश्रा, भास्कर नाथ, सांची, पृ0 17

कनिष्क द्वारा बौद्ध धर्म प्रचार :

कुषाण काल में बौद्ध धर्म का भारत में ही नहीं मध्य एशिया के देशों में भी प्रचार–प्रसार हुआ। विशाल स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ जिनके अवशेष पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि महायान बौद्ध धर्म का अभ्युदय और विकास है। इस युग में बौद्ध कला में भगवान बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। मथुरा और गान्धार इस मूर्तिकला के प्रसिद्ध केन्द्र थे। गान्धार मूर्ति कला की बुद्ध मूर्तियां यूनानी मूर्ति कला शैली से पूर्णतया प्रभावित थी जबकि मूर्तिकला विदेशी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त थी।

कुषाण सम्राट् कनिष्क पहले शैव एवं वैष्णव धर्म को मानने वाला था बाद में उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बौद्ध धर्म ने उसे सबसे अधिक प्रभावित किया। उन्होंने स्थविर पार्श्वनाथ से बौद्ध दीक्षा ली। इसकी सार्थकता का उसने अनुभव किया और उसका प्रचार–प्रसार करने के साथ–साथ इसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन करवाया।[1] इस धर्म संगीति में सम्पूर्ण त्रिपिटक साहित्य पर भाष्य लिखे गये। पहली बार इसी युग में संस्कृत भाषा को बौद्ध धर्म की भाषा स्वीकार किया गया। अस्तु सभी ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे गये। पार्श्व, अश्वघोष, वसुमित्र इस युग के प्रसिद्ध बौद्धाचार्य थे। इस संगीति के दो सत्र हुए। प्रथम सत्र या प्रथम अधिवेशन पुरुषपुर (पेशावर) के कनिष्क महाविहार में हुआ जिसके अध्यक्ष पार्श्व स्थविर थे और उपाध्यक्ष वसुमित्र थे। दूसरा अधिवेशन कश्मीर के कुण्डल वन विहार में हुआ जिसके अध्यक्ष वसुमित्र और उपाध्यक्ष अश्वघोष थे।[2]

चतुर्थ बौद्ध संगीति का प्रभाव यह हुआ कि बुद्ध–भक्ति, बुद्ध–प्रतिमा और पुष्प गन्ध आदि से बुद्ध पूजा तथा गुफाओं और वनों में बुद्ध ध्यान प्रचलित हुआ। जिसके प्रभाव से बुद्ध और बोद्धिसत्वों की प्रतिमाओं से, सारनाथ, मथुरा गान्धार–अजन्ता और एलोरा आदि बुद्ध क्षेत्रों तथा बौद्ध–विद्या केन्द्रों में कला–वीथियां रची गयीं। गान्धार से लेकर पश्चिमी चीन की सीमा तक बुद्ध और उनका बुद्ध क्षेत्र स्थापित हुए। तुन्हांग की सहस्र बुद्धों की गुफाएं (चीन की पश्चिमी सीमा पर) विश्व के लिए दृश्य और ध्येय तथा ज्ञेय तीर्थ बन गये।[3]

---

1. डॉ0 श्रीमती यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 56.
2. वही, पृ0 62–63.
3. वही, पृ0 229–33.

महास्थविर पार्श्व ने अश्वघोष को धर्म-चर्चा में निरुत्तर कर अपना शिष्य बनाया था। पार्श्व बाद में कनिष्क के धर्म गुरु भी रहे। अश्वघोष अपने युग बौद्ध जगत के एक सूर्य थे। वे महातर्क शास्त्री, आर्य सुर्वाक्षी के पुत्र साकेत निवासी और महान तार्किक थे।[1] वर्णाश्रम, जाति-व्यवस्था और तज्जनित मानवीय असमानता-अस्पृश्यता आदि के पोषक थे। लेकिन जब उन्होंने धार्मिक वाद-विवाद में बौद्धाचार्य पार्श्व से पराजित हो बुद्ध धर्म अंगीकार किया तब उन्होंने उक्त वर्ण और जाति तथा उससे उत्पन्न दोषों के विरुद्ध 'ब्रजसूची' नामक ग्रन्थ की रचना की। वस्तुतः यह ग्रन्थ वर्ण-व्यवस्था एवं जाति प्रथा के कठोर पत्थर (वज्र)का छेदन करती सूची (सुई) ही है। यहाँ उन्होंने बुद्ध के उस सिद्धान्त का निरूपण किया कि -

एकैवजातिलो के सामान्या न पृथक्वि धा।[2]

<u>गुप्त शासकों का बौद्ध धर्म में योगदान</u> :

यद्यपि गुप्त युग वैष्णव धर्म का महान युग था। फिर भी बौद्ध धर्म उपेक्षित न था और न इस युग में धर्म की क्षति ही हुई। यह धार्मिक सहिष्णुता का युग था। कदाचित् इसी युग में पहली बार बुद्ध और विष्णु का तादात्म्य स्थापित किया गया और बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया। समुद्रगुप्त ने अपने राजकुमार (चन्द्रगुप्त) की शिक्षा दीक्षा का भार बौद्धाचार्य वसुबन्धु को सौंपा था।[3]

चन्द्रगुप्त द्वितीय (देवराज) ने काकनाद बोट महाविहार (साँची) में दीपक जलने हेतु तथा पाँच भिक्षओं के भोजन हेतु पच्चीस दीनार दान दिये थे।[4]

<u>कुमार गुप्त प्रथम</u> :

कुमार गुप्त प्रथम के राज्यकाल से सम्बन्धित एक बुद्ध प्रतिमा पर अंकित अभिलेख[5] (129 गु0स0) सारनाथ में प्राप्त हुआ है। इस प्रतिमा पर अंकित अभिलेख इस प्रकार हैं :

"नमो बुधानं भगवतो सम्यक्सम्बुद्धस्य
इयं प्रतिमा प्रतिष्ठापिता भिक्षु बुद्ध मित्रेण।"[6]

---

1. सौन्दरानन्द का अन्तिम वाक्य, पृ0 126.
2. दिव्यावदान, 332/17; 323/4; 332/17.
3. वाकाटक गुप्त युग, पृ0 156.
4. चन्द्रगुप्त का साँची लेख (93 गु0 सं0), पं0 6-10.
5. सरकार, से0 इं0 प्रथम भाग, अभिलेख सं0 20, पृ0 294-295, पं0 2.
6. वही, अभिलेख . पं0 1-2.

अर्थात् सम्यक् सबुद्ध भगवान बुद्ध को नमस्कार । इस प्रतिमा की प्रतिष्ठापना भिक्षु बुद्ध मित्र द्वारा की गई । सारनाथ में कुमार गुप्त द्वितीय (154 गु0 सं0) तथा बुद्ध गुप्त (157 गु0 सं0) के राज्यकालों में भी बुद्ध प्रतिमाओं को स्थापित किया गया था ।[1]

बुद्ध गुप्त का नालन्दा मुहर अभिलेख[2] तथा यहीं एक अन्य मुहर पर कुमार गुप्त द्वितीय के पुत्र महाराजाधिराज श्री विष्णु गुप्त का भी अभिलेख[3] प्राप्त हुआ है ।

इन अभिलेखों की प्राप्ति से ज्ञात होता है कि इन दोनों सम्राटों कुमार गुप्त प्रथम तथा बुध गुप्त का सम्बन्ध नालन्दा महाविहार से अवश्य था । उन्होंने इसकी उन्नति में अवश्य योगदान दिया होगा ।

वैन्य गुप्त का गुनैधर ताम्रपत्र लेख (188 गु0 सं0) :

बंगदेश में कोमिल्ला से 18 मील दूर गुनैधर नामक स्थान से प्राप्त ताम्रपत्र लेख[4] में महाराज वैन्यगुप्त के शासनकाल (188 गु0 सं0 = 507 ई0) में यहां महायानी भिक्षुसंघ का अवलोकितेश्वर विहार था । जहाँ भगवान बुद्ध की गन्ध पुष्प धूप आदि से त्रैकालिक पूजा वन्दना होती थी ।[5] इस अभिलेख में भिक्षु संघ को भूमि दान देने का भी उल्लेख है । इसी अभिलेख में अवलोकितेश्वर महाविहार का उल्लेख भी मिलता है ।[6]

प्रभाकर कालीन मण्डसौर शिलालेख[7] :

मालव सं0 524 = 467 ई0 के मण्डसोर से प्राप्त अभिलेख के प्रारम्भ में भगवान बुद्ध की वन्दना इस प्रकार की गई है :

"तस्मै नामोऽस्तु सुगताय गताय शान्तिम् ।"[8]

---

1. सरकार, से0 इं0, प्रथम भाग, अभिलेख सं0 31, पृ0 328–29.
2. वही, अभिलेख सं0 33, पृ0 330.
3. वही, अभिलेख सं0 36 , पृ0 340.
4. वही, अभिलेख सं0 37, पृ0 340.
5. वही, पं0 3–7.
6. वही, पं0 9–10.
7. वही, अभिलेख सं0 52 ए, पृ0 406–407.
8. वही, पं0 1.

इस अभिलेख में लोकोत्तर विहार का उल्लेख है जहाँ स्तूप, कूप, प्रपा और आराम (उपवन) भी शोभायमान थे ।[1]

इस प्रकार संक्षेप में यह प्रतीत होता है कि पूर्व गुप्त युग का बौद्ध धर्म का इतिहास उत्थान पतन का इतिहास है । पुष्यमित्र शुंग जैसे विद्वेषी शासकों ने बौद्ध धर्म का बहुत अपकार किया । फिर भी सातवाहन और कुषाण काल और गुप्तकाल में बौद्ध धर्म का विकास और विस्तार होता रहा ।

---------:0:---------

1. सरकार, से0 इं0, प्रथम भाग, अभिलेख सं0 52, पं0 9–10, 15.

तृतीय अध्याय

बौद्ध – निकाय

बुद्ध के सद्धर्म राज्यकाल में उनके उपदेशों का समाज में अत्यधिक आदर हुआ और वे जिधर से घूमते हुए निकल गये, लोग उनके व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर उनके सामने नतमस्तक हो गये । वातावरण में धम्मघोष गूंजने लगा । प्रबुद्ध ब्राह्मण चिन्तक, तपस्वी, योगी तथा क्षत्रिय राजर्षि एवं श्रेष्ठी–वैश्य तथा 'हीन' लोग भी उनकी जय–जय करते थे । इस प्रकार समाज की विभिन्न धारायें बुद्ध (बुद्ध) धम्म और बुद्ध–संघ में मिलकर एक ही धारा पूर्वी देश के मगध, अंग, लिच्छवि, शाक्य, कोशल तथा वत्स और काशी जनपदों को पवित्र करती रही । शरीर का अन्त (मृत्यु) भी एक सत्य ही है और वह समय भी आ गया जब वे मल्ल राज्य के कुशीनगर में हिरण्या नदी के तट पर चिर–शय्या पर शान्ति की नींद में सो गये । आनन्द रो पड़े .... । कितना कटु है प्रिय–वियोग ।यहाँ पर ज्ञान और दर्शन भी सहारा नहीं देता है ।

पार्थिव शरीर को महाकाश्यप ने प्रणामाग्नि से प्रज्ज्वलित किया । भस्म हो गया कंचन शरीर । उन्होंने सदा के लिये अपने को अपने आप भवचक्र से मुक्त किया । वे बुद्ध बन गये । अमृत्व पाकर संसार को बांटते रहे । परन्तु संसार में सांसारिक बहुजन इस ज्ञान के पात्र न थे । इसलिये उनके वचनों पर लोगों का विश्वास शिथिल होने लगा । विनय के नियमों में भी लोग ढ़ील मांगने लगे । यह चिन्तन का अभाव तथा शरीर के प्रति लगाव था ।

अस्थि–संचय के विभाजन पर ही युद्ध के बादल घिर आये; परन्तु विवेक की वायु ने उन्हें उड़ा दिया ।

मनुष्य आराम चाहता है । भिक्षु जब अपने को संसार व समाज का एक साधारण प्राणी समझने लगता है, तो उसका मन संसार की ओर भागता है । जब वह ध्यान–च्युत होता है, तभी 'डेविल' उसके मन पर हावी हो जाता है । सत्य तो है कि संसार में धन की भी आवश्यकता है, तो भिक्षु क्यों बना ।

<u>संघ भेद की आशंका और बुद्ध वचन संकलन</u> :

महापरिनिर्वाण के पश्चात् ही भिक्षु सुभद्र ने मनमानी करने की स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति की ।[1] अस्तु महाकाश्यप ने शीघ्र से शीघ्र बुद्ध वचनों को संकलित करने के लिये राजगृह में प्रथम

---

1. महापरिनिब्बान सुत्तं, पृ0 161–162; निम्बाक भिक्षु ग0 प्रज्ञानन्द, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्, लखनऊ, 1981.

बौद्ध संगीति बुलाई ।[1] महावस्तु से ज्ञात होता है कि यह संगीति वैधय पर्वत के उत्तरी ढाल पर स्थित 'सप्तपर्णी' गुहा में सम्पन्न हुई थी ।[2] इसी ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि इस संगीति में अठारह सहस्र सदस्यों ने भाग लिया था । लेकिन चुल्ल वग्ग (विनयपिटक के अन्तर्गत) जिसमें इस संगीति का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है उसमें कहा गया है कि एकत्रित भिक्षुओं में से पाँच सौ अर्हन्त भिक्षुओं की ही इसमें भाग लेने के लिये चुना गया था । इसीलिये इस संगीति को 'पंचशतिका' कहा गया था ।

बौद्ध संघ में पहली फूट :

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के एक सौ साल बाद भिक्षु संघ में फूट (कलह, भेद, आदि) के बीज अंकुरित होने लगे । कुछ विशेष भिक्षु विनय-प्रतिपादित आदेशोपदेशों का एवं कार्यक्रमों का उल्लंघन करते देखे गये । एक बार ऐसा हुआ कि वैशाली के विहार में उपोसथ[3] (उत्सव) के समय एक पात्र रखा दिया गया था जिसमें लोग सिक्के डालते थे । उसी विहार में यश नामक एक भिक्षु ने इस पर आपत्ति की । क्योंकि वह भगवान बुद्ध के उपदेशों (विनय) विरुद्ध था । लेकिन वैशाली के भिक्षुओं ने उसकी बात को नहीं माना । साथ ही वैशाली के भिक्षु निम्नलिखित दस कार्य भी करते थे जो विनय विरुद्ध थे । वे दस बातें थीं : 1. आवश्यकता के लिये नमक साथ रखा, 2. मध्यान्ह के बाद भी भोजन करना, 3. एक ही दिन में दोबारा भोजन करना, 4. एक ही क्षेत्र में कई स्थानों पर उपोसथ दिवस (उत्सव) मनाना, 5. कार्य कर लेने के पश्चात् अनुमति लेना, 6. रूढ़ियों को शास्त्र मान लेना, 7. भोजन के बाद छाँछ पीना, 8. ताड़ी पीना, 9. बिना किनारी के चादर प्रयोग करना, 10. सोना-चाँदी रुपया पैसा ग्रहण करना ।[4]

काकण्ड पुत्र यश के विरोध के कारण विवाद उत्पन्न हो गया । इस अधिकरण (विवाद) को निबटाने के लिये वैशाली बालुकाराम[5] में राजा कालाशोक के संरक्षण में द्वितीय बौद्ध संगीति का

---

1. महावंश, तृतीय परिच्छेद, पृ0 11-14.
2. महावस्तु, जि0 1/70/15-19.
3. उपोसथ प्रत्येक महीने की दो अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासी ये चार दिन बौद्धों के उपोसथ दिवस होते हैं जब विहारों में उत्सव आयोजित किये जाते हैं ।
4. बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ0 30-31.
5. बी0 सी0 ला, मैनुवल आफ बुद्धिष्ट हिस्टॉरिकल ट्रेडीशन्स, पृ0 402 (यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1941); एच0 कर्न, मैनुवल आफ इण्डियन बुद्धिज्म, पृ0 105.

आयोजन किया गया। सभी भिक्षुओं में से सात सौ विनय-विशारद अर्हत भिक्षुओं को संगीति के लिये चुना गया। इसीलिये इस परिषद को "सप्त शतिका" भी कहा गया है। आठ मीने यह परिषद् चली। इसमें उक्त दस बातों को निषिद्ध और विनय विरुद्ध ठहराया गया। इससे दस हजार वज्जि पुत्रक भिक्षु (वज्जिः पूर्वी उत्तरी विहार के निवासी भिक्षु) असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने अपनी एक अलग परिषद् करके जिसे महासंगीति कहा जिसमें दसों बातों को स्वीकारते हुए अपने को 'महासांघिक' कहा। इस प्रकार थेरवाद की ही एक शाखा महासांघिक अलग हो गयी। इसे आचार्यवाद भी कहा जाता है।[1]

इस प्रकार द्वितीय बौद्ध संगीति के बौद्ध भिक्षु संघ दो भागों में विभाजित हो गया :

1. स्थविरवाद या थेरवाद
2. महासांघिक

भिक्षुसंघ-परिष्कार प्रयास :

धीरे-धीरे इन निकायों में भी भेद-प्रभेद उत्पन्न होते गये जिससे सम्राट अशोक के समय तक बौद्ध संघ अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में विभाजित हो गया। भिक्षु और भिक्षुणी मनमानी करने लगे थे। इसकी प्रतिध्वनि अशोक के धर्म अभिलेखों में भी सुनाई पड़ती है। ऐसे दोषी भिक्षु-भिक्षुणिओं को चीवर उतार कर सफेद कपड़े पहनाकर विहारों से निकाल देने का उसने आदेश प्रसारित किया था।[2] इस भेद से वह बहुत दुखी हुआ (बाढं च वेदनमतं[3]) अस्तु सम्राट ने महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र के अशोकाराम में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया।[4] इस संगीति में 214 (अथवा 216) सिद्धान्तों पर बहस हुई। जिनमें से 130 अन्धक आदि के हैं। 40 सिद्धान्त बाहुलिकों के सम्मिलित हैं। 27 सिद्धान्त ऐसे हैं जो पुराने 18 निकायों से सम्बन्धित हैं। 17 निकायों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। राहुल जी इन 17

---

1. महावंस, चतुर्थ परिच्छेद, पृ0 19-20.
2. गौण शिलाभिलेख, सारनाथ, पं0 1-6; सांची तथा कौसाम्बी के भी अभिलेख इसका वर्णन करते हैं। देखिये – हि0 वि0 इ0, पृ0 37-39.
3. शिलालेख – 13, पं0 3.
4. भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 56-57.

सिद्धान्तों में से 5 सिद्धान्त अन्धकों से एक पूर्व शैलीय से, 5 उत्तरापलक से, पांच महासांघिकों से सम्बन्धित मानते हैं। एक सिद्धान्त सम्मितीय से सम्बन्धित है।[1]

अठारह निकाय वर्णन :

महावंस में बौद्ध संघ के 18 निकायों का इस प्रकार उल्लेख मिलता है[2] :-

उपर्युक्त सभी 18 निकाय हीनयान के ही निकाय थे।
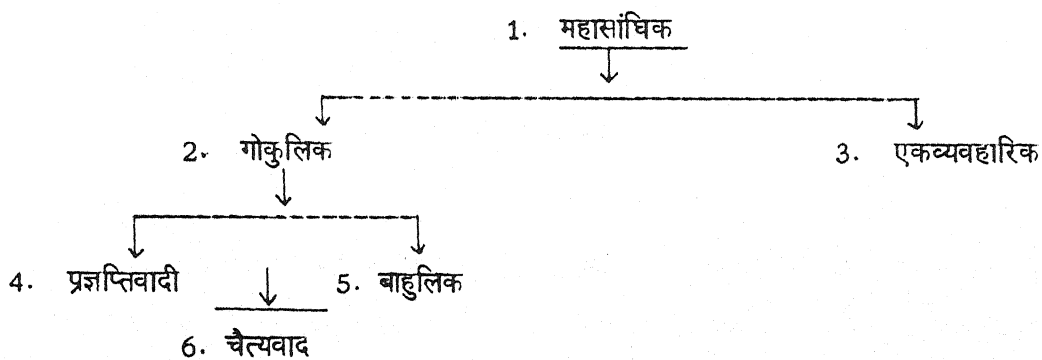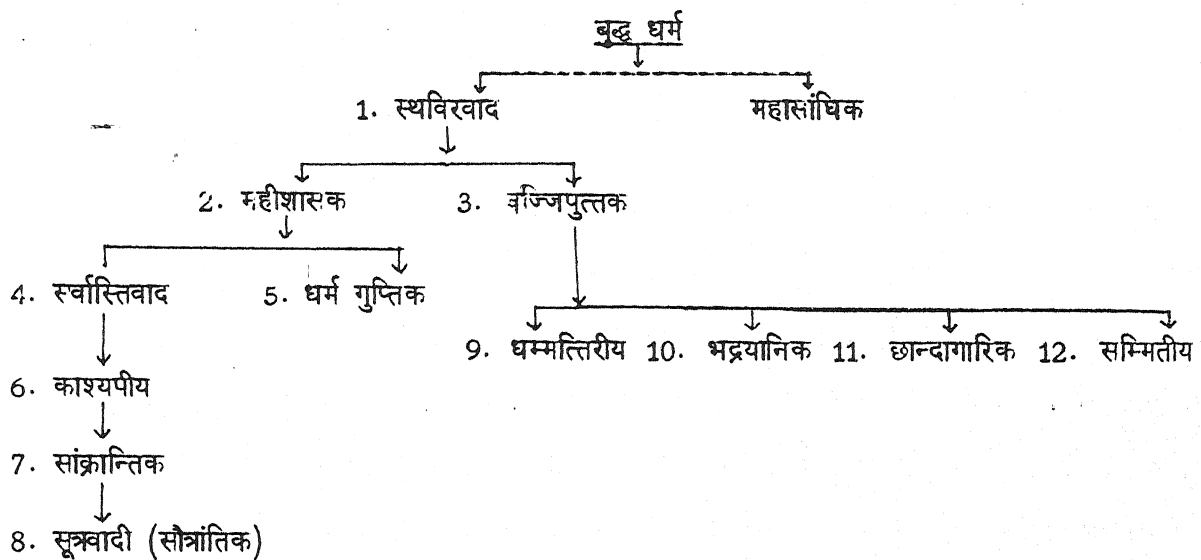
---

1. महावंस, पंचम परिच्छेद, पृ0 20.
2. वही

थेरवादी निकाय वर्णन

यहाँ थेरवाद के निकायों के उन बिन्दुओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है जिनके कारण ये निकाय अपने पूर्व निकाय से भिन्न थे ।

महीशासक :

महीशासक विनय से ज्ञात होता है कि जब द्वितीय बौद्ध संगीति हुई थी उस समय प्रसिद्ध अस्थविर 500 भिक्षुओं के साथ दक्षिणागिरि गये । वे संगीति के बाद लौटे । उनकी सम्मति के लिये 'संगायनों' को दोहराया गया जिसमें आहार सम्बन्धी आठ नियमों का विनय में समावेश किया गया । महीशासक नाम महिषामण्डल (मैसूर) सम्बन्धित था जिसका अभिलेखों से उनका सम्बन्ध बन वासी से सिद्ध होता है ।[1]

वज्जिपुत्र :

इसी प्रकार वज्जिपुत्र निकाय का सम्बन्ध वृज्जि गण देश जिसकी राजधानी वैशाली से सिद्ध होता है और वात्सीपुत्त का सम्बन्ध वत्स देश से प्रतीत होता है । डॉ0 पाण्डे इन दोनों नामों – वज्जि पुत्र और वात्सी पुत्त को भ्रमात्मक मानते हैं । कुछ लोगों की यह धारणा थी कि वज्जिपुत्त का संस्कृत रूप वात्सी पुत्र था । ऐसी दशा में इस निकाय का उदय वत्स देश जिसकी राजधानी कौशाम्बी को मानना होगा । लेकिन यह सिद्ध हे कि इस निकाय का उदय वज्जि देश में ही द्वितीय बौद्ध संगीति के समय हुआ था । दोनों नामों से यह आभासित होता है कि इस निकाय का विस्तार दोनों भू भागों – वज्जि और वत्स में होने के कारण वज्जि और वात्सी पुत्र कहलाये ।

सर्वास्तिवाद और धर्म गुप्तिक :

महीशासक निकाय की दो धारायें थीं ।

सर्वास्तिवाद :

थेरवाद भी महीशासक की शाखा थी । 'कथावत्थु' में मोग्गलि पुत्र तिस्स ने इसके सिद्धान्तों का भी खण्डन किया था । इस निकाय के लोग अभिधर्म की महत्ता प्रदान करते थे । कनिष्क के समय (प्रथम शताब्दी में) चतुर्थ बौद्ध संगीति में अभिधर्म पिटक पर "अभिधर्म महा

---

1. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 186.

विभाषा शास्त्र" की रचना हुई थी । गान्धार, काश्मीर, मथुरा और श्रावस्ती में इस निकाय का जोर था । अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र में इस निकाय के पूर्व के आचार्यों में पार्श्व वसुमित्र, घोषक, बुद्धदेव, धर्मत्रात जिन्हें भदन्त कहकर सम्बोधित किया गया है । विभाषा शास्त्र के अनुयायी वैभाषिक कहलाये । काश्मीर के वैभाषिक और गान्धार के वैभाषिक पाश्चात्य वैभाषिक कहलाते थे । सर्वास्तिवाद के धर्मज्ञाता, वसुबन्धु, परमार्थ बोधि रुचि, आचार्य गुप्त युग में हुए थे[1] जिन्होंने विपुल बौद्ध साहित्य की रचना की । सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने मातीपुर (मन्दावर)[2], नवदेवकुल[3] (नेवल जिला उन्नाव) हयमुख[4], कुशीनगर[5], वाराणसी[6], नालन्दा[7] के निकट हिरण्य पर्वत[8], गुर्जर[9] आदि बौद्ध केन्द्रों में सैकड़ों और हजारों की संख्या में सर्वास्तिवादी भिक्षु देखे थे ।[10]

इस निकाय के लोग अतीत और भविष्य (अनागत) धर्मों की सत्ता स्वीकार करते थे 'सर्व अस्ति' उनका मूल सिद्धान्त था । वसु मित्र और भव्य के अनुसार वे नाम और रूप में ही सब कुछ संग्रहीत मानते थे । रूप से तात्पर्य स्थूल शरीर है और नाम का तात्पर्य संज्ञा है ।

<u>धर्म गुप्तिक</u> :

मही शासक निकाय भी इस शाखा के प्रवर्तक 'धर्म गुप्त' थे जो महामौद्गल्यायन के शिष्य थे । ये लोग अपने पिटक में एक बोधिसत्व पिटक और एक धंरणी पिटक भी मानते थे । इनका भेद बुद्ध और संघ को जाने वाले दान के विषय में था ।[11]

<u>काश्यपीय</u> :

काश्यपीय सर्वास्तिवाद की शाखा थी । इसे स्थावरीय सद्धर्म वर्षक एवं सुवर्षक भी कहा गया है ।[12] इनके आवास उत्तरापथ में थे । काश्यपीय भिक्षु हैमवत्तों के आचार्य हैं । इसी आधार

---

1. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 262-64.
2. सैमुवल बील, चा0 ए0 इ0, जि0 2, पृ0 221.
3. वही, जि0 2, पृ0 246.
4. वही, जि0 2, पृ0 251.
5. वाटर्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 28.
6. वही, पृ0 47.
7. वही, पृ0 169, 175.
8. वही, पृ0 178, 180.
9. वही, पृ0 249.
10. बौ0 ध0 वि0 इ0, पृ0 279; वाटर्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 178, 285, 289.
11. बौ0 ध0 वि0 इ0, पृ0 186-87.

पर दोनों का एक ही निकाय माना जा सकता है । ज्ञातव्य है अशोक के प्रचार से ही बौद्ध धर्म दुर्गम हिमालय के भूभाग में भी पहुँच सका था । हिमवतवासी भिक्षु ही हैमवत कहलाये होंगे ।

सांक्रान्तिक :

काश्यपीय के बाद सर्वास्तिवाद की यह एक प्रशाखा थी । कदाचित इसका प्रादुर्भाव निर्वाण की चतुर्थ शताब्दी में हुआ ।[1]

"परमार्थ के अनुसार वे सम्बन्धों को एक जन्म से दूसरे जन्म में संक्रमण मानते थे जिससे उनका नाम सांक्रान्तिक पड़ा । केवल मार्ग–भावना से ही यह स्कन्ध निरुद्ध हो सकता था ।"[2]

सूत्रवादी (सौत्रांतिक) :

सर्वास्तिवाद की ही शाखा जो इसका भी उदय सांक्रान्तिक शाखा की भाँति चतुर्थ बुद्ध शताब्दी में हुआ। दीपवंश और महावंस तथा सारिपुत्र परिपृच्छा सूत्र में सांक्रान्तिक और सौत्रान्तिक दोनों शाखाओं को अलग–अलग बतलाया गया है अन्यत्र उन्हें एक ही माना गया है ।[3] ह्वेनसांग ने कुमार लुब्ध (कुमारलाभ कुमार लात) को सौत्रान्त्रिक सम्प्रदाय का प्रर्वतक माना है ।[4] जबकि वसुमित्र आनन्द को और भव्य 'उत्तर' (भिक्षु) को उनका आचार्य बतलाते हैं ।[5] "सौत्रान्तिकों ने अपनी तार्किक आलोचना से बौद्ध दर्शन को पुनः अपनी मूल प्रवृत्ति की ओर खींचा ।"

महासांघिक निकाय की शाखाएं

गोकुलिक :

यहाँ संक्षेप में महासांघिक निकाय की इन शाखाओं के मुख्य विचार सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है । महासांघिकों की गोकुलिक शाखा के अन्य नाम कौक्कुटिक, कोक्कुलिक भी मिलते हैं । डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डे का मत है कि कुक्कुटाराम से सम्बन्धित होने के कारण सम्भवतः इन्हें कौक्कुटिक कहे गये ।[7] ये त्रिपिटक में अभिधर्म को ही बुद्ध की वास्तविक देशना मानते थे ।

---

1. बौ0 ध0 वि0 इ0, पृ0 177.
2. वही, पृ0 202.
3. वही, पृ0 282.
4. वार्टर्स, यु0 ट्रे0 इं0, जि0 1, पृ0 245; जि0 2, पृ0 288–89.
5. बौ0 ध0 वि0 इं0, पृ0 282.
6. वही, पृ0 284.
7. डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डे, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 291.
(उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण, 1990.)

वे अपने को विनय से मुक्त मानते थे । सूत्र पठन–पाठन को भी व्यर्थ मानते थे । वे केवल ध्यान भावना को महत्व देते थे ।[1]

एक व्यवहारिक :

इनका मानना था कि तथागत एक चित्त से एक क्षण में सब धर्म जानते हैं । इसी कारण उन्हें एक व्यवहारिक कहा गया ।[2]

प्रज्ञप्तिवादी :

महा कात्यायन को इस निकाय का प्रवर्तक माना जाता है । ये लोग पुण्य से आर्य मार्ग (बुद्ध का श्रेष्ठ मार्ग – सद्धर्म) की प्राप्ति मानते हैं ।[3]

बाहुलिक :

इन्हें अभिलेखों में बहुश्रुतीय कहा गया है । इस निकाय में बुद्ध देशना की पांच बातें – अनित्यता, दुःख, शून्यता, अनात्म्य, ओर निर्वाण इन्हें लोकोत्तर माना जाता था ।[4]

चैत्यवादी :

श्रीधान्यकटक के धातुस्तूप को महाचैत्य कहा गया है । उसके उपासक चैत्यक या चैत्यवादी कहलाये ।

अन्धक बौद्ध निकाय

कुछ विद्वानों ने महासांघिक निकाय से ही अन्धक बौद्ध निकाय का प्रादुर्भाव माना है ।[5] फिर भी ये निकाय सम्मितीय स्थविरवाद शाखा के अन्तर्गत माने जाते हैं । साथ ही यह सुनिश्चित करना कठिन है कि उनकी उत्पत्ति कब हुई । महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार अन्धक बौद्ध निकाय इस प्रकार हैं ।[6]

---

1. डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डे, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 291.
2. वही, पृ0 291.
3. वही, पृ0 292.
4. वही, पृ0 291.
5. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 103.
6. वही, पृ0 103.
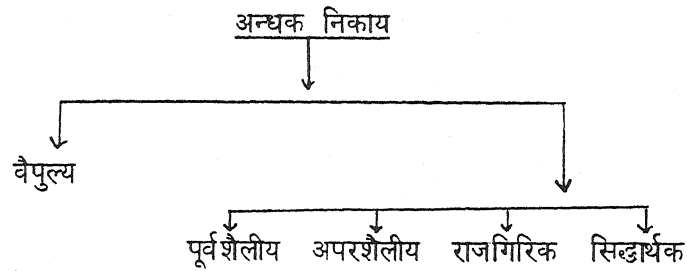
भारत के इतिहास में शुंगों और कण्वों के बाद आन्ध्र या आन्ध्र भृत्य शासक हुए जिनकी सबसे पहली राजधानी प्रतिष्ठान (पैठन महाराष्ट्र प्रदेश) थी। रट्ठ या महारट्ठ नाम पड़ने के पहले प्रतिष्ठान के आसपास का भूभाग अन्धक कहा जाता था और इसीलिये सातवाहन शासकों को अन्धक भी कहा गया है, जो समय के साथ आन्ध्र बन गया। कालान्तर में सातवाहनों में अपनी राजधानी धान्यकटक (अमरावती, आन्ध्र प्रदेश) बनाइ। अन्धक या आन्धक लोगों के नाम पर ही वह भू भाग आन्ध्र कहलाया।[1] सातवाहनों के शासनकाल में बौद्ध धर्म और कला की बहुत उन्नति हुई। अमरावती (धान्यकटक) में भव्य स्तूप और मूर्तियाँ तथा कला कृतियाँ बनीं। नासिक काल की भाँति अजन्ता और एलोरा की पर्वत गुफाओं के निर्माण का शुभारम्भ भी अन्धक सातवाहनों के ही शासनकाल में हुआ।[2]

अन्धक साम्राज्य में महासांघिकों और धर्मोत्तरीयों का जोर था जैसा कि नासिक गुफा लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है।

अन्धक बौद्ध निकाय की जिन शाखाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है उनका यहाँ संक्षिप्त वर्णन कर देना अनुपयुक्त न होगा।

वैपुल्य (वेतुल्ल) :

कथावत्थु की अट्ठकथा में वेतुल्ल (वैपुल्य) वादियों को महान शून्यतावादी कहा गया है। ज्ञातव्य है कि शून्यवाद के संस्थापक बौद्धाचार्य नागार्जुन थे।[3] उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ

---

1. राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 99, पाटि0 1.
2. वही, पृ0 99.
3. भा0 वि0 बौ0 ध0 ग्र0, पृ0 90.

था।[1] कथावत्थु में वेतुल्लवादियों के शून्यता के अलावा सभी सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में इनके (वेतुल्लवादियों के) मत संघ बुद्ध और मैथुन के विषय में भेद रखते थे। इनका कहना है कि –

1. संघ न दान ग्रहण करता है न उसे परिशुद्ध करता है तथा न उपभोग करते हैं न संघ को देने (दान देने) में महाफल है।
2. बुद्ध को दान देने में भी कोई महाफल नहीं है, बुद्ध न तो लोक में आकर ठहरे और न उपदेश ही दिये।
3. खास मतलब से (एकाभिप्रायेण) मैथुन का सेवन किया जा सकता है।[3]

"ये तीनों ही बातें एक प्रकार से बौद्ध धर्म में भयंकर विप्लव मचाने वाली थी। विशेषकर ऐतिहासिक बुद्ध के अस्तित्व से इन्कार करना तथा खास स्थिति में मैथुन की अनुज्ञा। पहले में हम महायान के आखिरी विकास तक का स्पष्ट पूर्व रूप पाते हैं और दूसरे में वज्रयान या तंत्रयान बौद्ध धर्म का स्फुट बीज।"[4]

वेपुल्यवाद का उद्भव केन्द्र धान्यकटक (अमरावती) और श्री पर्वत (नागार्जुनी) कोण्डा (दोनों आन्ध्र प्रदेश) में था। मञ्जुश्री मूलकल्प महा वैपुल्य सूत्रों में से एक है।[5]

पूर्वशैलीय :

कथावत्थु की अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि तृतीय बौद्ध संगीति के बाद उत्पन्न होने वाले अन्धक निकायों में से एक था। महासांघिकों का चैत्यवाद निकाय पुराने अठारह निकायों में सम्मिलित किया गया है लेकिन इन अन्धक निकायों को सम्मिलित नहीं किया गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वशैलीय निकाय का उदय चैत्यवादियों के भी पश्चात् हुआ था। प्रथम शताब्दी ई0 पू0 इस निकाय का उदय माना जा सकता है। यह भी धान्यकटक के आसपास ही फला–फूला।[6]

---

1. कथावत्थु, 16/6–9.
2. वही, 17/10; 18/1.
3. वही, 23/1.
4. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 105–106.
5. वही, पृ0 106.
6. वही, पृ0 104.

पूर्वशैलीय लोग बुद्ध को राग दोष और मोह का विजेता (जिन राग दोष मोह)[1] तथा श्रेष्ठ धातुधारी (धातुवर परिग्रहीत) मानते थे । दूसरा भेद लोक परलोक और निर्वाण को लेकर था । उनका मानना था कि निर्वाण (अमत पद) ऐसे व्यक्ति की विचार वस्तु है जो अभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त नहीं हुआ है ।[2] वे निर्माण को मनुष्य की दोष मुक्त स्थिति मानते थे ।[3]

अपर शैलीय :

धान्यकटक की पश्चिमी पहाड़ियों पर बसने वाला यह निकाय भी चैत्यवादियों से निकला प्रतीत होता है । निकाय संग्रह के अनुसार "आलवक गर्जित" सूत्र इनका प्रमुख सूत्र था जिसका निर्माण इन्हीं लोगों ने किया था । इनके सिद्धान्त पूर्व शैलीय लोगों की भाँति ही थे ।[4] उल्लेखनीय है कि धान्यकटक के स्तूप का नाम महाचैत्य था । इसी के नाम से यहाँ के भिक्षु चैत्यवादी कहलाये ।[5]

मंजुश्री मूलकल्प से ज्ञात होता है कि श्री पर्वत के दक्षिण में धन्यकटक स्तूप में तथागत धातु सुरक्षित थे जिसे धान्यकटक चैत्य के नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध था ।[6] उसी के नाम से इस चैत्य की पूजा आराधना करने वाले दक्षिणपंथी चैत्यवादी कहे गये थे । धान्यकटक पहाड़ी के पूर्व वाले पूर्व शैलीय और दूसरी ओर (पश्चिम) वाले अपर शैलीय कहलाये ।

राजगिरिक :

राजगिरिक आन्ध्र निकाय था । नाम से यह आभासित होता है कि राजगिरि के आस-पास इस निकाय का प्रभुत्व था । लेकिन आन्ध्र में राजगिरि कहाँ है यह अनिश्चित है । कथावत्थु में इनके जिन ग्यारह सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है उनमें से आठ सिद्धार्थक निकाय के हैं अस्तु

---

1. डॉ0 नलिनाक्ष दत्त, बुद्धिष्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृ0 116, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1978.
2. मिसेज रीज डेविड्स, प्वाइंट्स आफ द कन्ट्रोवर्सी, पृ0 231–233; दृष्टव्य नलिनाक्ष दत्त, बु0 से0 इ0, पृ0 116.
3. बु0 से0 इ0 इण्डि0, पृ0 117.
4. पुरातत्व निबन्धवली, पृ0 104.
5. वही, पृ0 102.
6. मंजुश्री मूलकल्प, पटल 10 :

   श्री पर्वते महाशैले दक्षिण-पथ-संज्ञके ।
   श्री धान्यकटके चैत्ये जिनधातु धरे भुवि ।।

राहुल सांकृत्यायन इन्हें सिद्धार्थकों से सम्बन्धित या समीपी मानते हैं ।[1] निकाय संग्रह के अनुसार इन्होंने अंगुलिमाल पिटक का निर्माण किया था । इनके आठ सिद्धान्तों में से मुख्य थे – चित्त केवल कार्य कर्ता है चेतसिक उसका धर्म नहीं (नत्थि चेतसिको धम्मो) दान देना महत्वपूर्ण नहीं बल्कि महत्वपूर्ण है उस दान देने का मन, रुचित पुण्य फल शरीरान्त के बाद मिलता है । अर्हत असामयिक नहीं मरते । सभी कुछ कर्माधीन है ।[2]

सिद्धार्थक :

इनके विषय में भी कुछ भी ज्ञात नहीं होता । राजगिरिकों के साथ सिद्धान्त समानता के आधार पर राहुल जी ने यह कहा है कि "या तो एक दूसरे से निकले थे या दोनों उद्‌गम एक था । निकाय संग्रह में इन्हें "गूढ़ वेस्संतर" का कर्ता बताया गया है ।[3] इस प्रकार ये निकाय (अन्धक निकाय) आन्ध्र सम्राटों के समय में विशेष रूप से समुन्नत हुए । आन्ध्र राजाओं और उनकी रानियों का बौध धर्म में कितना अनुराग था इसका अनुमान अमरावती और नागार्जुनी कोण्डा में मिले शिलालेखों से लगाया जा सकता है जिसमें बौद्ध धर्म की प्रगति के लिये उनके द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख हुआ है ।

मंत्रयान :

मंत्रशक्ति में लोगों का विश्वास बुद्ध के समय भी प्रचलित था । दीघ निकाय के ब्रह्मजाल सुत्त से पता चलता है कि तथागत ने उन्हें मिथ्या जीव (झूठा–व्यवसाय) कहकर मना किया । लेकिन भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के जितने अधिक वर्ष बीतते गये लोगों की दृष्टि उनके मानुषी गुणों से हटती गयी । वे बुद्ध के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को भूलने लगे । बौद्ध विरोधी लोग तो ऐसा चाहते ही थे उन्होंने अलौकिक गुणों का खूब प्रचार किया । बुद्ध जीवन पर अनेक अलौकिक कहानियां रची गईं । धीरे–धीरे बुद्ध की अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिये बुद्ध वचनों का पारायण ही काफी माना जाने लगा । उनके उच्चारण से ही रोग, भय आदि का निवारण माना गया । भूत–प्रेतों

---

1. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 104.
2. बु0 से0 इ0 इ0, पृ0 118–19.
3. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 104–105.

को वश में करने के लिये कुछ सूत्रों की रचना होने लगी । वैपुल्यवादियों ने बुद्ध के लोक में आने से ही इनकार किया ।

वैपुल्यवादियों ने लम्बे-लम्बे बौद्ध सूत्रों के स्थान पर कुद्द पंक्तियों वाली धारणियाँ बनाई । उन्हें याद करने में भी कठिनाई प्रतीत हुई । अतः छोटे-छोटे मंत्र बनाये । कुद्द उदाहरण देखिये – ओं मुने मुने महामुने स्वाहा, ओं आ हुँ, ओं तारे तूत्तारे तुरे स्वाहा आदि । यही नहीं धीरे-धीरे एकाक्षरी मंत्रों की रचना की गयी । इस प्रकार मंत्रयान धीरे-धीरे काफी समय तक चलता रहा । महामना राहुल सांकृत्यायन[1] मंत्रयान के इस विकास काल के निम्नलिखित तीन चरण मानते हैं :-

1. सूत्र रूप में मंत्र = ई0 पू0 400 से 100 तक
2. धारणी मंत्र = ई0 पू0 100 से 400 ई0 तक
3. मंत्र-मंत्र = ई0 400 से 700 तक

धारणी मंत्र युग में अलौकिक बुद्ध के सहायक और अनुयायी कितने ही अवलोकितेश्वर मंजुश्री आदि अलौकिक बोधिसत्वों की सृष्टि की गई ।

मंत्रों का माहात्म्य बढ़ने लगा। उस पर धन और श्रम खर्च होने लगा । पथ विचलित भिक्षुओं ने योग (हठ योग) का सहारा लिया क्योंकि योग के माध्यम से अनेक चमत्कार दिखाकर जन साधारण को अपनी ओर जल्दी आकृष्ट कर सकते थे । अतः उन्होंने "हठ, त्राटक क्रियाओं तथा मंत्र-तंत्र की वृद्धि के साथ-साथ सहस्रों नये देवी-देवताओं की सृष्टि करने लगे।"[2] इन मंत्रों के पालक यानी और योगी दो प्रकार के थे । प्रथम कोटि में वे लोग थे जो इन क्रियाओं का "स्वान्तः सुखाय" या "परहिताय" करते थे । दूसरी कोटि में चालाक छिपे लोग थे जो लोगों की श्रद्धा-भावना को उभारते थे क्योंकि उनकी सफलता श्रद्धालुओं की अधिकाधिकसंख्या पर निर्भर थी । श्रद्धालुओं के दान-चढ़ावों से धन सम्पत्ति मठों (विहारों) में एकत्रित होने लगी । धीरे-धीरे वहाँ विषय भोगों का संग्रह होने लगा और इस प्रकार "मद्य" और "स्त्री संभोग" का श्रीगणेश भी उन्हीं लोगों ने प्रारम्भ कर दिया ।

---

1. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 111.
2. वही, पृ0 111.

"इस प्रकार मंत्र, हठयोग और मैथुन – ये तीनों तत्व क्रमशः बौद्ध धर्म में प्रविष्ट हो गये इसी बौद्ध धर्म को मंत्रयान कहते हैं।"[1]

प्रादुर्भाव क्षेत्र :

मंजुश्री मूलकल्प में धान्यकटक और श्री पर्वत को मन्त्र सिद्धि के लिये सर्वाधिक उपयुक्त बताया गया है।[2] इससे यही निष्कर्ष निकलता हे कि मंत्रयान का आविर्भाव इसी भूभाग में हुआ। इसकी पुष्टि तिब्बती ग्रन्थों से भी हुई है जिनमें कहा गया है कि "बुद्ध ने बोधि के प्रथम वर्ष में, ऋषिपत्तन में श्रावक धर्मचक्र प्रवर्तन किया; तेरहवें वर्ष राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर महायान धर्म चक्र प्रवर्तन किया और सोलहवें वर्ष मन्त्रयान का तृतीय धर्म चक्र प्रवर्तन श्री धान्यकटक में किया।[3]

भवभूति के ग्रन्थ मालतीमाधव से यह पता चलता है कि श्री पर्वत मन्त्र शास्त्र के लिये बहुत प्रसिद्ध था जहाँ मद्‌भावती (मालवा) की एक बौद्ध भिक्षुणी सौदामिनी मन्त्र–तन्त्र सीखने के लिये श्री पर्वत पर आयी थी। सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक वाणभट्ट भी श्री पर्वत की प्रसिद्धि से सुपरिचित थे।[4] हर्षचरित में उन्होंने श्री पर्वत को सकल मनोरथ पूरा करने वाला बताया है :

"सकल--प्रणयि–मनोरथ–सिद्धिः श्री पर्वतो हर्षः"[5]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मन्त्रयान का उदय आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर के भूभाग में हुआ था जहाँ श्री धान्यकटक और श्री पर्वत स्थित है जिन्हें क्रमशः इस समय अमरावती और नागार्जुन कोण्डा कहा जाता है।

बज्रयान :

मन्त्रयान से ही बज्रयान का प्रादुर्भाव हुआ। यह मन्त्रयान का वीभत्स रूप था जिसमें ब्राह्मणधर्म के 'भैरवी चक्र' का भी प्रवेश करा दिया गया। इस मन्त्रयान वैपुल्यवाद की उत्पत्ति

---

1. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 112.
2. मंजुश्री मूलकल्प, पृ0 88 :
   सिध्यन्ते तत्र मन्त्रा वै क्षिप्रं सर्वार्थ कर्मसु।
3. ब्रुग–प–प द–द्कर–पो का छोस्–व्युड्., पृ0 14क–15क
   दृष्टव्य, राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 113.
4. कादम्बरी, पृ0 399, निर्णय सागर प्रेस, सप्तम संस्करण।
5. हर्षचरित, प्रथम उच्छवास।

महायान से ही हुई थी । यद्यपि मंजुश्री मूलकल्प को मन्त्रयान और वैपुल्यवाद का ग्रन्थ माना जाता है तथापि उसमें "भैरवी चक्र" का अभाव है । उसमें सदाचार नियमों का उल्लंघन नहीं किया गया है ।

बज्रयान का प्रादुर्भाव भी आन्ध्र देश में और विशेषकर श्रीधान्यकटक और श्री पर्वत के आस पास मंत्रयान से ही हुआ था । बाद में श्री पर्वत का इसका प्रमुख केन्द्र बन गया और इसी कारण श्री पर्वत को वज्र पर्वत ही कहा जाने लगा ।

बज्रयान के एक प्रमुख ग्रन्थ गुह्य समाज तंत्र में , मद्य, मंत्र, हठयोग और स्त्री, बज्रयान के चार मुख्य तत्व बताये गये हैं ।[1] बौद्ध धर्म में छल कपट रूप से प्रवेश कर वज्रयानियों ने स्त्री के अन्तर्गत जाति, कुल की ही नहीं, अपितु माता–बहन के सम्बन्ध तक की अवहेलना की । यह बुद्ध की मूल शिक्षा से बिल्कुल दूर की बात थी । वस्तुतः महायान से मन्त्रयान होते हुये ये दोष बज्रयान के नाम पर बौद्ध धर्म में समाविष्ट कर दिये गये । यही नहीं लोगों ने इन तत्वों की पुष्टि करने के लिये ग्रन्थों की रचना कर प्रचार किया जिससे जनता की श्रद्धा घटती गयी और धर्म का पराभव प्रारम्भ हो गया । चौदहवीं शताब्दी के सिंहल भाषा के ग्रन्थ "निकाय संग्रह" में वज्रयान (वज्र पर्वतवासी निकाय) 26 ग्रन्थों की तालिका प्राप्त होती है ।[2]

<u>सिद्धयान</u> :

महायान की अन्तिम परिणति सिद्धयान थी । जिसके संस्थापक सिद्ध सरहपाद थे । वे बंगाल के बौद्ध शासक धर्मपाल (शासनकाल ई0 768–809 तक) के ज्येष्ठ और समकालीन थे । सिद्धों की संख्या 84 थी जिनमें सिद्ध सरहपाद प्रथम सिद्ध थे । इन सिद्ध यात्रियों की यह विशेषता थी कि इन्होंने संस्कृत के स्थान पर लोक भाषा को अपनाया । इस जन भाषा का आकर्षण तथा अद्‌भुत कविताओं और विचित्र योग क्रियाओं द्वारा वज्रयान को सर्वजनीय धर्म बना दिया । इन सिद्धों में सरह, शबर, लुई, दारिक, वज्रघंटा, जालन्धर, कण्हया और शान्ति का विशेष स्थान माना गया है । [3]

---

1. गुह्य समाजतन्त्र, पृ0 94, 120, 136.
2. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 115–116.
3. वही, पृ0 126.

सिद्धयान का प्रारम्भ आठवीं शताब्दी का मध्य माना जाता है। यह सिद्ध प्रभाव 1175 ई0 तक स्पष्ट देखा जा सकता है। इस समय तक सिद्धों की 84 संख्या पूरी हो चुकी थी। 84 संख्या बौद्ध जगत में बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। यही कारण है कि यद्यपि 20वीं शताब्दी के अन्त में बहुत बड़े सिद्ध, मित्र योगी अथवा जगन्मित्रानन्द हुए थे जिनकी विद्वता का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि उनके लगभग 20 ग्रन्थ मोटिया भाषा में अनूदित हैं। लेकिन उनका नाम 84 सिद्धों की सूची में नहीं है। यही जगन्मित्रानन्द, गहड़वाल शासक जयचन्द्र के बौद्ध गुरु – आचार्य थे। इसकी पुष्टि बोध गया के सम्वत् 1231 = सन् 1174 ई0 के प्राप्त अभिलेख से भी होती है। इसमें काशीराज जयचन्द्र को जगन्मित्रा का शिष्य बतलाया गया।[1] सिद्धों से कालान्तर नाथ पंथ का उदय हुआ।

इस प्रकार संक्षेप में छठवीं शताब्दी ई0 पू0 में महामानव बुद्ध द्वारा स्थापित बौद्ध भिक्षु संघ उनके महापरिनिर्वाण के एक सौ बाद स्थविरवाद और महासंघिक – दो निकायों में विभाजित हुआ और 218 वर्ष बाद सम्राट अशोक के समय तक (अथवा उसके बाद) 18 निकायों में विभाजित हो गया। अशोक ने काफी प्रयास किया और काफी हद तक भगवान बुद्ध की मूल धर्मदेशना दर्शन को पुनर्स्थापित कर सका तथापि मतभेदों की विषैली धारा रुक न सकी। उल्लेखनीय है कि ये सभी शाखायें हीनयान की शाखायें थीं। कालान्तर में महायान का उदय हुआ। यहीं से बौद्ध संघ में ब्राह्मण धर्म के अनेक दोषों का प्रवेश हुआ। महायान से मंत्रयान, तंत्रयान, वज्रयान तथा सिद्धयान आदि से होता हुआ बौद्ध धर्म बारहवीं शताब्दी तक पहुँचा।

--------:0:--------

---

1. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, कलकत्ता, मार्च, 1929, पृ0 14–30.

चतुर्थ अध्याय

भिक्षु और भिक्षुणी संघ

1. **भिक्षु महत्व :**

बौद्ध धर्म भिक्षु प्रधान है जिन पर बौद्ध धर्म का पूरा भार निर्भर रहता है । उनके पास बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु अहर्निश समय रहता है । उनकी श्रेष्ठ जीवनचर्या, आचार–विचार और आदर्श, समाज को आकर्षित करते हैं ।

2. **भिक्षु संघ की स्थापना :**

भगवान बुद्ध ने संबोधि प्राप्ति के पश्चात् सारनाथ आकर धर्मचक्र प्रवर्तन किया और यहीं सबसे पहले भिक्षु संघ की स्थापना की और भिक्षुओं को बहुजन हित, बहुजन सुख और लोगों पर अनुकम्पा करने के लिये, उनके कल्याण के लिये विचरण करने का आदेश दिया । साथ ही यह भी निर्देश दिया कि एक साथ दो लोग न जायें ।[1] तत्पश्चात् यश, उसके चार मित्र तथा पचास अन्य भिक्षु बने । उस समय सारनाथ में 61 भिक्षु थे[2] (तेन खो मन समयेन एक सट्ठि लोके अरहन्तो होन्ति)।[3] इस प्रकार भिक्षु संघ में भिक्षुओं की संख्या बढ़ती गयी ।

भिक्षु संघ की स्थापना का उद्देश्य बहुजन हिताय व बहुजन सुखाय तो था ही साथ ही संघ होने से इसमें संघ शक्ति–एकता और व्यवस्था तथा धर्म की मर्यादा सुरक्षित थी । इससे ही बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये उचित वातावरण एवं शक्ति प्राप्त हुई । इसके अतिरिक्त संघ द्वारा ही बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार सुचारु रूप से हो सका । भिक्षु संघ बौद्ध धर्म का अविच्छिन्न अंग है उसे अलग नहीं किया जा सकता ।बौद्ध धर्म के इतिहास में भिक्षु संघ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । संघ की स्थापना, कुशल नेतृत्व और व्याहारिक सफलता के पीछे बुद्ध का महान् नेतृत्व था ।[4] इतिहास में पहली बार तथागत ने अपने भिक्षुओं का एक संघ बनाया, उनकी व्यवस्था के लिये संघ के नियम बनाये और संघ के सदस्यों के सामने एक निश्चित आदर्श उपस्थित किया ।[5]

---

1. धम्म चक्क पवत्तन सुत्त, बु0 च0, 16/19–20.
2. थेरगाथा, 23/1–2.
3. बु0 च0, 16/18.
4. इलियट, हि0 बु0, भाग 1, पृ0 237.
5. डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर, बुद्धा एण्ड हिज धम्मा (हिन्दी अनुवाद), पृ0 331 (अनुवादक, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ प्रकाशन, बम्बई, 1961.

भिक्षु संघ की व्यवस्था लोकतांत्रिक पद्धति पर आधारित है । जिस प्रकार वैशाली के लिच्छवी गणराज्य का प्रबन्ध और प्रशासन संघ राज्य की पद्धति से चलता था वही संघ प्रवृत्ति बुद्ध द्वारा बौद्ध संघ के लिये भी अपनायी गयी । यह गण प्रवृत्ति संघ (समुदाय, समाज या राष्ट्र) की सार्वजनिक सहशक्ति और एकता पर आधारित थी वही प्रवृत्ति बौद्ध संघ ने भी अपनायी । यह संघ प्रवृत्ति ही थी जिसके कारण बौद्ध धर्म और संघ, बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद भी मतभेदों के बावजूद भी ढ़ाई हजार वर्ष तक जीवित रहा और वर्तमान काल में डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के प्रयासों के कारण वह अधिक संवृद्ध होता जा रहा है ।

बुद्ध के समकालीन अन्य धार्मिक सम्प्रदाय यथा आजीवक आदि कुछ समय बाद ही कालकवलित हो गये । जैन सम्प्रदाय भी वैश्य या व्यापारिक वर्ग के अतिरिक्त अधिक जनप्रिय नहीं हो सका ।

इसका कारण यह था कि बुद्ध द्वारा संघ के लिये बनाये गये नियम कठिन न थे । इसके विपरीत जैन–व्रत और नियम अत्यन्त कठिन थे । बौद्ध संघ एक महासागर के समान है जिस प्रकार पृथ्वी पर नाना नामधारी नदियां यथा गंगा, यमुना, सरयू, और गंडक आदि बहती हैं । लेकिन महासागर में मिलने पर अपना नाम, रंग समाप्त कर समुद्रमय हो जाती हैं । उसी प्रकार लोग संघ में आने पर अपना वर्ण, जाति, देश, विचार सभी त्यागकर बौद्ध संघ–मयहो जाते हैं ।[1]

3. <u>भिक्षु गुण</u> :

बौद्ध गृहस्थों के अतिरिकत जो लोग घर, परिवार, धन–सम्पत्ति छोड़कर बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण कर द्वादश अथवा उससे अधिक शीलों का पालन करते हैं, काषाय (चीवर) धारण कर 'उपसंपदा' लेते हैं उन्हें भिक्षु कहते हैं । उनका जीवन आधार भिक्षा था । वे समाज के कल्याण के लिये पद–चारिका करते थे । अतः वे धर्मरत भिक्षा पाने वाले भिक्षु समाज के आदर के पात्र थे । इसके विपरीत भिक्षु होकर यदि वे धर्म संघ और विनय का उल्लंघन करता है तो निन्दा और अश्रद्धा का पात्र बनता है ।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि भिक्षु को धर्मपथ पर चलने के लिये

---

1. बुद्धा एण्ड. हिज़ धम्मा, पृ0 333
2. वही

सम्यक् दृष्टि और सम्यक् कर्म ही पथ–प्रदर्शक हैं। उनकी आचार–संहिता विनयपिटक है।

भिक्षु का जीवन केवल धर्म साधना के लिये बना था। जो जय–पराजय का त्याग करता है वही सुखी है। भगवान बुद्ध कहते हैं कि जय वैर को उत्पन्न करता है; पराजय दुःख का प्रसव करता है। अतः दोनों को त्यागकर उपशान्त हो सुख का आसेवन करना चाहिये।[1] राग–द्वेष और मोह – ये तीन अकुशल मूल हैं, इनका प्रहाण होना चाहिये। राग (अनुराग) के समान कोई अग्नि नहीं है। द्वेष के समान कोई कलि नहीं है, पंचस्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान कोई दुःख नहीं है और शान्ति (निर्वाण) से बढ़कर कोई सुख नहीं है।[2] क्रोध को अक्रोध से जीतें, असाधुता को साधुता से जीतें। कृपण को दान से जीतें और मृषावादी को सत्य से जीतें।[3] इसीलिये भगवान ने मैत्री भावना पर बल दिया है जो चार 'ब्रह्म विहारों' में से एक है।[4]

4. **भिक्षुचर्या** :

भिक्षुचर्या का पूर्ण विवरण विनयपिटक में वर्णित है। उसी आधार पर सभी विहारों में एक सा ही जीवन–क्रम चलता था। दो जोड़ी त्रिचीवर उसकी सम्पत्ति थी। त्रिचीवर में एक नीचे पहननने का अन्तर्वासक कन्धे से ओढ़ने के उत्तरासन और सघाटी (शीत आदि से बचने के लिये मोटी चादर) ये तीन वस्त्र सम्मिलित थे। इसीलिये इसे त्रिचीवर कहते हैं।[5] दूसरी जोड़ी बदलने के बाद पहनने के लिये आवश्यक थी। चीवर के अतिरिक्त कमर में बांधने के लिये पेटी (कायबन्ध), भिक्षापात्र, बाल साफ करने के लिये उस्तरा, फटा–पुराना चीवर सिलने के लिये सुई–धागा और पानी छानने का कपड़ा (जल छन्ना) ये आठ वस्तुयें ही भिक्षु रखता था।[6] यदि दान में इससे अधिक वस्त्र

---

1. धम्मपद, 15/5 : जयं वरें पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
   उपसंतो सुखं सेति, हित्वा जय पराजयं॥
2. वही, 15/6 : नत्थि राग समो अग्गि नत्थि दोस समोकलि।
   नत्थि खन्ध समा दुक्खा नत्थि सन्ति परं सुखं॥
3. वही, 17/3 : अक्को धेन जिने कोध असाधुं साधुना जिने।
   जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं॥
4. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध धर्म दर्शन, पृ0 17.
5. बुद्धचर्या, पृ0 305 ; विनयपिटक (हि0अ0), पृ0 17, पा0 टि0 2.
6. भगवान बुद्ध और उनका धर्म , पृ0 334.

मिलते थे उसे विहार लाकर, जमा कर दिया जाता था जिससे जरूरतमन्द भिक्षु को दिया जा सके ।

भिक्षु दैनिक कार्यों से निवृत्त हो पात्र चीवर लेकर भिक्षा के लिये निकल जाते थे ।यदि कोई श्रद्धावान उपासक आमंत्रित करता तो उसके यहाँ जाकर भोजन करने अन्यथा उपासक के द्वार पर शान्तिपूर्वक खड़े रहते थे यदि आवश्यकतानुरूप 'पिण्डपाल' (भोजन) मिल जाता तो वहीं से वह विहार आता अन्यथा तीन द्वारों तक जाता था और आवश्यकतानुरूप भोजन दान न मिलने पर भी वह सुकाल[1] में ही विहार लौट आता था । इस प्रकार प्राप्त भोजन को एक में सम्मिलित कर सभी विहारवासी विकास (दोपहर) के पहले ही सब एक साथ बैठकर खाना खा लेते थे । वृद्ध और अस्वस्थ भिक्षु नहीं जाते थे । विहारों से प्राप्त पिण्डदान एकत्रित रखने के लिये एक स्थान (कमरा) होता था।

भोजन के बाद शेष समय स्वाध्याय, ध्यान और विपश्यना चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करते थे ।

सन्ध्या के समय धम्मचर्या और कठिन समस्याओं पर विचार–विमर्श होता था । यदि श्रद्धालु जन आ जाते तो उन्हें धम्म उपदेश (देशना) दिया जाता था । इस प्रकार भिक्षुचर्या कठिन थी । शील के अभाव में धर्माचरण सम्भव न था (धंम चरणपि न भवतिअसीलस)[2] । भिक्षु की आजीव–शुद्धि आवश्यक थी । उसे मैत्री विहारी और मन, काय, वाक से संयत होना चाहिये ।[3]

इतनी त्याग और तितिक्षा और बहुजन हिताया और बहुजन सुखाय की भावना से ओतप्रोत बौद्ध अपने देश में ही नहीं अपितु भारतेत्तर देश यथा – श्रीलंका, म्यामार, सुवर्णभूमि आदि देशों में अपनी जान की परवाह न करके वे पहुँचते थे । आजकल केसमान आवागमन के त्वरित गति वाहन–यान न थे । वणिकों से प्रार्थना करके उनके माल–असबाब (पण्य) से लदे हुये जलयानों पर बैठ जाते थे । समुद्र में यदि जल–थपेड़ों अथवा जल–जन्तुओं के द्वारा उन जलयानों को आघात पहुँचता

---

1. सूर्योदय से लेकर दोपहर तक का सुकाल था इसी बीच भिक्षुओं को भोजन कर लेना विहित था । इसके बाद दोपहर के बाद से सूर्योदय तक का काल विकाल था और इस अवधि में भोजन करना नियम विरुद्ध था । इसमें विशेष परिस्थितियों में कुछ अपवाद भी थे ।
2. अशोक शिलालेख संख्या 4, पं0 10.
3. बौ0 ध0 द0, पृ0 17.

और उनमें जल–रिसाव होने लगता अथवा अधिक भार के कारण जलयान डूबने लगता था, तो उसे हल्का करने के लिये सबसे पहले इन्हीं भिक्षुओं को समुद्र में फेंका जाता था जहाँ वे जल जीवों की भूख मिटाते थे । ऐसी बहुतेरी घटनायें बौद्ध साहित्य में वर्णित हैं ।[1] इन कठिनाइयों से जो भिक्षु बचते थे वे दूरस्थ देशों में पहुँचकर बौद्ध धर्म के उपदेशों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार करते थे ।

5. **भिक्षु सन्धि के नियम : दोष और परिष्कार :**

भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के लिये नियम ही नहीं , आत्मशुद्धि, दण्ड–विधान एवं पारस्परिक विवादों को निपटाने के लिये भी नियम बनाये थे जिनका संकलन विनयपिटक में किया गया है । सांघिक दोषों को निम्नलिखित चार वर्गों के अन्तर्गत रखा गया है — पाराजिक, संघादिसेस, निस्सग्गियपाचित्तिय और पाचित्तिय ।[2]

भिक्षुओं के लिये ऐसे चार व्रतों का निर्धारण किया गया था जिनके भंग होने पर पाराजिका का दोषी होता है । ऐसे दोषी के लिये संघ त्याग ही एक मात्र दण्ड है । पाराजिक दोषों को धर्म के विरुद्ध किया गया अपराध माना जाता है । ये चार महान अपराध हैं – मैथुन, चोरी, मनुष्य हत्या और दिव्य शक्ति का दावा । ये सबसे बड़े संघ दोष माने जाते थे ।

दूसरे दोष 'संघादिसेस' हैं । जिनकी संख्या 13 है । तीसरे वर्ग के अन्तर्गत चीवरों की स्वीकृति–अस्वीकृति से सम्बन्धित दोष हैं जिन्हें 'निस्सग्गीय पाचित्तिय' दोष कहा जाता है । चौथे वर्ग में भिक्षुओं के जीवन के 92 प्रतिबन्ध हैं जिन्हें 'पाचित्तिय' कहते हैं । भिक्षु संघ के लिये तथागत ने शिष्टाचार के नियम भी बनाये थे जिन्हें 'सैखिय धर्म' कहा जाता है ।[3]

इस प्रकार बुद्ध ने भिक्षु संघ जिसके ऊपर धर्म का पूरा उत्तरदायित्व था उसे कड़े नियमों से नियन्त्रित कर अनुशासित बनाया था । आज भी संघ उसी नियमावली से अनुशासित है ।

---

1. सं0 बौ0 सा0 भा0 जीवन, पृ0 201–202.
2. विनयपिटक (हि), पृ0 1–35.
3. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृ0 334–35.

6. **संघ व्यवस्था की गणतन्त्रात्मक विशेषता :**

जहाँ महामानव बुद्ध ने भिक्षु संघ को अनुशासित और सुनियंत्रित रहने के कड़े नियम बनाये वहीं इस बात का बराबर ध्यान रखा कि संघ में संघीय सभी बातों विवादों पर खुलकर चर्चा हो और दोषी सम्बन्धित भिक्षु अपनी पूरी बात प्रस्तुत कर सके। 'बुद्ध एण्ड हिज धम्म' नामक ग्रन्थ में इस गणतन्त्रीय संघ व्यवस्था का सुन्दर वर्णन इस प्रकार हुआ है :-

"ये नियम, ये विधान केवल 'विधान' बनाने के लिये न थे। उनकी कानूनी स्थिति थी जिसके अनुसार पहले किसी पर निश्चित 'आरोप' लगाना होता था, तब संघ उस पर विचार करता था और तभी वह या तो दोष मुक्त मानकर छोड़ दिया जाता था या दण्ड दिया जाता था। बिना विधिवत अदालती विचार के कभी किसी भिक्षु को दण्डित नहीं किया जा सकता था। जिस जगह पर अपराध हुआ हो, उसी जगह के निवासी भिक्षुओं का ही न्यायालय होता था। न्यायालय के लिये आवश्यक संख्या में भिक्षु उपस्थित न हों तो मुकदमा नहीं चल सकता था। जब तक किसी पर कोई निश्चित 'आरोप' न लगाया जाय तब तक कोई मुकदमा कानूनी नहीं माना जाता था।

"कोई मुकदमा (तब तक) कानूनी नहीं माना जाता था जब तक उसकी सारी कार्यवाही उस व्यक्ति की उपस्थिति में न हो जिस पर 'आरोप' लगाया गया हो। कोई मुकदमा कानूनी नहीं माना जाता था जब तक कि उस भिक्षु को जिस पर कोई आरोप लगाया गया हो अपनी सफाई देने का पूरा अवसर न मिला हो।"[1]

दोषी भिक्षु को निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते थे :-

1. तर्जनीय कर्म
2. नियस्स कर्म
3. प्रव्राजनीय कर्म
4. उत्क्षेपणीय कर्म
5. प्रतिसारणीय कर्म

विहार से बाहर कर देने के कर्म (परिवास कर्म) के बाद अब्भान कर्म (आवाहन कर्म) हो सकता था। यह परिवास कर्म के बाद संघ द्वारा क्षमा-दान दिये जाने पर ही हो सकता था।[2]

---

1. बुद्ध एण्ड हिज धम्म (हि० अ०), पृ० 335-336.
2. वही, पृ० 336.

7. **भिक्षुणी संघ :**

पालि साहित्य से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध व्यवहारिक कारणों से स्त्रियों को प्रव्रज्या देने के पक्ष में नहीं थे । जिस पर आनन्द ने तथागत से अनेक तर्क प्रस्तुत किये । उन्होंने भगवान बुद्ध से निवेदन किया कि जिस प्रकार ब्राह्मण धर्म में यह माना जाता है कि शूद्र और स्त्रियां कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकतीं क्योंकि अपरिशुद्ध होती हैं इसीलिये उस धर्म में शूद्रों और स्त्रियों को प्रव्रज्या नहीं दी जाती । तो क्या तथागत की दृष्टि भी ब्राह्मणों के समान ही है, लेकिन ज्ञात है कि तथागत ने शूद्रों को संघ में उसी प्रकार प्रवेश दिया है जैसे ब्राह्मणों को । आनन्द ने आगे कहा "क्या तथागत का यह मत है कि तथागत के धर्म और विनय के अनुसार चलकर स्त्रियां निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकतीं ।"[1]

तथागत ने आनन्द से कहा "प्रजापती गौतमी की प्रार्थना को जो मैने स्वीकार नहीं किया गया है, वह स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हेय समझने के कारण नहीं, बल्कि व्यवहारिक कारणों से है ।" अन्त में आनन्द के माध्यम से तथागत ने प्रजापती गौतमी के अनुरोध को स्वीकार किया लेकिन कहा कि स्त्रियों को आठ नियमों का पालन करना होगा ।[1] उसके बाद प्रजापती और गौतमी और उसके साथ 500 शाक्य स्त्रियों ने प्रव्रज्या–उपसम्पदा ग्रहण की । इन शाक्य स्त्रियों में से एक यशोधरा (सिद्धार्थ की पत्नी) भी थी । प्रव्रज्या–उपसम्पदा के बाद उसका नाम 'भद्दा कच्चाना' हुआ ।[2]

इस प्रकार वैशाली में सबसे पहले भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई । जिसमें प्रजापती गौतमी सबसे पहली भिक्षुणी थी । उसके बाद प्रकृति नामक चण्डालिका की धर्म दीक्षा हुई ।[3] धीरे–धीरे महाप्रजापती गौतमी के निर्देशन में भिक्षुणी संघ बढ़ता ही गया । उनके उदात्त विचार 'थेरीगाथा' नामक बौद्ध ग्रन्थ में संग्रहीत है ।

---

1. भ0 बु0 उ0 धर्म, पृ0 151–52; बुद्ध कथा, पृ0 150–153 : डॉ0 रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1990.
2. वही, पृ0 153.
3. भ0 बु0 उ0 धर्म, पृ0 153.

8. **भिक्षुणियों के लिये संघीय नियम** :

भिक्षुओं की भाँति भिक्षुणियों के लिये भी तथागत नें आचार संहिता का निर्माण किया था जिसका वर्णन विनयपिटक में प्राप्त होता है । उनके लिये भी दोष और दोष दण्ड का विधान था । कुछ सीमा तक भिक्षुणियों के संघ विनय भिक्षुओं की अपेक्षा कठिन थे ।[1]

9. **भिक्षुणी संघ की महत्ता** :

भिक्षु संघ की भाँति भिक्षुणी संघ का भी भारतीय संस्कृति और विशेषकर बुद्ध वचनों के प्रचार–प्रसार में कम योगदान नहीं है । अशोक पुत्री संघमित्रा को कौन नहीं जानता जिसने श्री लंका में स्त्री समाज में बौद्ध धर्म का प्रचार किया और वहाँ भिक्षुणी संघ की स्थापना की ।

10. **गुप्तोत्तर कालीन भिक्षु और भिक्षुणियाँ** :

भारत के बौद्ध धर्म के इतिहास में गुप्त सम्राटों का युग उन्नति का युग रहा है । नालन्दा महाविहार इसी युग में प्रसिद्धि में आया सारनाथ की धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा की मूर्ति इसी युग में बनी । चीनी फाहियान बौद्ध धर्म–दर्शन के अध्ययन के लिये भारत आया । यह धार्मिक प्रचार–प्रसार का कार्य बौद्ध भिक्षु निरन्तर बढ़ाते रहे । हर्ष के समय चीन से प्रथित विद्वान् भिक्षु ह्वेनसांग भारत में बौद्ध धर्म के लिये आया । सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इत्सिंग ने पूर्वी भारत के बौद्ध केन्द्रों में अध्ययन किया । इसी प्रकार भारत से भी बुद्ध का 'बहुजन हिताया और बहुजन सुखाय' धर्म सन्देश लेकर बहुतेरे भिक्षु अन्यान्य देशों को गये । आचार्य धर्म नीति, धर्मपाल, वज्रबोधि, वैरोचन, पद्म संभव आदि विश्रुत ही हैं ।

यहाँ गुप्तोत्तर काल के कुछ प्रसिद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों की जीवन वृत्त और कार्यों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है ।

अमोघ वज्र :

भिक्षु अमोघ वज्र के गुरु का नाम वज्र बोधि था । उत्तरी भारत में जन्में अमोघवज्र ने 741 ई0 में बौद्ध धर्म का प्रचार कार्य प्रारम्भ किया । वे चीन को अपने गुरु के साथ गये थे ।[2]

---

1. दृष्टव्य, विनयपिटक (हि0 अ0), पृ0 39–70; भिक्खुनी पातिमोक्ख
2. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 207.

उनके देहावसान के बाद अमोघ वज्र ने अपने गुरु के वज्रयानी केन्द्र को संभाला और तांत्रिक ग्रन्थों के संग्रह हेतु भारत और श्रीलंका को गये। उन्होंने 108 ग्रन्थों का अनुवाद किया।[1] 108 वर्ष की आयु में 774 ई0 में उनका देहावसान हुआ।[2]

आचार्य धर्मकीर्ति :

न्याय दर्शन के इस सुप्रसिद्ध बौद्धाचार्य का जन्म चोल देश के तिरुमल्लई नामक गाँव में हुआ था नालन्दा के आचार्य धर्मपाल उनके आचार्य थे। साथ ही ईश्वर सेन से भी उन्होंने ज्ञानार्जन किया था। यह सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रसिद्ध आचार्य थे।[3]

एक दूसरे धर्म कीर्ति की भी बौद्ध साहित्य में विशेष चर्चा हुई है जो दीपांकर श्रीज्ञान के (दसवीं शताब्दी) समकालीन थे और तंत्र शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे।[4]

आचार्य वज्रबोधि :

दक्षिण भारत के मलय देश में 600 ई0 में इनका जन्म हुआ था।[5] इनके पिता कांची (कांजीवरम, तमिलनाडु) के राजा के गुरु थे। 50 साल की आयु में वज्रबोधि धर्मदूत के रूप में चीन गये।[6] ये महायान की तांत्रिक शाखा के आचार्य थे। सुमात्रा में वज्रयान के वे प्रथम प्रचारकर्त्ता आचार्य थे।[7] उन्होंने 11 तांत्रिक ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। सद्धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुये 71 वर्ष की आयु में 732 ई0 में उनका देहावसान हुआ।[8]

ईत्सिंग :

यह चीनी बौद्ध यात्री था जिसका जन्म 635 ई0 में चीन के फानयांग (आधुनिक चो-चाऊ) में हुआ था। उसने छः वर्ष की आयु में चीनी भाषा पढ़ना प्रारम्भ किया। 14

---

1. बौ0 सं0, पृ0 346.
2. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 208.
3. वही, पृ0 427.
4. वही, पृ0 127.
5. बौ0 सं0, पृ0 346.
6. द0 द0 पू0 ए0 भा0 सं0, पृ0 24.
7. वही, पृ0 50.
8. भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 165.

वर्ष की आयु में उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और 20 वर्ष की आयु में उपसंपदा ग्रहण की । हवी–सी इनके कर्माचार्य उपाध्याय थे । उन्होंने उपदेश देते हुये कहा "बुद्ध शिक्षाओं का त्रुटिपूर्ण भाष्य किया जा रहा है उसे ठीक करो और उनका सही भाष्य करो ।" इत्सिंग ने इस उपदेश का जीवन पर्यन्त पालन किया ।[1]

उपसम्पदित होकर पाँच वर्षों तक विनय का गहन अध्ययन कर विनय विशारद की उपाधि प्राप्त की । ह्वेनसांग से उसे भारत यात्रा की प्रेरणा मिली और उसमें गुरु हवी–सी से आज्ञा मांगी । उसने "धर्म ऋण से उऋण होने का यह सर्वोत्तम उपाय है" कहकर आज्ञा प्रदान की ।

671 ई0 का वर्षावास बिताकर इत्सिंग ने जलयान से भारत के लिये यात्रा प्रारम्भ की । श्रीभोग में छः महीने रुककर व्याकरण सीखी और वहाँ से वह ताम्रलिप्ति (वर्तमान तामलुक, जिला मेदनापुर, पश्चिम बंगाल) आया । वहाँ से वह भारत के प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्रों को गया । उसने नालन्दा में दस वर्ष (675–685 ई0 तक) रहकर बौद्ध धर्म दर्शन का अध्ययन किया ।

ताम्रलिप्ति से ही उसने अपनी वापसी की यात्रा प्रारम्भ की और भारत से बौद्ध धर्म के साहित्य की विपुल राशि अपने साथ ले गया और वहाँ 700 से 712 ई0 के मध्य उसने 56 बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया । जिनमें से अधिकांशतः सर्वास्ति धर्म से सम्बन्धित थे । 79 वर्ष की आयु में 713 ई0 में इत्सिंग का देहावसान हुआ ।[2]

<u>दिवाकर</u> :

दिवाकर मध्य मण्डल के भिक्षु थे जो धर्म प्रचार के लिये चीन गये थे । वहाँ उन्होंने सूत्र और अभिधर्म से सम्बन्धित 18 (अथवा 10) ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया । इनमें ललितविस्तर का अनुवाद सर्वाधिक प्रसिद्ध है ।[3]

---

1. भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 165–66.
2. वही, पृ0 165–167.
3. बौ0 सं0, पृ0 339.

दिवाकर मित्र :

विन्ध्याटवी के प्रसिद्ध बौद्धाचार्य थे जिन्होंने राज्यश्री और सम्राट हर्षवर्द्धन को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी ।[1] हषचरित के लेखक बाण ने उनकी चारित्रिक पवित्रता, नैतिकता और अध्यात्म की भूरि–भूरि प्रशंसा की है ।[2]

भिक्षु नन्दी :

इनका दूसरा नाम पुण्य उपाध्याय था । वे चिकित्साशास्त्र में पारंगत थे जिसे उन्होंने धर्म प्रचार का माध्यम बनाया था । [3]

वैरोचन :

यह पहले भारतीय भिक्षु थे जिन्होंने खोतन जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया । ये तिब्बती भाषा के श्रेष्ठ अनुवादकमाने गये हैं ।[4]

अतिश दीपांकर "श्रीज्ञान" :

दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जन्में अतिश दीपांकर श्रीज्ञान तिब्बती बौद्ध धर्म के इतिहास में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं । तिब्बत जाने के पहले श्रीज्ञान ने सुवर्ण दीप, श्रीलंका और दक्षिण–पूर्व एशिया के द्वीपों में धर्म प्रचारार्थ यात्रायें की थीं । उनकी ख्याति इतनी बढ़ गयी थी कि उन्हें विक्रमशिला विश्वविद्यालय का प्रधान बनाया गया था ।

तिब्बत में दोषयुक्त बौद्ध धर्म के स्थान पर दोषमुक्त बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये उन्हें तिब्बत आमन्त्रित किया गया । वृद्ध होते हुये भी वे बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय तिब्बत को गये । 13 वर्ष वहाँ रहकर 105 धर्मोपदेश दिये और अनेक ग्रन्थों की रचना की ।[5] पाल युग के ये सुप्रसिद्ध आचार्य थे ।

---

1. ह0 च0, पृ0 132–34.
2. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 109.
3. बौ0 सं0, पृ0 338.
4. भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 170.
5. वही, पृ0 179.

<u>अभयंकर गुप्त</u> :

पाल शासक रामपाल के समकालीन ये प्रसिद्ध सिद्धाचार्य थे ।[1]

<u>कमलशील</u> :

ये नालन्दा के आचार्य थे और प्रथित बौद्धाचार्य शान्तरक्षित के शिष्य थे । तिब्बत को धार्मिक मतभेद दूर करने के लिये गये थे ।[2]

<u>पद्मसंभव</u> :

ये भी पाल युगीन बौद्ध भिक्षु आचार्य थे । यद्यपि इनका जन्म उद्यान में हुआ था तथापि शिक्षा–दीक्षा के लिये ये बोध गया आये थे । यहीं से इन्होंने धर्म प्रचार का कार्य्र प्रारम्भ किया था । 747 ई0 में धार्मिक अशान्ति को शान्त करने के लिये वे तिब्बत गये ।[3] वे तिब्बत में लामा धर्म के संस्थापक माने जाते हैं ।[4]

भारतीय स्थापत्य कला को तिब्बत पहुँचाने का श्रेय भी आचार्य्र पद्मसंभव को ही है। तिब्बत की राजधानी ल्हासा से लगभग 45 किलोमीटर दूर "समये संघाराम" की स्थापना का पूर्ण श्रेय पद्मसंभव को ही है जिसका निर्माण ओदन्तपुरी महाविहार के स्थापत्य के अनुसार करवाया गया था ।[5] तिब्बत के इसी विहार से तिब्बत के अन्य भूभागों तथा अन्य देशों में प्रचार–प्रसार हुआ ।

गुप्तयुग के बाद के इन प्रमुख बौद्ध भिक्षुओं के अलावा ज्योतिपाल, आर्यवर्मन चित्रवर्मा, अभिरुचि मयायान प्रबोध, जयन्त, धर्मरक्ष, शाक्य श्री भद्र, विभूति चन्द्र आदि बौद्ध भिक्षु भी हुये जिनके विषय में विशेष सामग्री प्राप्त न हो सकने के कारण यहाँ केवल उनके नामों का ही उल्लेख किया गया है ।

---

1. बौ0 सं0, पृ0 413.
2. वही, पृ0 4045
3. हि0 बु0, जि0 3, पृ0 349.
4. वही, पृ0 348.
5. वही, पृ0 350

सन्दर्भित युगीन बौद्ध धर्म के अध्ययन से एक बात स्पष्टतः उभरकर समाने आयी है कि इस अवधि (सातवीं से बारहवीं शताब्दी) में भिक्षुणी संघ प्रगति पर नहीं था क्योंकि भिक्षुणियों का वर्णन अथवा उनके धर्म प्रचार का वर्णन प्राप्त नहीं होता है । यत्र तत्र – यथा भवभूति कृत "मालतीमाधव" में जिन भिक्षुणियों का उल्लेख किया गया है वह बौद्ध विनय परम्परा के विपरीत ही है । चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण में भी तत्कालीन भिक्षुणियों अथवा उनके विहारों का उल्लेख नहीं मिलता । इससे भी यही प्रतीत होता है कि गुप्तोत्तर युग में बौद्ध भिक्षुणी संघ का अस्तित्व समाप्त सा हो गया था ।

--------:0:--------

पञ्चम अध्याय

चैत्य विहार और संघाराम

भूमिका :

बौद्ध धर्म की प्रमुख विशेषता संघ–जीवन है इसमें सामूहिक उपासना के लिये भिन्न–भिन्न देशों, प्रदेशों और नगरों में बौद्ध मठ, चैत्य, विहार और संघाराम होते थे जहाँ बौद्ध भिक्षु रहते हुये धार्मिक साधना (ध्यान या विहार) तथा सभा–सम्मेलन आदि करते थे। सामान्यतः भिक्षु को भ्रमण ही करते रहना चाहिये। परन्तु वर्षाकाल में तो किसी एक सुनिश्चित स्थान में चार मास व्यतीत करना ही था। वर्षावास की इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर विहार (धर्मस्थल तथा निवास)बनाना आवश्यक ही था। स्वयं भगवान बुद्ध के जेतवन विहार का इतिहास भी यही कहता है। विहारों के साथ महाविहार भी थे। दोनों में अन्तर यही था, विहार भिक्षु निवास थे लेकिन महाविहार, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय भी थे।

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि विहार के साथ ही जल आवश्यकता के लिये कूप ओर और प्रपा तथा पूजा के लिए पुष्पादि हेतु आराम (उपवन) भी आवश्यक थे। अतः अधिकांश विहार नदियों के किनारे अथवा बड़े–बड़े जलाशयों के पासही होते थे। प्रारम्भ में बुद्ध और उनके शिष्य अधिकांशतः गया, राजगृह वैशाली आदि क्षेत्रों तथा इसके निकटस्थ भागों में ही विचरण करते रहे और इस क्षेत्र में विहारों की बहुतायत हुई, अतः यह क्षेत्र विहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भिक्षु और संघ तथा चैत्य एवं विहार, बौद्ध धर्म और संस्कृति के केन्द्र एवं विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय ही बन गये यथा तक्षशिला, नालन्दा विक्रमशिला आदि जो भारत में ही नहीं विश्व भर में विशेषकर एशिया में प्रसिद्ध हो गये थे।

चैत्य पूजा घर थे। विशेषता यह थी कि इसमें पूजा के लिये स्तूप होता था। भाजा का चैत्य विश्व प्रसिद्ध है। यही कारण है कि बौद्ध केन्द्रों में विहारों और महाविहारों के साथ–साथ चैत्यों का भी निर्माण होता रहा।

ईसा की बारहवीं शताब्दी के आस–पास इन महाविहारों के और विहारों के नष्ट–भ्रष्ट होने पर भी हम लद्दाख से लेकर सिंहल तक और गुजरात, काठियावाड़ तथा नासिक से लेकर आसाम और बर्मा तक इन्हें देख सकते हैं।

अर्थ और तात्पर्य :

विहार और संघाराम, बौद्ध भिक्षुओं के आवास स्थल थे । ये प्रायः चौकोर होते थे और अन्दर की ओर चारों ओर भिक्षुओं के रहने के लिये कोठरियाँ होती थीं । जिनके आगे बरामदा होता था । अन्दर चौकोर आँगन होता था । मुख्य द्वार के सामने पिछली पंक्ति में बीच में पूजा गृह चैत्य होता था । बाद में इसी पूजा गृह में भगवान बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई । प्रारम्भ में विहार और संघाराम काठ के बनते थे और बाद में ईंटों का प्रयोग किया गया लेकिन डॉ0 एस0 के0 सरस्वती का मत है कि प्रारम्भ में भी काठ की इमारत पत्थर–ईंट की नींव पर निर्मित की जाती थी ।[1]

महातीर्थ

लुम्बिनि ग्राम :

लुम्बिनि ग्राम भगवान बुद्ध का जन्म स्थल था । उनके जन्म के समय सुन्दर स्वच्छ और शीतल जल वाला कूप स्वयं ही प्रादुर्भूत हो गया । इससे यह कूप क्रिया–तीर्थ बन गया । इसी तरह वृक्षों से युक्त वन भी पुष्पों के लिये नई दिव्य शोभा को प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस तीर्थ में ही प्राणियों के दर्शनार्थ और पूजा आदि के लिये मठ–विहार बन गये । सम्राट अशोक ने यहीं एक प्रस्तर स्तम्भ भी स्थापित करवाया था । जिस पर आज भी अंकित है कि शाक्य मुनि भगवान बुद्ध यहाँ उत्पन्न हुये थे । यही उसने चैत्य का भी निर्माण करवाया था ।[2]

बोध गया :

बोध गया में सिद्धार्थ, बुद्धत्व लाभ कर बुद्ध कहलाए । जिस स्थान पर उन्होंने साधनारत रहकर ज्ञान का साक्षात्कार किया था वह स्थल "बोधि मण्ड" कहलाया । इसीलिये बौद्ध महातीर्थ था, जहाँ भारतीय शासकों और उपासकों ने ही नहीं, विदेशियों ने भी विहार बनवाये थे । सम्राट अशोक ने इस बौद्ध केन्द्र की धर्म यात्रा की थी और भिक्षु संघ को दान दिया था ।[3] उनके द्वारा स्थापित स्तम्भ आज भी विद्यमान हैं ।

---

1. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 488.
2. दिव्या0, पृ0 249, पं0 19.
3. वही, पृ0 251, पं0 20.

<u>सारनाथ</u> :

तीसरा बौद्ध धर्म का महातीर्थ सारनाथ था जिसका प्राचीन नाम ऋषिपत्तन मृगदाय था। यहाँ जिस स्थान पर तथागत ने 'धर्मचक्र प्रवर्तन' किया था उसी स्थान पर प्रारम्भ में एक छोटा स्तूप स्थापित किया था जो खुदाई में मूल गन्ध कुटी के पास ही मिला है। जहाँ भगवान बुद्ध ठहरते थे उस स्थान पर मूल गन्ध कुटी (विहार) का निर्माण हुआ था। यह कुटी (विहार) सदैव धूप-दीप तथा पुष्पों से सुवासित रहती थी। इसीलिये इसे मूल गन्ध कुटी कहा जाता था। सम्राट अशोक ने इस केन्द्र की भी यात्रा की [1] और स्तूपों तथा विहारों का निर्माण करवाया और स्तंभ भी स्थापित करवाया था।

<u>कुशीनगर</u> :

चौथा महा बौद्ध तीर्थ कुशीनगर (कुशीनारा) था जहाँ गौतम बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था।[2] भिन्न-भिन्न जनपदों के राजा, गणमुख्य और जन समुदाय तथा देववर्ग भी वहाँ उपस्थित हुआ। इस प्रकार इस जन समाज के एकत्रित होने तथा उस स्थान से महापुरुष के सम्पर्क से वह अज्ञात ग्राम अति प्रसिद्ध तीर्थ ही बन गया और वहाँ स्तूप, चैत्य, विहार आदि स्थापित हो गये।[3]

इन चार बौद्ध महातीर्थों के अलावा श्रावस्ती, संकिसा (संकाश्य, जिला फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश), राजगृह (राजगिरि, बिहार प्रदेश) और वैशाली (बिहार प्रदेश) भी बौद्ध धर्म के तीर्थ बतलाये गये हैं। इन आठों तीर्थ स्थलों को मिलाकर बौद्ध साहित्य में "अट्ठ महाठानानि" या आठ महास्थान कहते हैं।[4]

कपिलवस्तु, राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली, कौसाम्बी, मथुरा, कन्नौज आदि नगर, विहारों, चैत्यों तथा स्तूपों और मन्दिरों से अभिमण्डित धर्म विद्या तथा कला के केन्द्र बने रहे। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित धर्म सभायें हुईं वे स्थान भी धर्म केन्द्र बन गये

---

1. दिव्या0, पृ0 251, पं0 21.
2. बु0 च0 , 1/23-24.
3. अ0 म0 मू0 क0, 23/59-72.
4. बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ0 203.

यथा – राजगृह, वैशाली, अमरावती आदि ।

इसी प्रकार सम्पूर्ण भारत में बौद्ध चैत्य, विहार तथा महाविहार फैले हुये थे । यहाँ भारत के पाँच विभागों उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा चारों के मध्य में स्थित मध्य भारत में स्थित चैत्यों विहारों और महाविहारों का वर्णन किया जा रहा है ।

उत्तरी भारत के बौद्ध मठ एवं विहार

उत्तरी भारत (आर्यावर्त) में बामियान और गान्धार (तक्षशिला) से लेकर पूर्व में उत्तरी बंगाल और आसाम तक मन्दिर, मठ तथा विहार तुर्कों द्वारा नष्ट कर दिये गये । कहीं–कहीं यथा कुशीनगर आदि स्थानों में जलने के अवशेष प्राप्त होते हैं ।

भगवान शाक्य मुनि बुद्ध ने सारनाथ में पाँच भिक्षुओं को अपना प्रथम धर्मोपदेश (धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र) देकर अलग–अलग भिन्न–भिन्न दिशाओं में धम्म का प्रचार करने का आदेश दिया था और स्वयं भी यह कार्य करते रहे । उस समय (लगभग 530 ई0 पू0) बौद्ध भिक्षु संघ का यही बीज था । धीरे–धीरे यह संख्या बढ़ती गयी । अभी यह केवल घुमक्कड़ भिक्षु ही थे जिनका कार्य सद्धर्म का प्रचार करना था । वे भारत के विभिन्न भागों में ही नहीं अपितु विदेशों में भी गये और वहाँ बौद्ध केन्द्रों की स्थापना की ।

उत्तरापथ के विहार महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । उत्तरापथ से तात्पर्य पूर्वी अफगानिस्तान (गान्धार), कम्बोज, काश्मीर, पंजाब (पश्चिमी तथा पूर्वी) और सरस्वती (विनसन) का पश्चिमी क्षेत्र । इस क्षेत्र के मठ अधिकांशतः ईंटों के बने हुये थे ।

तक्षशिला :

गान्धार महाजनपद की राजधानी तक्षशिला एक अति प्रसिद्ध विद्या–केन्द्र (विश्वविद्यालय) था, जो रावलपिण्डी से 12 मील दूर स्थित था । भगवान बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व भी विश्व भर में उच्च शिक्षा, विशेषकर (आयुर्वेद विज्ञान) औषधि के लिये प्रसिद्ध था । बौद्ध धर्म के उदय होने पर भी यह बौद्ध भिक्षुओं तथा बौद्ध धर्म का केन्द्र बन गया । बौद्ध संघ के लिये संघारामों (विहारों) का निर्माण होने लगा ।

तक्षशिला में पुरातात्विक खुदाई होने पर शाह जी की ढेरी (राजमहलों) के निकट ही बौद्ध विहारों का क्षेत्र स्थित होने की पुष्टि हुई है क्योंकि यहाँ स्तूपों तथा बौद्ध विहारों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। इस क्षेत्र में खुदाई से प्राप्त बौद्ध विहारों की प्राचीनता ईसा की प्रथम शताब्दी तक जाती है। तक्षशिला तथा पेशावर के आस–पास बहुत से स्तूपों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुये हैं। इनमें धर्मराजिका स्तूप और रावलपिण्डी के निकट मनकिआला अपने स्तूप के लिये विशेष प्रसिद्ध है।[1] इसी प्रकार "तख्त बहाई" के भी अवशेष इतिहास प्रसिद्ध हैं।

बौद्ध भिक्षुओं के निवासों (संघारामों) में कई कमरे (कोठियां, कोठरियां) बने हुये थे। यह सादे ही बने थे जिनमें अलंकरण बिलकुल न था। इस क्षेत्र में यवन, पहलव, शक और कुषाण युग की इमारतें तथा स्तूप और विहार के अवशेष भी मिले हैं। तक्षशिला विश्वविद्यालय अपनी उच्च विद्या तथा महान ग्रन्थागार के लिये प्रसिद्ध था।

गिलगिट :

यह काशमीर के निकट उत्तरी भाग में सिन्धु नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। यहीं पास में गिलगिट नदी बहती है। इसीलिये इसका यह गिलगिट नाम प्रसिद्ध हुआ। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से ही यहाँ बौद्ध धर्म तथा बौद्ध भिक्षुओं का प्रमुख केन्द्र बन गया था। यह बौद्ध विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र था। फाहियान और ह्वेनसांग यहाँ आये थे। उन्होंने इस स्थान का सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ लगभग एक सौ संघाराम थे, जिनमें लगभग एक हजार भिक्षु रहते थे। यहाँ पर बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों का एक भण्डार प्राप्त हुआ था जिसे "गिलगिट मैनस्क्रिप्ट" कहते हैं। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक भण्डार था।

काश्मीर :

हिमालय की कोख में स्थित यह परम मनोरम देश, विद्या और विद्वानों तथा धर्म और धार्मिक लोगों का देश था जिसे वितस्ता और चन्द्रभागा नदियां सींचती थीं। ऊपरी भाग में सिन्धु की घाटी हिमाच्छादित मुकुट धारण करती है।

---

1. सर जॉन मार्शल, ए गाइड टू टैक्सिला, पृ0 53–77.

यहाँ मौर्य और कुषाण सम्राटों ने मन्दिर, मठ और विहारों तथा स्तूपों का निर्माण करवाया था। झेलम (वितस्ता) के उद्गम के निकट धर्मारण्य विहार अत्युच्च मेरु प्रासाद ही था। इसी प्रकार "कृत्याश्रम विहार" भी अत्यन्त प्रसिद्ध था।

इसी प्रकार कनिष्क महाविहार काश्मीर के कनिषपुर में प्रसिद्ध था। ईसा की सातवीं शताब्दी में प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग इसी महाविहार में ठहरा था।

कुण्डलवन विहार :

यह वह प्रसिद्ध विहार था जहाँ कनिष्क प्रथम के समय चौथी बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया था। शंकराचार्य पहाड़ी के उत्तरपूर्व, हरवन में सडार्हद वन में एक विशाल बौद्ध विहार था।[1] काश्मीर नृप प्रवरसेन द्वितीय के समय का जयेन्द्र विहार भी प्रसिद्ध विहार था।

परिहासपुर का राज विहार भी प्रसिद्ध था। काश्मीर कुणाल के समय से लेकर ईसा की दसवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध देश बना रहा। मुस्लिम आक्रमणों, युद्धों तथा उपद्रवों और उत्पातों से भिक्षु भी इधर-उधर भाग गये।

लद्दाख :

लद्दाख इस समय काश्मीर का ही एक अंग है। यह हिमालय-घाटी में सिन्धु नदी के तट पर स्थित बौद्ध प्रदेश ही है। जिसकी स्थिति तिब्बत तथा चीन के भी सन्निकट है। प्राचीन काल में ही लद्दाख बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था। चीनी यात्री फाहियान (399 ई0 – 414 ई0) ने यहाँ की तीर्थयात्रा की थी। फाहियान ने लद्दाख को "कीह-चा" कहा है। आज भी वहाँ विशाल विहार (जुम्फ्रा) यत्र-तत्र सिन्धु नदी के ऊपर की घाटी में बौद्ध भिक्षुओं की साधना के केन्द्र हैं।

जालन्धर :

यह पूर्वी पंजाब का प्राचीन धार्मिक प्रदेश और प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्र था। यहाँ के बौद्ध विहार में हस्तलिखित (बौद्ध) ग्रन्थों का भण्डार था।[3]

---

1. वि0ए0इ0, पृ0 49-52.
2. जे0 यन0 गन्हर एवं पी0 यन0 गन्हर, बुद्धिज्म इन काश्मीर एण्ड लद्दाख, पृ0 17.
3. वि0 ए0 इ0, पृ0 58.
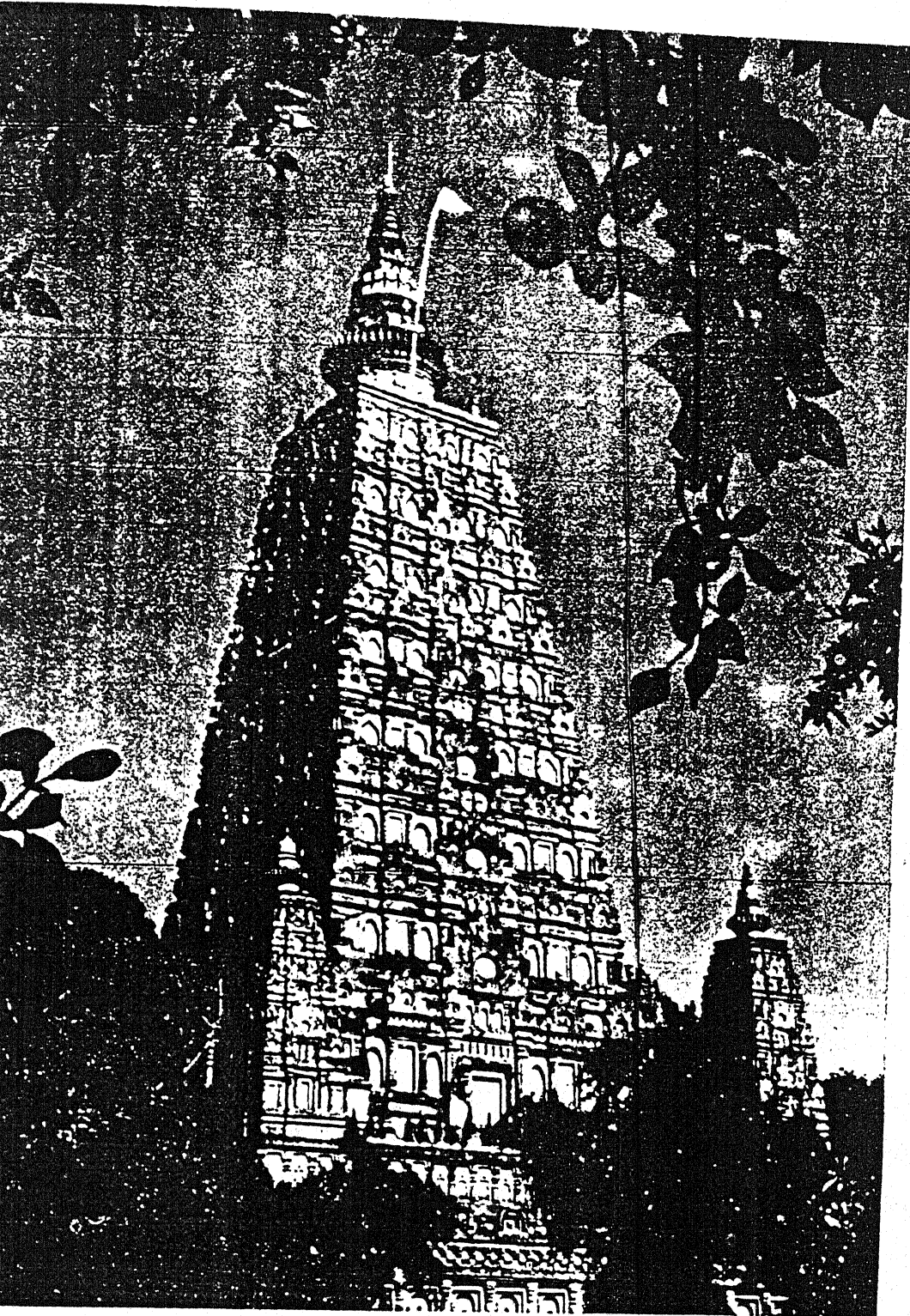
बोध गया का विशाल मन्दिर

।द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0एस0 अग्रवाल से साभार।

चीन भुक्ति :

अमृतसर–सियालकोट मार्ग पर अमृतसर से 11 मील दूर स्थित इस पर्वतीय स्थान पर भी एक प्रसिद्ध बौद्ध विहार था ।[1]

पूर्वदेश के विहार एवं मठ

पूर्वदेश के बोद्ध विहारों और संघारामों और मठों में निम्नलिखित ख्यातिपूर्ण केन्द्र थे ।

वैशाली :

मुजफ्फरपुर जिला (बिहार) प्रदेश से लगभग 22 मील दूर वैशाली के खण्डहर स्थित हैं । इनकी खुदाइ से प्राचीन इतिहास और संस्कृति में वैशाली की गरिमा का उद्धार हुआ है और इसका श्रेय कनिंघम महोदय को ही जाता है । उत्खनन में यहाँ अशोक का स्तम्भ तथा बहुत से बुद्ध विहार एवं स्तूपों के अवशेष मिले हैं । विशाल टीले के ऊपर बोधिसत्व मन्दिर बना था । यहीं आम्रपाली का आम्रवनाराम और प्रसिद्ध पुष्करिणी भी विद्यमान थी ।

बोध गया :

गया के उस स्थान पर जहाँ भगवान को सम्बोधि प्राप्त हुइ थी, बोध गया कहलाया । यह पवित्र स्थान विश्व प्रसिद्ध है । यहाँ भी न जाने कितने विहार और स्तूप रहे होंगे । इसकी संख्या अमित है । परन्तु विध्वंसक–क्रूर दुष्ट पुरुषों ने उन्हें नष्ट कर दिया । प्रसिद्ध प्राचीन बुद्ध गया मन्दिर बालू आदि में धंसा रहने के कारण या भू माता के गर्भ में स्थित रहने के कारण सुरक्षित रह गया । आज बोध गया में एशिया के प्रायः सभी बोद्ध देशों के प्रसिद्ध वैभवशाली विहार हैं । इससे ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीनकाल में इसका कितना वैभव रहा होगा । इसका साक्षी बुद्ध गया का बोधि मन्दिर ही है ।

---

1. वि० ए० इ०, पृ० 59.

राजगृह :

भगवान बुद्ध की प्रसिद्ध विहार स्थली थी । यह पहाड़ी नगर है । इसका गृद्धकूट शिखर भी ऐतिहासिक पवित्र स्थान है जहाँ भगवान बुद्ध प्रायः राजगृह प्रवास के समय रुकते थे । परिनिर्वाण सूत्र के प्रारम्भ में कहा गया है कि –

एकदा भगवा गिज्झकूटे विहर तिस्म ..... ।

पटना जिले में यह आधुनिक राजगिरि है । यहाँ भी विध्वंसक क्रूर हाथों ने विनाश कार्य किया था परन्तु आज खण्डहर ही उस स्थान की प्राचीनता, पवित्रता और गौरव के प्रतीक हैं । यहीं बौद्धों की प्रथम संगीति का आयोजन भी हुआ था । सद्धर्म पुण्डरीक से ज्ञात होता है कि राजगृह से ही बुद्ध के ऊर्ध्व स्थल से एक ज्योति रश्मि निकल कर विश्व को आलोकित करने लगी । यहाँ वेलूनाराम तथा जीवकाराम प्रसिद्ध बौद्ध विहार थे ।

नालन्दा :

कौन जानता था कि बिहार प्रदेश का नालन्दा नामक एक छोटा सा ग्रामविश्व भर में अपनी ख्याति से विख्यात विद्या और धर्म का केन्द्र होगा । परन्तु इख्तियारुद्दीन खिलजी ने ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्त में (1192 ई0) इस पवित्र स्थान को नष्ट–भ्रष्ट कर भस्मीभूत कर दिया था ।

खुदाइयों से प्राप्त अवशेषों से इसका प्राचीन वैभव आज भी आँका जा सकता है । मठ और विहार तथा पुस्तकालय ही इसके प्राण थे । एशिया के विभिन्न देशों से और द्वीपों से विद्वान लोग यहाँ आकर विद्याध्ययन करते थे । उनके आवास आज भी देखे जा सकते हैं । फाहियान, ह्वेनसांग और इत्सिंग आदि ने भी यहाँ आकर अध्ययन किया था ।[1]

पाटलिपुत्र :

यह मौर्य साम्राज्य की प्रसिद्ध राजधानी और महानगर था, जिसके लकड़ी के बने हुये प्रासाद की भव्यता और विशालता का वर्णन करते हुये मैगस्थनीज़ ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है ।[2]

---

1. द्रष्टव्य, नालन्दा (डॉ0 संकालिया); मुकर्जी, ऐ0 ई0 एजु0 (नालन्दा); अल्टेकर, एजु0 ऐ0 इ0 (नालन्दा); नालन्दा (ए गाइड)
2. पर्सी ब्राउन, इं0 आ0, भाग 1, (बुद्धिष्ट एण्ड हिन्दू पीरियड), पृ0 5.

बौद्ध सम्राट अशोक की भी यही राजधानी थी । भाब्रू अभिलेख से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र नगर 'मागध संघ' का मुख्य केन्द्र था । अशोक ने इस संघ के बौद्ध विद्वानों के समक्ष कुछ उपदेश निवेदन किये थे ।

कुक्कुटाराम यहाँ का अति प्रसिद्ध संघाराम था । इसके अतिरिक्त अशोकाराम विहार, अशोक द्वारा बनवाया गया था । पुरातत्व परक खुदाई से बहुत से विहारों के अवशेष प्राप्त हुये हैं ।

विक्रमशिला :

मध्य देश में उत्पातों तथा उपद्रवों और आघातों से बचने के लिये बौद्ध धर्म, भिक्षु और बौद्ध संस्कृति ने बिहार प्रदेश के अरण्यों में शरण ली थी । परमसौगत गोपाल ने जिस वंश की नींव डाली थी , उसने स्वयं या उसके पुत्र धर्मपाल ने इस विख्यात बौद्ध विश्वविद्यालय की नींव डाली थी । थोड़े ही समय में एशिया तथा दक्षिण पूर्वी द्वीपों में इसकी प्रसिद्धि व्याप्त हो गयी । यहाँ विद्या और धर्म तथा कला की त्रिवेणी थी जिसने तिब्बत, चीन तथा दक्षिण पूर्वी द्वीपों की भी संस्कृति को प्रभावित किया था । तारानाथ के अनुसार धर्मपाल ने लगभग 50 बौद्ध केन्द्रों की स्थापना करायी जिनमें से पैंतीस केन्द्र ऐसे थे जहाँ प्रज्ञा पारमिता का अध्ययन होता था ।[1]

मगध के उत्तर में विक्रमशिला महाविहार का निर्माण गंगा तट पर किया गया था । इसके बीचों–बीच में आदमकद की महाबोधि मूर्ति स्थापित की गयी थी । इसके चारों ओर तिरपन छोटे–छोटे मन्दिर एवं विहार बनवाये गये थे । इनमें गुह्य तन्त्र का अध्ययन होता था । इस प्रकार 108 मन्दिर थे । महाराज धर्मपाल 108 बौद्धाचार्यों की जीविका का भरण–पोषण करते थे ।

इसके निर्माण स्थल के विषय में विवाद चलता रहा है । कनिंघम महोदय के अनुसार नालन्दा के निकट ही बड़गाँव से लगभग तीन मील दूर तथा मगध की राजधानी राजगृह (राजगिरि) से उत्तर में छः मील सिलांव गांव ही विक्रमशिला का स्थान था ।[2]

---

1. वि0 ए0 इ0, पृ0 154.
2. वही, पृ0 156, डा0 पी0 सी0 बागची का कथन है कि विक्रमशिला की पहचान भागलपुर जिले के पाथरघाट से करनी चाहिये । यद्यपि यह सुनिश्चित नहीं है (हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग 1, पृ0 417.

श्री यस0 सी0 दास के अनुसार विक्रमशिला महाविहार का उस स्थान पर निर्माण हुआ था जहाँ इस समय भागलपुर जिले में सुल्तानगंज स्थित है । उनका कहना है कि ब्राह्मणों का धर्म स्थल गंगा उत्तरवाहिनी के तट पर स्थित था । बौद्धों ने भी विक्रमशिला का निर्माण गंगा के उत्तरी भाग में ही किया था । सुल्तानगंज की वैष्करणशिला और विक्रमशिला से भ्रम उत्पन्न होता है । यस0 सी0 विद्याभूषण भी लगभग इसी स्थान पर इसकी स्थिति बताते हैं ।

एन0 एल0 डे के अनुसार सुल्तानगंज के पास ही पाथरघाट के पास की पहाड़ी ही विक्रमशिला महाविहार थी । यह चम्पानगर से अट्ठाइस मील पूर्व और भागलपुर से 24 मील पूर्व तथा कोलूंग पहाड़ी से लगभग 6 मील उत्तर में है । यहाँ प्राचीन बौद्ध विहारों के भग्नावशेष (800 ई0 से 1200 ई0) तक पाये गये हैं ।

विक्रमशिला का तिब्बत के साथ बराबर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । दोनों ओर से विद्वानों का गमनागमन होता रहा है ।

पालवंशीय बौद्ध सम्राट् रामपाल के समय यहाँ अभयांकर गुप्त इस महा विद्यालय के अध्यक्ष थे । उस समय यहाँ 160 आचार्य और 1000 बौद्ध भिक्षु रहते थे । पालवंशीय राजा महीपाल के समय दीपांकर श्री ज्ञान को यहाँ का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था । यह विश्वविद्यालय तन्त्रों के अध्ययन–अध्यापन के लिये प्रसिद्ध था । ईसा की 12वीं शताब्दी में मुस्लिम आक्रमणों से यह विश्वविद्यालय (महाविहार) नष्ट–भ्रष्ट हो गया ।[1]

ओदन्तपुरी :

पूर्व मध्यकाल में जब तुर्कों के आक्रमण हो रहे थे और यह आतंक–आंधी नालन्दा को भी झुलसाने वाली था उस समय ओदन्तपुरी नामक प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्र तथा महाविहार (विश्वविद्यालय) स्थापित किया गया । 730 ई0 में बंगाल के शासक गोपाल या लोकपाल द्वारा इसकी स्थापना की गयी थी ।[2] यह बिहार के पटना जिले में स्थापित विद्या केन्द्र ब्राह्मण और

---

1. वि0 ए0 इ0, पृ0 153–162.
2. आ0 सा0 इ0 रि0, भाग 8, पृ0 75 ; आ0 दि0, पृ0 208.

बौद्ध ग्रन्थों के विशाल संचय के लिये प्रसिद्ध थी। बिहार शरीफ के आस-पास ही इसके खण्डहर उपलब्ध होते हैं। यह फुलहरी के नाम से प्रसिद्ध है और यहाँ नरोपा रहते थे।

गोपाल से लेकर देवपाल तक पाल सम्राटों की विशेष सहायता इसे प्राप्त होती रही। 1191-99 के मध्य मुस्लिम आक्रमणों से यह विद्या केन्द्र भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

सोमपुर (पहाड़पुर) :

विक्रमशिला महाविहार की भाँति ही सोमपुर या सोमपुरी का बौद्ध विहार भी विख्यात बौद्ध केन्द्र था। यह जिला राजशाही (बंगला देश) में जमालगंज रेलवे स्टेशन से तीन मील दूर स्थित था। इस समय सोमपुर को पहाड़पुर कहते हैं।

यह महाविहार धर्मकला और विद्या का केन्द्र था।[1] श्री के० एन० दीक्षित (भूतपूर्व डायरेक्टर जनरल, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया) धर्मपाल तथा देवपाल के समय ईसा की आठवीं-नवीं शताब्दी में सोमपुर विहार का निर्माण किया गया था और इसे प्रारम्भिक पाल सम्राटों का आश्रय प्राप्त हुआ था। इस विहार के भिक्षु संघ की मुद्राओं पर प्राप्त अभिलेख में इसे "श्री धर्मपाल देव महाविहार" कहा गया है और इसके भिक्षु संघ को "श्री धर्मपाल महा विहारीय आर्य संघ" कहा जाता था।[2] इस विहार का इतना अधिक महत्व था कि इसका नामोल्लेख बोध गया और नालन्दा के अभिलेखों में भी हुआ।[3]

पाल सम्राट महीपाल प्रथम के समय इस प्रतिष्ठान को पुनः राजकीय उदारता (दान आदि) से प्राप्त हुई जिससे ईसा की दसवीं शताब्दी के अन्त में पुनः इसकी विशेष उन्नति हुई। ग्यारहवीं शताब्दी में भी इसकी वृद्धि होती रही। महीपाल प्रथम और उनके पुत्र नयपाल के बाद पालवंश की अवनति होने लगी। बाहरी और आन्तरिक शत्रुओं के आक्रमणों से पाल राज्य और इसका ऐश्वर्य भी समाप्त हो गया। सेन राज्य काल में (लक्ष्मण सेन) के समय में ही इख्तियारुद्दीन खिलजी ने इसे भी नष्ट कर दिया।

---

1. पहाड़पुर, एक्सकेवेशन्स, 1938, पृ० 5 और आगे।
2. आ० स० इं०, 1927-28, पृ० 105 ; दृष्टव्य, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ० 489-90.
3. आ० स० इं०, 1908-9, पृ० 158; दृष्टव्य, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ० 490.

यहाँ बंगाल के अति प्रसिद्ध भिक्षु दीपांकर अतिश भी बहुत समय तक रहे थे। सोमपुर महाविहार में पुस्तकों का एक बहुत बड़ा संग्रह था और इस महाविहार की ख्याति दूर–दूर तक फैल गयी थी। यह विशाल बौद्ध विहार था। श्री दीक्षित के अनुसार यह धर्मपाल विहार था। इस समय सोमपुर को ओमपुर कहते हैं।

रक्तविटि (रक्तमृत्तिका) जगद्दल, विक्रमपुरी, शालवन तथा गुणैधर आदि भी बौद्ध विहारों के लिये प्रसिद्ध स्थान थे।

पुण्ड्र वर्धन :

सातवीं शताब्दी ई0 में बंगाल के दो प्रमुख संघारामों का वर्णन ह्वेनसांग ने किया है। पहला पुन–न–फ–तोन–न[1] तथा दूसरा की–लो–न–सु–फा–ला–ना[2] था। पहले की पहचान पुण्ड्रवर्धन तथा दूसरे की पहचान कर्ण सुवर्ण से की गयी है। पुण्ड्रवर्धन में यात्री ने करीब बीस संघाराम देखे थे जिनमें लगभग 3000 बौद्ध भिक्षु रहते थे। इनमें दोनों यानों ही–नयान और महायान, के भिक्षु थे जो सद्धर्म के अध्ययन में संलग्न थे।

राजधानी के पश्चिम में लगभग तीस ली (लगभग 6 मील) दूर पो–सीमो नाम प्रसिद्ध संघाराम था। यह ऊँचे धरातल पर बना हुआ था। इसमें ऊँची–ऊँची मीनारें थीं। इसमें लगभग सात सौ बौद्ध भिक्षु रहकर महायान का अध्ययन अभ्यास करते थे।[3] इसी संघाराम के समीप ह्वेन्सांग ने उस स्तूप को भी देखा था, जिसे सम्राट अशोक ने उस स्थान पर बनवाया था जहाँ तथागत ने धर्म उपदेश दिया था। उपोसथ पर्वों पर इस स्तूप को दीपमालाओं से सजाया जाता था और पूजा–वन्दना की जाती थी।[4]

---

1. बील, चा0 ए0 ऑफ इं0, जिल्द 3, पृ0 403.
2. वही, जि0 3, पृ0 408.
3. वही, जि0 3, पृ0 403–404.
4. वही, पृ0 404.

कर्ण सुवर्ण :

कर्ण सुवर्ण राजधानी में ह्वेनसांग ने दो हज़ार भिक्षुओं के साथ दस संघाराम देखे थे। वे लोग हीनयान के सम्मतीय निकाय को मानने वाले थे । इसके बाद ही तीन ऐसे संघाराम भी थे जिनमें रहने वाले भिक्षु दही का प्रयोग नहीं करते थे ।[1]

कर्ण सुवर्ण के पास ही लो–टो–वी–शी (रक्ताविति या रक्तमृत्तिका) संघाराम था इसमें बड़े–बड़े प्रासाद थे और ऊँची बुर्जियां थीं । इस संघाराम में विशिष्ट, विद्वान और भद्र पुरुष एकत्रित होते थे । इसके पास ही सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित स्तूप भी था ।[2] इसे इस समय "रांगामाटी" कहा जाता है । महोदय एस0 के सरस्वती (सरसि कुमार सरस्वती)ने मुर्शिदाबाद के राक्षसी डांगा ठीले में छठवीं–सातवीं शताब्दी ई0 के इस विहार की खोज की थी । ज्ञातव्य है कि रांगामाटी को ही प्राचीन कर्ण सुवर्ण माना गया है । लेकिन सरस्वती महोदय ने लिखा है कि यहाँ से कोई भी ऐसे पुष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं जिनसे इस विहार को ह्वेनसांग द्वारा वर्णित लो–टो–मो–शी विहार माना जा सके ।[3]

पूर्व दक्षिण भारत के विहार

बंग देश से जब हम समुद्र तट के किनारे–किनारे चलते हैं तो दक्षिण पूर्व में स्थित सुहना (या राढा) देश में पहुँचते हैं । इसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी ।

ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक, जिला पश्चिमी बंगाल) :

मिदनापुर प्राचीन काल में बन्दरगाह होने के कारण बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था ।जब फाहियान यहाँ आया था तो वहाँ के पुस्तकालय को देखकर वह यहाँ दो वर्ष तक रुका था । ईसा की सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग भी यहाँ आया था । उस समय बौद्ध धर्म की अवनति हो रही थी ।

---

1. बील, चा0 ए0 इ0, जि0 3, पृ0 408.
2. वही, जि0 3, पृ0 409.
3. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, जि0 1, पृ0 489.

ईत्सिंग ने यहाँ रहकर संस्कृत का अध्ययन किया था। यहाँ बहुत से प्राचीन भग्नावशेष, मूर्तियाँ आदि प्राप्त हुई हैं जिनसे भी सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म और विद्या का महान केन्द्र था।

पुष्पगिरि विहार (उड़ीसा) :

प्राचीन काल में उड़ीसा धर्म संस्कृति और कला का महान धर्म क्षेत्र था। यहाँ ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई थी। जब अशोक ने कलिंग विजय के बाद बौद्ध धर्म को स्वीकार किया तो कलिंग में भी बौद्ध गुफायें, अभिलेख तथा विहारों की स्थापना हुई। ऐसा भी विचार है कि आन्ध्र प्रदेश में महायान धर्म का उदय हुआ है और वह उड़ीसा के मार्ग से ही उत्तरी भारत में फैला। उड़ीसा के दक्षिण पश्चिम में पुष्पगिरि विहार (पु–रो–पो–कि–लि) प्रसिद्ध बौद्ध धर्म स्थल था। यहाँ स्तूप और विहार तथा मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं।[1]

रत्नगिरि विहार :

उड़ीसा के कटक जिले में उत्तर पूर्व में स्थित बौद्ध धर्म विद्या और कला का अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र था जो आज भी अपनी टूटी–फूटी जीर्ण अवस्था में कला के सौन्दर्य के बुद्ध और तारा की मूर्तियों तथा स्तूप और विहार के शिल्प के अत्यन्त मनोरम केन्द्र हैं।

यहाँ से बौद्ध धर्म और संस्कृति विदेशों में गयी है। इसका उत्कर्ष ईसा की पांचवी शताब्दी के आस–पास हुआ था। भौमकर वंश के शासकों के राजत्व काल में यहाँ बौद्ध धर्म , कला और दर्शन की अप्रत्याशित उन्नति हुई। यहाँ गुप्त लिपि में अभिलेख प्राप्त हुआ है जिससे पता चलता है कि ईसा की पांचवीं शताब्दी से लेकर ईसा की सातवीं–आठवीं शताब्दी तक इस केन्द्र की विशेष उन्नति होती रही। यहाँ गुप्त लिपि में अभिलेख प्राप्त हुआ है।

प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य बोधिश्री, नारोपा और अन्य आचार्यों के द्वारा यहाँ तान्त्रिक धर्म तथा दर्शन की विशेष उन्नति हुई। तारानाथ के अनुसार ओडि–विषय (उड़ीसा) में राजा बुद्धपक्ष के शासनकाल के अन्तिम भाग में रत्नगिरि विहार का निर्माण हुआ था। यह विहार समुद्र के निकट

---

1. दृष्टव्य, बुद्धिज़्म इन उड़ीसा, 65

पहाड़ी पर बना था । यहाँ महायान, हीनयान से सम्बन्धित ग्रन्थ तथा शास्त्र भी रखे थे । यहाँ 500 बौद्ध भिक्षु रहते थे ।[1]

विरजा :

भौमकरों के शासनकाल में ही विरजा क्षेत्र में भी बहुत से विहारों का निर्माण हुआ था, जो आज भी विद्यमान हैं । विरजा आधुनिक जाजपुर है । यहीं भदन्त पद्म प्रभ को ज्ञान (बोध) प्राप्त हुआ था ।

तोसली (आधुनिक धौली) :

अशोक के समय तोसली कलिंग की राजधानी थी । यहाँ इसके पास ही गुफाओं की प्राप्ति हुई है । साथ ही अशोक का अभिलेख तथा हाथी (गजोतम बुद्ध) की मूर्ति पहाड़ी को उकेर कर बनायी गयी है ।

दन्तपुर :

दन्तपुर कलिंग की राजधानी थी । यहाँ भगवान बुद्ध के दाँतों की अस्थि अवशिष्ट पर स्तूप बना था । यह वर्तमान जगन्नाथ पुरी ही है । यहीं से भगवान बुद्ध के दन्तधातु का एक भाग श्री लंका ले जाया गया था जिस पर यहाँ विशाल स्तूप बनवाया गया था ।

दक्षिणापथ और आन्ध्र प्रदेश

आन्ध्र प्रदेश धान्य कटक, अमरावती तथा नागार्जुनी कई अत्यन्त प्रसिद्ध बौद्ध विहार समूहों के लिये प्रसिद्ध रहे हैं यह नागार्जुन का कर्मक्षेत्र तथा दर्शन क्षेत्र था ।

काँचीपुर :

काँचीपुर (द्रविड़ देश) में प्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह था वहाँ से बौद्ध भिक्षु सिंहल (लंका) को जाते थे । बुद्ध घोष ने पूर्वगामी अट्ठकथाचार्य बुद्धदत्त द्रविड़ देश के ही निवासी थे । वे काँचीपुर महाविहार में ही रहते थे । वे अट्ठकथाओं के लिये श्रीलंका गये थे । काँचीपुरम

---

1. वि० ऐ० इ०, पृ० 184–187.

महाविहार में बुद्धघोष भी रहते थे और यहीं से उन्होंने भी अपने भाषणों का प्रणयन भी किया था। ईसा की सातवीं शताब्दी में यहाँ ह्वेनसांग भी आया था। इन बौद्ध विहारों के सर्वेक्षण से हमें भारत के विभिन्न प्रदेशों प्रान्तों और नगरों में फैले हुए विहारों की स्थिति तथा बौद्ध धर्म के विकास का ज्ञान होता है।

पश्चिमी भारत और विन्ध्यवन (अटवी) के मठ और विहार :

भारत के अन्य भागों की भाँति पश्चिमी भारत और विन्ध्य भू भाग भी बौद्ध धर्म के लिये प्रसिद्ध रहा है।

वलभी :

गुप्त साम्राज्य के क्षीण युग में राष्ट्र के वलभी क्षेत्र में मैत्रक राजवंश का उदय और विकास हुआ। इसी समय वलभी, बौद्ध तथा जैन धर्म तथा साहित्य का विख्यात केन्द्र बन गया। यह काठियावाड़ का आधुनिक 'वल' ही है।

पश्चिमी भारत में वलभी का बौद्ध विहार अति प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्र था। यहाँ ह्वेनसांग भी आया था और बौद्ध विहार को देखा था। इससे सिद्ध होता है कि ईसा की छठी–आठवीं शताब्दी में वलभी बौद्धों का प्रसिद्ध केन्द्र था।

जूनागढ़ (गिरनार) :

रेवतक पर्वत (गिरनार) अशोक के प्रसिद्ध शिलालेख प्राप्त हुये हैं। इससे सिद्ध होता है कि अशोक युग से ही और उसके बाद भी पहाड़ी पर स्तूप ओर विहारों का निर्माण हुआ था।

नासिक – पूना क्षेत्र :

यह मनोरम प्रदेश था। यहाँ सातवाहन वंश के द्वितीय सम्राट् कृष्ण (कन्ह)ने बौद्धों के लिये लेंण (गुफा) बनवायी थी।

इसी प्रकार इस सम्पूर्ण सह्याद्रि पर बौद्धों ने कन्हेरी, पाण्डुलेन, कार्ले, भाजा, जुन्नार, कोण्डाने तथा बेदसा आदि में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में (शक–सातवाहन–युग) में बौद्ध भिक्षु रहते थे। इस प्रकार यहाँ उत्कृष्ठ बौद्ध कला का विकास हुआ था।

गोदावरी का यह तटीय क्षेत्र ब्राह्मण–सन्तों तथा तीर्थों (पंचवटी, त्र्यम्बकेश्वर, ब्रह्मेश्वर आदि) के लिये भी प्रसिद्ध था। गोदावरी और इसकी सहायक नदियों तथा ताप्ती–पयोष्णी घाटी का विन्ध्यवन (अटवी) तपस्वियों के आश्रमों से भरा हुआ था।

अजन्ता :

इसी तापस मण्डल में विश्व विख्यात अजन्ता की गुफायें हजारों बौद्ध भिक्षुओं के वास स्थल तथा साधना–केन्द्र थे।

निर्जन वन के सुन्दर शान्त वातावरण में ही योग साधना की उपयुक्त गुफायें (चैत्य और विहार) वाकाटक युग में बनी थीं। इनमें ही नयान तथा महायान के भिक्षु रहते थे। यह क्षेत्र वास्तु शिल्प और चित्रकला का संगम क्षेत्र भी था। यहाँ कुल तीस छोटी बड़ी गुफायें हैं।

एलोरा :

गोदावरी नदी की घाटी में एलोरा भी प्रसिद्ध धर्म क्षेत्र था। यहाँ ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन गुफायें हैं। बौद्ध गुफायें विशाल और अति महत्वपूर्ण हैं।

वनवासी :

अशोक के समय धम्म का प्रचार करने के लिये भदन्त रक्खित को वनवासी (उत्तर कनारा) भेजा गया था। ईसा की सातवीं शताब्दी में ह्वेन्सांग भी यहाँ आया था।

मध्य देश के मठ और विहार

मध्य देश से बुद्ध धर्म की विहार यात्रा प्रारम्भ हुई थी। यहाँ सारनाथ, सांकाश्य, श्रावस्ती, कुशीनगर, कौशाम्बी, मातीपुर, मथुरा आदि बौद्ध धर्म से सम्बन्धित प्रसिद्ध स्थान तथा महानगर थे। जहाँ स्तूप (चैत्य) विहार बने हुये थे। परन्तु आठवीं शताब्दी से लेकर ईसा की बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी तक विध्वंसक विदेशी बर्बर जातियों के आक्रमणों से वे नष्ट–भ्रष्ट हो गये। खुदाई होने से उनके ध्वंसावशेष यह कथा बताते हैं।

इन प्रसिद्ध स्थानों के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थानों को भी प्रकाश में लाया गया है जिन्हें नीचे दिया जा रहा है :–

अतरंजीखेड़ा :

यह स्थान करसान से दक्षिण में चार मील दूर स्थित है जहां के विशाल प्राचीन टीले की खुदाई से दो महायान विहारों का पता लगा है । ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित पि–लो–शन–न (वीरसन) से इसकी पहचान की गयी है ।[1]

संकाश्य (संकिशा) :

यह उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में स्थित प्रसिद्ध और प्राचीन पांचाल जनपद का नगर था । यहाँ भगवान अपनी मौरी विषहरी को उपदेश देने के लिये आये थे । उस समय आश्विन पूर्णिमा थी । वास्तव में संकाश्य क्षेत्र में बुद्ध का प्रथम पदापर्ण और बौद्ध धर्म का प्रथम अवतरण था ।

अशोक ने यहाँ एक हस्तिशीर्ष स्तम्भ स्थापित कराया था जो इस समय भी विद्यमान है । यह पवित्र तीर्थ स्थल है. जहाँ देश विदेश से हजारों बौद्ध यात्री आते हैं । यहाँ भी बहुत से विहार थे ।

श्रावस्ती

यह मध्य प्रदेश में स्थित कोसल जनपद की राजधानी थी जहाँ जेतवनाराम प्रसिद्ध बुद्ध विहार था । बुद्ध का यहाँ अति प्रिय वास स्थल था । कालान्तर में भी यहाँ बहुत से मठ और विहार बनाये गये जहाँ हजारों भिक्षु रहते थे । इस समय यह स्थान जिला बहराइच में राप्ती नदी के किनारे बहराइच से बलरामपुर वाली सड़क पर स्थित है जो बलरामपुर से 14 मील दूर है । अब इसका पुनरुद्धार हो रहा है । इसे सहेट–महेट कहते हैं लेकिन अब इसे पुनः श्रावस्ती नाम से ही प्रचारित किया जा रहा है । यहाँ से उत्तरापथ और दक्षिणापथ को मार्ग जाते थे । यह प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र भी था ।[2]

---

1. वि० ऐ० इ०, पृ० 100.
2. वही

मथुरा :

मध्य देश में मथुरा नदी के तट पर स्थित यह प्रसिद्ध बौद्ध धर्म–स्थल तथा व्यापारिक केन्द्र था। शकों तथा कुषाणों के शासनकाल में यह प्रसिद्ध नगर रहा था।यहाँ उत्खनन में कुषाण तथा गुप्तकालीन विहारों के अवशेष प्राप्त होते हैं। यहाँ अशोक भी धर्मयात्रा करते हुये आया था। भारतीय कला की भगवान बुद्ध की मूर्ति का निर्माण भी सबसे पहले यहीं हुआ था।

कुशीनगर :

यह मल्लों की राजधानी थी। जो इस समय देवरिया जिले में स्थित है। यहीं भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। यहाँ भगवान बुद्ध की विशाल शयन करती हुई (परिनिर्वाण मुद्रा में) मूर्ति तथा स्तूप और विहारों के खण्डहर प्राप्त होते हैं।

गोपालपुर :

गोरखपुर में गोला बाजार से लगभग दो मील घघर नदी के तट पर स्थित ग्राम में बौद्ध विहार प्राप्त हुआ था जिसकी ईंटों पर प्राचीन अभिलेख अंकित है।[1]

कौसाम्बी :

यह वत्स महाजनपद की राजधानी तथा प्राचीन और प्रसिद्ध नगर था जहाँ से चारों ओर मार्ग जाते हैं। इसकी पहचान इलाहाबाद से लगभग 30 मील दूर स्थित कोसम ग्राम से की गयी है।

घोसिताराम यहाँ का प्रसिद्ध विहार था जहाँ भगवान बुद्ध अधिकांशतः ठहरते थे। इस विहार को घोसित नामक सेट्ठी ने बनवाया था।

सारनाथ :

प्रसिद्ध प्राचीन और धार्मिक नगर काशी (वाराणसी) के पास सारनाथ इसिपत्तन मिगदाय (ऋषिपत्तन मृगदाय) में भगवान् बुद्ध ने प्रथम धर्मोपदेश (धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र) दिया था। अशोक

---

1. वि० ऐ० इं०, पृ० 112–113.

ने यहाँ स्तम्भ, स्तूप और विहार का निर्माण करवाया था। उत्खनन में सिंह शीर्ष युक्त स्तम्भ, धर्मराजिका, धमेक और चौखंडी स्तूपों तथा विहारों के अवशिष्ट मात्र प्राप्त हुये हैं।

यही धर्म चक्र जिन महाविहार था जिसकी मरम्मत गहड़वाल सम्राट् गोविन्दचन्द्र की महारानी कुमार देवी ने करवाया था।

<u>कान्यकुब्ज</u> :

महाराज हर्षवर्धन के राज्य काल में चीनी यात्री ह्वेन्सांग यहाँ आया था। उस समय कान्यकुब्ज (कन्नौज) में विशाल धर्मोत्स्व में चीनी यात्री का व्याख्यान हुआ था। इस धर्मोत्स्व में बहुत से सामन्त राजा तथा बौद्ध विद्वानों ने भी भाग लिया था।

ह्वेन्सांग ने यहाँ लगभग 500 बौद्ध विहारों को देखा था। यहाँ भद्र विहार अति प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्र था। हर्ष के बाद गहड़वाल सम्राट् गोविन्दचन्द्र तथा उनकी रानी कुमारदेवी ने भी बौद्ध धर्म को पुनः सशक्त बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु तुरुषकों का आतंक काल था। जयचन्द्र भी बौद्ध धर्मावलम्बी थे। बौद्ध भिक्षु जगत् मित्र उनके गुरु थे। वे बुद्ध गया में रहते थे। यह तथ्य एक अभिलेख से ज्ञात होता है।[1]

हर्ष के यहाँ विशेष भवनों का निर्माण करवाया था जिनमें कई बौद्ध विहार भी थे। परन्तु मुस्लिम आक्रमणों से वे सभी नष्ट हो गये।

बस्ती, गोरखपुर तथा तराई-भाग में विहारों के न जाने कितने खण्डहर पृथ्वी में छिपे पड़े हुये हैं। कपिलवस्तु को बस्ती जिले में ही स्थित बताया गया है। यहाँ पर भी बहुत से विहार थे। इस समय कपिलवस्तु के अवशेष उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थ नगर जिला में पिपराहवाँ ग्राम के पास की टीलों की खोदाई से प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से सिद्ध होता है कि गुप्त शासकों के बाद भी बारहवीं शताब्दी ई0 तक भारत के विभिन्न भागों में बौद्ध विहारों, संघारामों और स्तूपों का निर्माण होता रहा साथ ही पुराने विहारों और स्तूपों का जीर्णोद्धार भी होता रहा।

--------:0:--------

---

1. कन्नौज का इतिहास, पृ0 489.

षष्ठ अध्याय

उपासक-उपासिकाएँ

गृहस्थ बौद्ध पुरुष उपासक कहलाता है तथा बौद्ध गृहस्थ नारी को उपासिका कहते हैं। ये भी बौद्ध संघ के अभिन्न अंग हैं। ये उपासक उपासिकायें ही भिक्षु–भिक्षुणियों तथा संघ के आश्रय हैं। इन्होंने तिशरण दीक्षा प्राप्त की है और ये पंचशील के नियमों का पालन करते हैं।

निर्वाण की प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। गृहस्थ के लिए अनेक विघ्न हैं। उसके लिये निर्वाण पथगामी साधना (अष्टांगिक मार्ग) सुगम नहीं है। साधारणतः वे स्वर्ग चाहते हैं। उनके लिए शील ही शिक्षा है। उपासक होने के लिये त्रिशरण गमन की विधि है जो उपासक होना चाहता है, वह बुद्ध धर्म और संघ में जाता है –

बुद्धं सरणं गच्छामि

धम्मं सरणं गच्छामि

संघं सरणं गच्छामि

ये बुद्ध, धर्म, और संघ ही बौद्ध धर्म के त्रिरत्न हैं।

उपासक :

बौद्ध धर्म में उपासक का विशेष महत्व है। इसीलिए जिस प्रकार भगवान बुद्ध ने भिक्षु–भिक्षुणी सघ की स्थापना की थी उसी तरह उन्होंने उपासक उपासिका संघ की भी स्थापना की थी। यही नहीं उन्होंने उपासक संघ को प्रधानता प्रदान की थी क्योंकि वह भिक्षु संघ का आधार है। उपासक कौन और कैसे बनता है इस विषय में संयुक्त निकाय[1] में भगवान बुद्ध के कपिलवस्तु में महानाम और अनाथपिण्डक को दिये गये उपदेशों में मिलता है जो व्यक्ति त्रिशरण ग्रहण करता है वह उपासक होता है। वह स्वयं बुद्ध धर्म की शरण में जाने की हृदय से घोषणा करता है।

शरण चार प्रकार की होती है –

पहली प्रकार की शरण में वह सम्पूर्ण जीवन को त्रिशरण को समर्पित करता है। (आत्मनीयायतनं) दूसरी प्रकार की शरण में पूर्ण निष्ठा भाव से शरण में जाता है (तत्परायणता)

---

1. संयुक्त नि० (हि० अ०), जिल्द दो, पृ० 785–90 तक

तीसरी प्रकार की शरण में उपासक शिष्य भावना से शरण ग्रहण करता है (सिस्य भवोगमनं) और चौथी प्रकार की शरण प्रणाम करके ही शरण ग्रहण की जाती है (पणिपातं)।

उपासक–उपासिका का दूसरा गुण शील सम्पन्नता है । वह पंचशील का अपने जीवन में आचरण करता है अर्थात् वह

1. प्राणी हिंसा से विरत रहता है ।
2. बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करता है ।
3. मिथ्या कामाचार से विरत रहता है ।
4. झूठ, कठोर नहीं बोलता और न ही चुगली ही करता है ।
5. शराब, ताड़ी तथा अन्य मादक द्रव्यों और प्रमादी स्थानों से विरत रहता है ।

यह विरमण (वेरमणी भाव) दो प्रकार से प्राप्त होता है । वह शील (पंचशील) का उपदेश ग्रहण करके शील पालन करता है अथवा वह परम्परा से ही प्राप्त शीलवान होता है । इन दोनों प्रकार के शीलवानों को क्रमशः "समादान विरत" ओर "संपत विरत" कहते हैं ।

भिक्षु संघ को संघाराम में आवास हेतु कमरा दान प्राप्ति तथा तेरह आवश्यक वस्तुएं दी जाती थीं । उपासक–गृहस्थ थे । वे संघाराम में नहीं रहते थे । बल्कि अपने–अपने घरों में रहकर गृहस्थ जीवन बिताते हुये धर्मशील का आचरण करते थे ।

संघ में प्रवेश पाने के लिए उपासकों को भी विनय के नियमों का पालन करना पड़ता था । गृहस्थ किसी बौद्ध आचार्य की शरण में जाना अभीष्ट था । उससे वह धर्म दीक्षा लेता था । आचार्य को संघ के अध्यक्ष की दीक्षा लेता था । आचार्य को संघ के अध्यक्ष की अनुमति लेनी पड़ती थी । इसके बाद ही वह पंचशीलों का उपदेश करता था ।

केवल स्थविर ही आचार्य बन सकता था । स्थविर वही होता था जो दस वर्षावास व्यतीत कर चुका हो । उपासक जब भिक्षु बनना चाहता था तो उस समय का संस्कार "उपसम्पदा" कहलाता था ।

आचार्य (उपाध्याय) की सहायता से विनयपिटक तथा प्रति मोक्ष का अध्ययन करना आवश्यक है।[1] भिक्षु तीर्थों की धर्म यात्रा करते थे । इससे उनमें धर्म कामना का विकास होता था

---

1. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 98.

तथा उनके जीवन का सांसारिकता से लगाव भी क्षीण होने लगता था ।

महामंगल सुत्त में धर्म प्रचार को मंगलकारी बतलाया गया है । उपासक–उपासिकाओं के लिए भगवान बुद्ध के जीवन कार्यों से समबन्धिंत स्थानों यथा लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर तथा अन्य बौद्ध केन्द्रों की यात्रा करना हितकारी और आवश्यक था । बौद्ध धर्म और कला में इसकी वृद्धि होती है ।

बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पश्चात उपासक रूप में मौर्य सम्राट् अशोक ने भी लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर, श्रावस्ती आदि प्रमुख बौद्ध केन्द्रों की यात्रा अपने धर्म गुरु उपगुप्त के साथ की थी जिसका विस्तृत विवरण दिव्यावदान तथा अशोकावदान में मिलता है ।

उपोसथ दिवस (दो अष्टमी अमावस्या और पूर्णिमा) के अवसर पर विहारों में उपस्थित होकर उंपासक उपासिकाएं सामूहिक रूप से बुद्ध उपदेश सुनते थे और भिक्षुसंघ को दान देते थे ।

सातवीं शताब्दी में भारत में आये हुये चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार जो व्यक्ति सात परिषदों में सदस्य न रहा हो वह उपासक कहलाता है ।[1] आचार्य दस शिक्षा पदों की शिक्षा देता था । जब वह अपने कपड़े धारण कर लेता था वह प्रवृजित कहलाता था । दस दिशाओं (दस शीलों को) ग्रहण करने के पश्चात् वह श्रामणेर कहलाता था ।[2]

श्रामणेर उसे कहते हैं जो भव–चक्र में भ्रमण करने से विश्राम लेना चाहता था । उसका परम लक्ष्य निर्वाण होता है ।[3]

ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि भिक्षु हुए (घर त्याग) बिना ही वे उपासक प्रबुद्ध बन गये ।[4]

इस प्रकार उपासक या उपासिका के हृदय और आचरण में धर्म गुणों का विकास होना अनिवार्य था । इसके लिये बौद्ध धर्म और संघ ने चार साधन प्रदान किये थे :–

---

1. रे0 बु0 प्रै0 इ0 म0, पृ0 96.
2. वही, पृ0 96.
3. वही, पृ0 96.
4. शा0 हि0 बु0, पृ0 22.

1. **उपोसथ** – इस दिन उपासक पंचशीलों का सतत और अप्रमाद से पालन करता है । उपोसथ दिनों (दो अष्टमी की अमावश्या तथा पूर्णिमा) में तीन नियम और जोड़ दिये गये हैं :–

    (क) उपवास
    (ख) सांसारिक आमोद–प्रमोद (गीत नृत्य आदि) से दूर रहे ।
    (ग) किसी भी अलंकरण व आभूषण का प्रयोग न करे ।

इसके अतिरिक्त कुछ उपासक अन्य दो नियमों का भी पालन करते थे –

    (क) ऊँचे और चौड़े शयनीय पर (तखत पलंग आदि) सोते थे ।
    (ख) सोना और चाँदी दान में स्वीकार नहीं करते थे ।[1]

2. **उपासक त्रिरत्न** – बुद्ध धम्म और संघ में पूर्ण भक्ति और श्रद्धा रखे ।
3. वह उदार रहे तथा भिक्षुओं को दान आदि देता रहे ।[2]
4. वह बुद्ध शरीर धातु आदि की पूजा करता रहे ।

यदि उपासक इन चार नियमों का पालन करता रहे तो उसका सांसारिक जीवन भी सुखमय होगा ।

अशोक ने भाब्रू (बैराट) शिलालेख में मागध संघ को सम्बोधित करते हुये कुछ धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन और धारण करने का उपदेश अर्हतों तथा भिक्षुओं को साथ–साथ उपासकों और उपासिकाओं को भी दिया इससे उपासकों के लिए निर्धारित कार्यों का संकेत मिलता है ।
अशोक कहते हैं कि –

पियदसि लाजा मागधं सघं अभिवादेतं आह ... विदित वे भंते आपतके हमा बुधसि धंमसि संघसीति गालवे च पसादे च ।

ए केचि भगवता बुधेन भासिते सबे सुभासिते वा । ए चु खो भंते हमियाये दियेया हेवं संघमे चिलठिती के होसतीति अलहामि हकं तं बतवे ।
इमानि भंते धंम पलियायानि

---

1. शा0 हि0 बु0, पृ0 23.
2. वही, पृ0 23.

विनय समुकसे

अलियवसानि

अनागतभयानि

मुनिगाथा

मोनेय सूते

उपतिस पसिने

ए चा लाघुलोवादे

मुसावादं

अधिगम्य भगवता बुधेन भासिते ।

एतानि भंते धंमपलियायानि इछामि । .....

किति । बहुके भिखु पाये व भिखुनिये वा अभिखिनं सुने युद्या च उपधालयेयु वा ।

हेमंमेवा उपासका चा उपासिका चा एतेनि भंते इमं त्रिश्वापयामि प्रभिपेतं ज्ञानंतु ति ।[1]

ज्ञातव्य है कि अशोक स्वयं उपासक था और उसने भिक्षु संघ में कुछ समय तक निवास किया था – मया संघ उपयीते ।[2]

इससे यह स्पष्ट होता है कि उपासकों को कुद समय भिक्षु संघ के साथ रहना हितकर था । यह इसलिये भी आवश्यक था कि इससे वह बौद्ध रहना–सहना और व्यवहार सीखता था । साथ ही उपासक जीवन के लिये आवश्यक बुद्ध देशना का श्रवण लाभ करता था ।

राहुल की प्रवृज्या तथा उपासक का स्वरूप

बौद्ध साहित्य उपासकों और उपासिकाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है । तथापि उनकी दीक्षा विधि के विवरण विरले ही प्राप्त होते हैं । संयुक्त निकाय में राहुल की प्रवृज्या दीक्षा का वर्णन सविस्तार प्राप्त होता है जो संक्षप में इस प्रकार है:–

---

1. भाब्रू –(वैराट) शिलालेख ।
2. लघु शिलालेख (ब्रह्मगिरि, सिद्धापुर, जटिंग रामेश्वर आदि)

<u>राहुल की शिक्षा</u> :

शाक्य मुनि गौतम बुद्ध अपने पूर्व वचनानुसार बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद अपने पिता के आमन्त्रण करने पर कपिलवस्तु गये ।

वहाँ उनकी छाया राहुल पर पड़ती है, जिससे राहुल का सम्पूर्ण शरीर कम्पायमान हो जाता है । भगवान ने घोषणा की कि कोई भी यह न कहे कि राहुल उनका पुत्र है । परन्तु यशोधरा ने राहुल को अवगत कराया कि भगवान उसके पिता हैं । इस बात के सुनते ही राहुल भगवान के पीत चीवर के एक कोने से चिपक गये और अपनी माता से कहा कि वह भी पिता की तरह गृह त्याग कर पिता के विरक्त पथ का अनुसरण करेगा ।

इस स्थिति से महाराज शुद्धोधन सहित महल के सभी लोग विलाप करने लगे । शुद्धोधन ने राहुल को बहुत कुछ समझाया कि वह गृह त्याग न करे । उन्होंने बुद्ध से भी राहुल के गृह त्याग कर प्रव्रर्जित होने से राहुल को रोकने का आग्रह किया ।

भगवान बुद्ध ने पिता को बताया कि राहुल में विगत बुद्धों का प्रभाव विद्यमान है और उसके कर्मफल स्थलकि महल में निवास करना नहीं बतलाते हैं अतः उसे – शरीर धातुओं पन्चस्कन्धों से विनिमुक्त होना ही है । पिता के कहने पर बुद्ध ने उसे एक सप्ताह का समय दिया । महल में रहते हुए उसे विरक्त जीवन अपनाने से रोकने के लिए विविध प्रयत्न किये गये । यशोधरा ने राहुल को प्रव्रजित न होने के लिये बहुत प्रयास किया । परन्तु सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए ।

राहुल का दृढ़ निश्चय (सम्यक् संकल्प) था कि वह राजकीय सुखों का सर्वथा परित्याग कर पिता के समान अवश्य निर्वाण प्राप्त करेगा ।

इसके बाद भगवान ने राहुल का शिर स्पर्श (शक्ति दान) करते हुए आशीर्वाद दिया और सारिपुत्र से उसकी दीक्षा की बात कही । सारिपुत्र ने भगवान बुद्ध से पूछा –

"भगवान् राहुल की कैसी व्यवस्था होगी"?

भगवान् ने उत्तर दिया – "हे सारिपुत्र ! आर्य धर्म एवं अनुशासन में एक नवागन्तुक व्यक्ति के समान ही राहुल की व्यवस्था होनी चाहिये।" वह कहते हैं "मैं (राहुल) बुद्ध संघ और धर्म की शरण में आता हूँ मेरे लिये बुद्ध, संघ एवं धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है । इसी जीवन में कभी भी हिंसा, चोरी, मिथ्या, कामाचार, असत्य, कठोर वचन और चुगली करने से तथा सुरा आदि से दूर रहूँगा और व्यवहार भी नहीं करूँगा । इन शिक्षा पदों द्वारा मुझे एक उपासक रूप की स्वीकृति प्रदान की जाय । मैं बुद्धोपदिष्ट धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा ।"

इसके बाद सारिपुत्र और महाकाश्यप, राहुल के केश मुंडवाकर क्रमशः दाहिना एवं बायां हाथ पकड़ कर पर्ण शय्या पर ले गये । तब भगवान् बुद्ध ने कहा –

"यह धर्म में नियोजित हो मेरा अनुसरण करे ।"

इस प्रकार राहुल की प्रव्रज्या दीक्षा से एक उपासक के संयमित और पवित्र जीवन पर प्रकाश पड़ता है ।

कला और संस्कृति में उपासक–उपासिकाओं का योगदान :

बौद्ध उपासक और उपासिकाओं ने भारतीय संस्कृति और कला में महान योगदान दिया है । श्रावस्ती के जेतवनाराम का निर्माण श्रावस्तीवासी अनाथपिण्डक ने कराया था ।[1] इसी नगर में महा उपासिका ने दस करोड़ व्यय करके भिक्षु संघ के लिए जेतवन के पूर्वी द्वार पर पूर्वाराम विहार बनवाया था जिसमें एक हजार कमरे थे । बौद्ध धर्म के इतिहास में शिशुनाग वंशी शासक कालाशोक का नाम बहुचर्चित है । वैशाली में सम्पन्न द्वितीय बौद्ध संगीति का पूरा व्यय भार उसी ने वहन किया था । उसकी बहन भी बुद्ध उपासिका थी । वस्तुतः कालाशोक ही इस संगीति का संरक्षक था ।

उपासक सम्राट् अशोक ने अपने तथा पड़ोसी राज्यों में चौरासी हज़ार[1] (अथवा अस्सी हजार)[2] स्तूपों का निर्माण करवाया था । इन सबका उद्‌घाटन वर्षावास

---

1. महावंश (हि0 अ0), पृ0 24.
2. बुद्ध चरित, 28/64–65 ; द्रष्टव्य डॉ0 ए0 लाल, अश्वघोष कालीन महाभारत, पृ0 180.

की समाप्ति (अश्विन मास की पूर्णिमा) के पश्चात् कार्तिक मास की अमावस्या (उपोस्थ) दिवस के दिन ही करवाया था । महावंश से पता चलता है कि इन विहारों को दीपमालाओं से सजाया गया था । उद्घाटन के पश्चात् यह महान घटना दीपमालिका अथवा दीपावली नाम से प्रतिवर्ष मनाया जाने लगा जो आज भी अपने उसी रूप में मनाया जाता है । इस प्रकार उपासक सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये वहाँ भदन्त मोग्गलि पुत्त तिस्स के परामर्श से देश-विदेश के विविध राज्यों में एक सो बौद्ध भिक्षु मण्डल भेजे । वहीं दूसरी ओर विहार स्तूप स्तम्भ, पशुओं की मूर्तियाँ, गुफायें आदि बनवाकर भारत की तरफ से विश्व की बौद्ध कला में महान योगदान दिया ।

कुषाणवंशीय उपासक :

भारतीय कला और संस्कृति को कला संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में कुषाण सम्राट कनिष्क को भुलाया नहीं जा सकता । कनिष्क ने महा स्थविर पार्श्व से बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की ।[1] उसके बाद उनके ही शिष्य बौद्धाचार्य अश्वघोष से भी उसने बौद्ध धर्म के तत्वों को सीखा था । उत्तरी बौद्ध धर्म की चतुर्थ बौद्ध संगीति का पूरा व्यय भार इसी कुषाण उपासक ने वहन किया था ।[2] वही उसका संस्थापक था । सबसे पहले भगवान् बुद्ध की मूर्ति इसी बौद्ध उपासक के समय मथुरा और गान्धार कला केन्द्रों में निर्मित हुई । इसी के शासनकाल में बौद्ध धर्म मध्य एशिया के अन्यान्य देशों और चीन तक में फैल गया था ।[3]

गुप्तयुगीन उपासक :

गुप्त सम्राटों में समुद्रगुप्त ने अपने पुत्र चन्द्रगुपत द्वितीय की शिक्षा-दीक्षा का भार बौद्धाचार्य वसुबन्धु को सौंपा था ।[4] चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का

---

1. अश्वघोषकालीन भारत, पृ0 ५
2. डॉ0 (श्रीमती) यमुना लाल, भारत तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक, पृ0 64.
3. वही, पृ0 68-71.
4. डॉ0 ए0 एस0 अल्टेकर, गुप्त युग, पृ0 156.

उच्चाधिकारी दण्डनायक आम्रकार्दव उल्लेखनीय उपासक था जिसने साँची के बौद्ध महाविहार को दान दिया था ।[1] कुमारगुप्त का युग बौद्ध कला के लिये स्वर्णयुग था । सारनाथ की धर्मचक्र मुद्रा वाली मूर्ति मथुरा की खड़ी हुई अभय मुद्रा की बुद्ध की मूर्ति इसी के शासनकाल में निर्मित हुई थी ।

वर्द्धनवंशी उपासक–उपासिकायें :

बौद्ध धर्म के इतिहास में वर्धन वंशी शासकों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । प्रभाकरवर्द्धन के पुत्र तथ हर्षवर्धन के ज्येष्ठ भ्राता, राज्यवर्द्धन ने 'परम सौगत' उपाधि धारण की थी जो बुद्ध का ही एक नाम है । इसी वंश के सम्राट् हर्षवर्द्धन का नाम उल्लेखनीय है । जिसे भारत में धर्म यात्रा पर आये हुए तत्कालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी का सबसे बड़ा उपासक कहा है ।[2] उसने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये कन्नौज में एक धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था जिसकी अध्यक्षता चीनी यात्री ह्वेनसांग ने की थी ।[3] हर्ष ने कब और किससे धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता । यह अवश्य पता चलता है कि हर्ष के ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन बौद्ध धर्मनुयायीथा। हर्ष की बहन राज्यश्री के पति कन्नौज के शासक गृहवर्मा भी बौद्ध धर्म के धर्मानुयायी थे और उस युग के प्रसिद्ध बौद्धाचार्य दिवाकर मित्र के बालमित्र थे ।[4] राज्यश्री पर परमसौगत राज्यवर्द्धन का तथा पति ग्रह वर्मा का बौद्ध धर्म का प्रभाव था ।

हर्ष की दीक्षा पर बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित से धुंधला प्रकाश पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि जिस समय विन्ध्याटवी में दिवाकर मित्र की सहायता से हर्ष राज्यश्री को चिता में जलने से बचा सका । उसी समय राज्यश्री ने 'काषाय वस्त्र' धारण करने (भिक्षुणी बनने) की हर्ष से अनुमति माँगी थी लेकिन हर्ष ने शत्रुओं के

---

1. डॉ0 ए0 एस0 अल्टेकर, गुप्त युग, पृ0 386; दृष्टव्य डॉ0 यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 प्र0, पृ0 96.
2. डॉ0 यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 प्र0, पृ0 156–57.
3. वही, पृ0 154.
4. हर्षचरित, पृ0 332–34.

विनाश की अपनी प्रतिज्ञा को बतलाते हुए कहा कि शत्रुदल को विनष्टकर तुम और मैं दोनों एक साथ "काषाय" ग्रहण करेंगे ।[1]

इससे यही प्रतीत होता है कि हर्ष और राज्यश्री दोनों ने दिवाकर मित्र से ही बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी ।

हर्ष की रचनाओं से भी उसके धर्म परिवर्तन का बोध होता है । जहाँ रत्नावली नाटिका का प्रारम्भ उसके शिव पार्वती की स्तुति से किया गया है वहीं नागानन्द नाटक का प्रारम्भ उसने बोधि तथा बुद्ध (मुनीद्र) की वन्दना से किया है ।[2] उसका नायक जीमूतवाहन बोधिसत्व है ।

महोदय विन्टर नित्ज के अनुसार "सु प्रभात स्तोत्र" भी हर्ष की रचना है जिसमें चौबीस श्लोकों में प्रातःकालीन बुद्ध की गुणानुस्मति है ।[3] वे "अष्ट महाश्री चैत्य स्तोत्र" को भी हर्ष की रचना मानते हैं जिसमें प्रारम्भ में स्थापित आठ धातु स्तूपों की वन्दना की गयी है । इसका अनुवाद आज भी चीनी में सुरक्षित है ।[4]

हर्ष ने राजधानी कन्नौज में तीन बौद्ध विहारों का निर्माण करवाया था जो एक ही चहार दीवाल के घेरे में थे । जिनमें सुयोग्य भिक्षु रहते थे जिनके आदर सत्कार के लिये हजारों लोग लालयित रहते थे ।[5] कन्नौज से नातिदूर नवदेव कुल (वर्तमान में केवल जिला उन्नाव) में भी हर्ष ने तीन विहारों का निर्माण एक ही दीवाल के घेरे में बनवाया था। जिनमें 500 बौद्ध भिक्षु रहते थे जो हीनयान की सर्वास्तिवादी शाखा के अनुयायी थे ।[6] हर्ष उन सबका व्यय भार वहन करता था ।

पाल वंशी उपासक :

बौद्ध धर्म और कला के इतिहास में पाल युग का भी विशेष महत्व है । इसके शासक बौद्ध उपासक (परम सौगत) थे । "पाल साम्राज्य" का संस्थापक गोपाल

---

1. हर्षचरित, पृ0 332–34.
2. नागानन्द, पृ0 1–5.
3. हि0 इ0 लि0 जि0, पृ0 377.
4. डॉ0 श्रीमती यमुना लाल, भा0 वि0 बौ0 ध0 प्र0, पृ0 155.
5. हे0 भा0 भा0, पृ0 160.
6. वही, पृ0 161.

था जिसके संरक्षण में प्रसिद्ध बौद्ध विद्या केन्द्र "ओदन्तपुरी विहार" की स्थापना हुई थी। इसी विहार की स्थापत्य कला ने तिब्बत में विहार निर्माण की कला को प्रभावित किया। गोपाल के शासनकाल में तिब्बत के साथ बौद्ध धर्म, विद्या और विद्वानों का सम्पर्क स्थापित हुआ जिससे कालान्तर में तिब्बत और बौद्ध धर्म, विद्या और कला का संग्रहालय ही बन गया।[1]

गोपाल के बाद महाउपासक परमसौगत धर्मपाल सिंहासन पर आसीन हुआ। उसके प्रयास और संरक्षण में विक्रमशिला विश्वविद्यालय बौद्ध जगत का उत्कृष्ट विद्या केन्द्र बना जहाँ भारत के विभिन्न भागों से ही नहीं, विदेशों से भी बौद्ध विद्या पिपासु, तृप्ति के लिये आते थे। इसी युग में तंत्रदान का प्रचार हुआ।

इस वंश का प्रसिद्ध तीसरा बौद्ध उपासक देवपाल था जिसने "सोमपुरी विहार" की स्थापना की। देवपाल के उत्तराधिकारी भी बौद्ध धर्म के उन्नायक थे। पाल युग में ही भिक्षु शान्त रक्षित पद्मसंभव, अतिश दीपांकर भी ज्ञान प्रसार के लिये तिब्बत गये थे।[2]

महा उपासिका कुमार देवी :

प्राचीन भारतीय इतिहास में गहड़वाल राजवंश कन्नौज का अन्तिम था। इस वंश के शासक ही नहीं, रानियाँ और महारानियाँ भी बुद्ध धर्म की उपासिकायें थीं। इसकी राजधानी वाराणसी थी। इसी वंश के प्रसिद्ध शासक गोविन्द चन्द्र की रानी कुमार देवी ने सारनाथ में एक विशाल बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था जिसके ध्वंसावशेष पुरातत्व के उत्खनन में प्राप्त हुए हैं।

इसका नाम "धर्म चक्र जिन विहार" था जो नौ खण्डों में विभक्त था। पूर्व से पश्चिम में इसकी लम्बाई 760 फीट थी। गर्मी के लिये एक सुरंग (ध्यान

---

1. डॉ० श्रीमती यमुना लाल, भा० वि० बौ० ध० प्र०, पृ० 176.
2. वही, पृ० 177-79.

भावना के लिये) बनाई गयी थी जिसके अन्तिम छोर पर भगवान् बुद्ध की एक भव्य मूर्ति स्थापित की गयी थी । पठन-पाठन के लिये विहार के प्रांगण में 'परिवेण' बना हुआ था । विहार में एक मन्दिर था जिसमें भगवान् बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गयी थी । यह मन्दिर सारनाथ के सभी मन्दिरों में सबसे विशाल था । कुमार देवी ने इसके खर्च के लिए वाराणसी की सबसे बड़ी तहसील जम्बुकी दान दी थी ।[1] उपासिका कुमार देवी ने सारनाथ में अशोक निर्मित गन्धकुटी में तथागत की मूर्ति की पुनः प्रतिस्थापना की । "उसने नालन्दा और बोध गया के महाबोधि विहार के लिए पर्याप्त दान दिया था । उसने सहस्त्रों भिक्षुओं को आश्रम दिया और अनेक विहारों का दायकत्व भार संभाला ।"[2]

महा उपासिका कुमार देवी के जीवन वृत्त के विषय में यह पता चलता है कि गया जिले के पीठी प्रदेश के सामन्त देव रक्षित की पुत्री थी । उसकी माता का नाम शंकर देवी था । शंकर देवी के पिता का नाम महन देव था जो अंग जनपद के अधिपति थे ।

उस समय विहार में बौद्ध धर्म का प्रभाव अधिक था । विक्रमशिला और नालन्दा के विश्व प्रसिद्ध विद्यापीठों के अनेक बौद्धाचार्य नेपाल, तिब्बत और चीन को धर्म प्रचार-प्रसार के लिए जाते रहते थे । कुमार देवी के माता-पिता बौद्ध धर्मानुयायी थे । अस्तु उसे भगवान बुद्ध के धर्म का ज्ञान माता-पिता से ही प्राप्त हुआ था । कुमार देवी अपने माता-पिता के साथ प्रतिमास की अमावस्या और पूर्णिमा को बोधगया आकर महाबोधि और भगवान बुद्ध की मूर्ति की पूजा-अर्चना करने आया करती थी।[3]

जब कुमार देवी बड़ी हुई तब उसे बौद्ध धर्म की शिक्षा-दीक्षा एक सुयोग्य बौद्ध भिक्षु द्वारा प्राप्त हुई । कुछ समय बाद बौद्ध धर्म की अवगति देखकर उसे बहुत

---

1. सारनाथ का इतिहास, पृ० 88 (डॉ० भिक्षु धर्म रक्षित, वाराणसी, 1961)
2. वही, पृ० 89.
3. वही पृ० 87.

कष्ट हुआ और वह चिन्तित हो उठी । वह बौद्ध धर्म का पूरे भारत में प्रचार-प्रसार देखना चाहती थीं। अशोक, संघमित्रा और हर्ष के सद्धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए किये गये कार्यों से वह बहुत प्रभावित थी ।[1] उसकी विरक्ति भावना को देखकर माता-पिता के वाराणसी और कन्नौज के गहड़वाल शासक मदनचन्द्र के पुत्र गोविन्द चन्द्र के साथ उसका विवाह कर दिया ।

कुमार देवी के सारनाथ अभिलेख के अनुसार "वह (कुमार देवी) मन से धर्मनिष्ठ है ।" सदा सद्गुणों को प्राप्त करने में संलग्न रहती है । पुण्य संचय ही उसका वृत है । दान देकर उसे अपार सन्तोष होता है ।"[2] दोनों की जोड़ी अनुभाग थी । यद्यपि गोविन्द चन्द्र पहले शिव उपासक थे लेकिन बाद में वे भी बुद्ध अनुयायी हो गये थे और उन्होंने सारनाथ. वाराणसी, श्रावस्ती, कन्नौज, नालन्दा और बुद्धगया के विहारों को पर्याप्त दान दिये थे[3] और विहारों का जीर्णोद्धार करवाया । बौद्ध महारानी कुमार देवी का देहावसान राजधानी वाराणसी में हुआ । उसके पुत्र विजय चन्द ने वहीं धूमधाम से अन्त्येष्टि क्रिया की, ओर फूलों पर एक भव्य स्तूप का निर्माण करवाया ।[4] कुमार देवी का वह स्तूप वाराणसी के अवशेषों में वहीं विस्मृत है और बौद्ध विद्वानों और पुरातत्व वेत्ताओं के फावड़े की प्रतीक्षा कर रहा है ।

राजा जयचन्द्र :

वाराणसी और कन्नौज के राजा जयचन्द के पिता का नाम विजय चन्द्र और पितामह का नाम गोविन्द चन्द्र था । जयचन्द्र की शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबन्ध उनकी दादी महारानी कुमार देवी ने किया । बौद्ध भिक्षु जगन्मित्रानन्द उनके गुरु थे जो उस समय बौद्ध धर्म के संघनायक थे और वे "सिद्ध" माने जाते थे । उनके द्वारा रचित दस पुस्तिकायें तिब्बती अनुवाद में आज भी उपलब्ध हैं ।[5] उन्हीं ग्रन्थों में एक

---

1. सारनाथ का इतिहास, पृ0 87.
2. वही, पृ0 87.
3. वही, पृ0 91.
4. वही, पृ0 89.
5. वही, पृ0 90.

ग्रन्थ "चन्द्रराज लेख" भी है जो जयचन्द्र के लिये लिखा गया था । इस ग्रन्थ में गहड़वाल जयचन्द्र के शौर्य धर्म परायणता आदि का वर्णन है । बुद्धगया से प्राप्त अभिलेख में जयचन्द्र और जगन्मित्रानन्द का शिष्य-गुरु सम्बन्ध स्पष्ट होता है ।[1]

जयचन्द्र की प्रार्थना पर ही जगन्मित्रानन्द धर्म प्रचार के लिए नेपाल और तिब्बत गये थे । बौद्ध उपासक राजा जयचन्द्र स्वयं तो बौद्ध थे ही उनकी एक प्रमुख रानी भी बौद्ध धर्मावलम्बिनी थी जिसके लिये लिखी गयी पुस्तक आज भी नेपाल दरबार पुस्तकालय में विद्यमान है ।[2]

1193 ई0 में सहाबुद्दीन गौरी ने कन्नौज पर आक्रमण किया । जयचन्द्र ने उसे विफल कर दिया । पश्चिम में युद्ध में व्यस्त देखकर बंगाल के सेनवंशी राजाओं ने गहड़वाल राज्य के पूर्वी भाग पर आक्रमण करके वाराणसी पर अधिकार कर लिया । शहाबुद्दीन गोरी (मुहम्मद गोरी) ने अवसर का लाभ उठाकर पुनः कन्नौज राज्य पर हमला किया । जयचन्द्र ने शत्रु को दूर ही रखने के लिए इटावा के पास चन्दावर के मैदान में जा डटा । भीषण युद्ध हुआ, जयचन्द्र की विजय होने वाली ही थी कि अचानक उसका हाथी भड़क गया जिसके कारण अन्तिम प्रतापी बौद्ध शासक और उपासक इसी बुद्ध क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ ।[3]

---------:0:---------

---

1. इण्डि0 हिस्ट0 क्वार्टरिली, कलकत्ता, मार्च, 1929, पृ0 14–30;
   राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 158–59.
3. डी0 आर0 साहनी, गाइड टु सारनाथ, पृ0 32.
3. डॉ0 भिक्षु धर्म रक्षित, सारनाथ का इतिहास, पृ0 95–96.

सप्तम अध्याय

बौद्ध शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षा केन्द्र

सुदूर प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत में अध्यापन पुण्य का कार्य माना जाता रहा है । महाभारत में भी गृहस्थाश्रम में रहने वाले आचार्यों के अपने घर में अध्यापन करने के उल्लेख मिलते हैं ।[1] बृहदारण्यक[2], छान्दोग्य[3], मुण्डक[4] आदि उपनिषदों तथा रामायण[5] और मनुस्मृति[6] में भी अध्ययन–अध्यापन से सम्बन्धित आश्रम के उल्लेख प्राप्त होते हैं । आचार्यों के गृह[7], गुरुकुल[8], आश्रम[9] (ऋषि आश्रम) शिक्षा के केन्द्र थे । पशिचमोत्तर भारत में तक्षशिला प्रसिद्ध विद्यापीठ था । काशी और उज्जयिनी नगरों को प्रसिद्ध विद्या केन्द्र कहा गया है । काशी को "विद्या–सदन" ही कहा गया है ।

पवित्र तीर्थ और तीर्थायतन (मन्दिर) भी विद्या–केन्द्र थे । परन्तु ये विद्या केन्द्र आर्षमार्ग पर आधारित वेद–वेदांगों तथा आयुर्वेद और व्याकरण आदि विद्याओं के केन्द्र थे जो अधिकांशतः तपोवनों में स्थित थे ।

<u>बुद्ध द्वारा शिक्षा पर बल</u> :

बौद्ध साहित्य (पालि तथा संस्कृत) से भी शिक्षा–दीक्षा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है । जिससे पता चलता है कि समान्य शिक्षा के अतिरिक्त विशिष्ट शिक्षा भी दी जाती थी । बुद्ध चरित में कहा गया है कि सिद्धार्थ गौतम ने अल्पकाल में ही स्वकुलानुरूप समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं ।[10] संबोधि प्राप्त करने के पशचात् जब

---

1. महाभारत (गी० प्रे०) आदि पर्व, 3/81; व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को सम्पूर्ण वेद का अध्ययन कराया था ।
2. बृ० उप०, 3/6/1
3. छा० उप०, 8/15/1, 4/9/1; 2/23/6.
4. मु० उप०, 1/2/11–12.
5. वा० रा०, 2/54; 2/90/8
6. मनुस्मृति, 3/70.
7. ब्रह्माण्ड पु०, 3/35/13.
8. मत्स्य पु०, 2/5/58.
9. ब्रह्माण्ड पु०, 3/21/18–20.
10. बुद्धचरित, 2/24.

उन्होंने भिक्षुसंघ तथा उपासक संघ की स्थापना की उस समय उन्हें अध्यापन की आवश्यकता हुई । उन्होंने व्यवहारिक शिक्षा . मानव के लिये हितकर और सुखकर महावस्तु अवदान ओर ललितविस्तर[1] में शिल्प और लिपियों की तालिकाएँ प्राप्त होती हैं । यही नहीं बौद्ध ग्रन्थों से यह पता चलता है कि महामानव बुद्ध ने विविध लिपियों के अध्ययन पर बल दिया था जिनका विवरण बौद्ध साहित्य में स्पष्टतः प्राप्त होता है ।[2] शिष्टाचार की भी शिक्षा दी जाती थी ।[3]

भगवान् बुद्ध ने शिक्षा को मनुष्य के कल्याण के लिये आवश्यक बतलाया । साथ ही उन्होंने शिल्प पर विशेष बल दिया ।[4] बाल्यकाल में सिद्धार्थ ने स्वयं शिल्पों का शिक्षण–प्रशिक्षण विद्यालय में प्राप्त किया था जिसका प्रदर्शन उन्होंने गोपा–वरण स्वयंवर में किया था । अश्वघोष के ग्रन्थों से भी इसकी पुष्टि होती है ।[5] उल्लेखनीय है कि कपिलवस्तु के पास ही विश्वामित्र का आश्रम था तथा मगध में उद्दकाराम पुत्र तथा आलारकालाम के आश्रम थे जिनमें सिद्धार्थ ने स्वयं विद्या प्राप्त की थी ।

बौद्ध विहार अथवा शिक्षण केन्द्र का मूल्य :

पहले बौद्ध भिक्षु खुले आकाश के नीचे, वृक्षों के नीचे और गुफा–कन्दराओं में रहते थे । बाद में राजगृह के एक सेठ के प्रार्थना करने पर भिक्षुओं के ठहरने के लिये विहार निर्माण की अनुमति दी थी । पहले शिष्यों की संख्या कम थी अस्तु दिन भर शिक्षा ग्रहण करके रात्रि का समय वनों में वृक्षों के नीचे, पर्वत की पार्श्व भूमि में, गुफाओं में, श्मशान में, मैदान अथवा घास की राशि पर बिता देते थे । धर्म आचार्य शिष्य मण्डली भी उनके साथ चलती फिरती थी । जब

---

1. ललितविस्तर, पृ0 156.
2. वही, पृ0 125.
3. महावस्तु, जि0 3, पृ0 405.
4. महामंगल सूत्र, गाथा सं0 3.
5. बुद्ध चरित, 2/24.

शिष्यों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी तब सबको साथ लिए घूमना कठिन हो गया। अस्तु उनको निम्न पाँच प्रकार के भवनों में ठहरने की अनुमति दे दी गई –

"विहार

अड्ढयोग

पासाद (प्रसाद)

हम्मिय (हर्म्य) तथा

गुहा"

उक्त राजगृह के सेठ ने सबसे पहले 60 घर बनवा दिये। गौतम बुद्ध ने उसके दान का अनुमोदन करते हुए कहा कि –

"जो व्यक्ति संघ के लिए विहार का दान करता है वह भिक्षुओं को जाड़े गर्मी और वर्षा के प्राकृतिक प्रकोपों से बचाता है। मच्छरों और कीड़ों से उनकी रक्षा करता है तथा ऊष्ण वायु के झोकों से सुरक्षित रखता है। विहार भवन में शान्तिपूर्वक बैठकर भिक्षु समाधि लगा सकते हैं और चित्त को एकाग्र करके चिन्तन कर सकते हैं। बुद्धिमान पुरुष अपने कल्याण की भावना से मनोरम विहारों को बनवाएँ और वहाँ विद्वान मनीषियों को आश्रय दें। जिन लोगों का अन्तःकरण शुद्ध है उनके लिये प्रसन्न मन से भोजन, पेय, वस्त्र, आवास आदि का दान देना चाहिये। ऐसे लोग उपकृत होकर सत्पथ की शिक्षा देगें ओर जीवन मार्ग प्रदशन करेंगे। विद्या (सत्य) सब प्रकार के अज्ञान उन्मूलित करती है। सत्य को जानकर मानव पाप नहीं कर सकता।"[1]

गौतम बुद्ध के इस उपदेश से बौद्ध धर्म एवं बौद्ध संस्कृति के प्रति लोगों में असीम उत्साह बढ़ा जिसके परिणामस्वरूप लोगों ने भगवान बुद्ध के जीवन काल में ही विहार बनवाना आरम्भ कर दिया था। ये विहार ही बौद्ध शिक्षा के प्रारम्भिक केन्द्र थे।

---

1. चुल्लवग्ग, 6/1/5.

<u>बुद्ध क्षेत्र</u> :

बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार होने तथा बौद्ध संघ की स्थापना और संघाराम, विहार तथा चैत्य आदि के निर्माण से विविध स्थान बौद्ध धर्म के केन्द्र बन गये जिन्हें बुद्ध क्षेत्र कहते थे ।

डॉ0 ए0 एस0 अल्तेकर का विचार है कि हिन्दुओं तथा बौद्धों की शिक्षा–पद्धति में कोई सैद्धान्तिक महत्वपूर्ण भेद न था । दोनों ही पद्धतियों की कार्य प्रणाली समान थी [1] और धार्मिक केन्द्र ही उनकी शिक्षा और प्रशिक्षण के केन्द्र थे ।

बुद्ध का आदेश था कि प्रत्येक नवागन्तुक (उपासक) या भिक्षु, धर्म के नियमों तथा शील–आचार के गुणों को ठीक–ठीक समझें इसलिये पहले इन्हीं शिक्षाओं पर ध्यान दिया गया । कालान्तर में बौद्ध विहारों और मठों (संघारामों) में बौद्ध शिक्षा (धम्म विनय) की शिक्षा दी जाने लगी । धीरे–धीरे बौद्ध धर्म की उन्नति होती गयी और विहारों, मठों तथा स्तूपों का निर्माण होता रहा । वे विहार ही बौद्ध केन्द्र हो गये और महाविहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप ले लिया ।

राजगृह (मगध), वैशाली (वज्जि जनपद), श्रावस्ती, सारनाथ, मथुरा, कौशाम्बी, कपिलवस्तु, काशी, साँची आदि प्रसिद्ध बुद्ध क्षेत्र बन गये । यहाँ धर्म और भाषा (मागधी) की ही शिक्षा दी जाने लगी । इसके बाद ही व्याकरण पर भी ध्यान गया होगा ।

<u>पूर्व गुप्त शिक्षण</u> :

अशोक के पूर्व बौद्ध शिक्षा केन्द्रों के किसी प्रथक अस्तित्व का साक्ष्य नहीं मिलता है । उस समय के प्रसिद्ध नगरों, राजगृह, वैशाली, श्रावस्ती, कौसाम्बी, मथुरा तथा सारनाथ आदि में जो बौद्ध विहार थे वहाँ भिक्षुगण तथा अर्हत, धर्म (धम्म) और नियम के सूत्रों का ही मनन, स्मरण और चिन्तन करते रहते थे तथा नवागन्तुक

---

1. एजू0 ऐं0 इं, पृ0 227.

भिक्षुओं को धम्म और विनय से सम्बन्धित नियमों को मौखिक रूप से याद कराया जाता था । मगध और कौशल के भूभाग ऐसे शिक्षण कार्यों के लिये प्रसिद्ध थे ।

अशोक के समय प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन हुआ । इस युग में मागध संघ का मुख्य अधिष्ठान राजगृह था । इसके अतिरिक्त साँची (काकनाद बोट महाविहार), उज्जयिनी, काशी (सारनाथ), मथुरा, कपिलवस्तु और श्रावस्ती तथा कौसाम्बी तक्षशिला एवं दक्षिणापथ में सुवर्णगिरि, कलिंग में तोषाली (धौली) और समापा, सोराष्ट्र में गिरिनार (गिरिनगर), जूनागढ़ और हिमवन्त क्षेत्र में कालसी प्रसिद्ध बौद्ध धर्म और विद्या के केन्द्र स्थापित हुये थे । इसके अतिरिक्त काश्मीर के भी बौद्ध विहारों में बौद्ध विद्या और धर्म का अध्ययन और अध्यापन होता था । पूर्वी समुद्र तट पर ताम्रलिप्ति भी प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था ।

बौद्ध धर्म और बौद्ध विद्याध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में देवपुत्रों (कुषाणों) का युग अत्यन्त महत्वपूर्ण था । इस युग में पाटलिपुत्र के अतिरिक्त सारनाथ, मथुरा, शाकल, तक्षशिला, बामियान, तथा काश्मीर अति प्रसिद्ध बौद्ध विद्या के केन्द्र थे जहाँ महायान बौद्ध साहित्य का अध्ययन होता था । इस युग की विशेषता यही थी कि कुषाण साम्राज्य के साथ बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार मध्य एशिया के भूभाग में ही फैल गया ।

बौद्ध धर्म और संस्कृति के विकास में गुप्त शासकों का भी विशेष महत्व रहा है । इसी युग में भगवान बुद्ध की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति सारनाथ और मथुरा कला केन्द्रों में बनी । चीनी यात्री फाहियान उत्कृष्ट बौद्ध धर्म और दर्शन के अध्ययन के लिये भारत आया था और उसने बौद्ध केन्द्रों को उन्नत अवस्था में पाया था ।

फाहियान ने भारत के विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण करके वहाँ के विहारों का सजीव वर्णन किया है । उसके अनुसार सुवास्तु प्रदेश (स्वात) के उद्यान जनपद में पाँच सौ संघाराम थे । पेशावर (पुरुषपुर) जनपद के संघाराम में सात सौ भिक्षु रहते थे । आधुनिक काबुल के लोइ प्रदेश में तीन हजार भिक्षुओं के रहने तथा अध्ययन करने का प्रबन्ध था । पोना (आधुनिक बन्नू) में भी तीन हजार भिक्षु रहते थे और

अध्ययन करते थे । पंजाब प्रदेश को पार करते हुये फाहियान को अनेक विहार मिले और उसका अनुमान था कि इन विहारों में लाखों भिक्षु रहते थे । मथुरा के आस-पास के बीस विहारों में तीन हजार से अधिक भिक्षु उसने देखे थे । फाहियान के अनुसार भारत के सभी जनपदों के राजाओं और सेठों ने भिक्षुओं के लिये विहार बनवाये और उनसे सम्बन्धित खेत, घर, वन, आराम, कुएँ और पशु दान कर दिये । परवर्ती राजा भी इस दान को अक्षुण्ण रखते थे । विहारों में संघ को पेय, वस्त्र आदि मिलते थे और वर्षावास करने वालों को सभी सुविधायें प्रदान की जाती थीं । संकाश्य के बौद्ध विहार में चार हजार श्रमण रहते थे । उन सबको संघ के भण्डार से भोजन मिलता था । ये आधुनिक छात्रावासों का बोध कराते हैं ।

ह्वेन्सांग और दिवाकर मित्र :

बाण कृत हर्षचरित में वर्णित बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र का आश्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण विद्याराम था । महाराजा हर्ष अपनी बहन राज्यश्री को खोजते हुये विन्ध्यवन (विन्ध्याटवी) में जा पहुँचे थे जहाँ हर्ष का विद्वानों के साथ सम्पर्क हुआ जिनमें बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र प्रमुख विद्वान थे । शबर बालक तथा व्याघ्रकेतु भी यहाँ रहते थे और बौद्ध विद्या तथा अन्य विद्याओं का शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करते थे । वे अरण्यवासी भिक्षावृत्ति से अपना निर्वाह करते थे ओर अपने अनेक शिष्यों के साथ रहते थे । दिवाकर मित्र कन्नौज के राजा गृहवर्मा के मित्र थे तथा काषाय वस्त्र धारण किये हुये थे । स्पष्टतः वे बौद्ध भिक्षु और आचार्य थे । बाण ने इस अरण्याराम का सुन्दर वर्णन किया है । उसके अनुसार - "यह रमणीय स्थान वृक्षों, लताओं तथा फल-फूलों से सुशोभित नदी के तट पर स्थित था । भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों से भी भरा हुआ था । वन्य हाथियों के झुंड घूमा करते थे । बौद्ध चिन्तकों की कुटियायें थीं और कुटियाओं के समीप स्तूप या चैत्य बने हुये थे । यहाँ नाना देशों से आये हुये वीतराग यती भी रहते थे । भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों-अर्हत, जैन, भागवत, पौराणिक, आदि के साधक साधनायें करते थे ।[1]

---

1. ह0 च0, अष्टम उच्छ्वास, पृ0 413-425.

ह्वेनसांग :

ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से भी बौद्ध शिक्षा प्रणाली तथा बौद्ध शिक्षा केन्द्रों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है । यह यात्री हर्ष के समय भारत आया था । उसके विवरण से भी यही सिद्ध होता है कि बौद्ध मठ, संघाराम, महाविहार ही शिक्षा के केन्द्र थे । वे आधुनिक दृष्टिकोण से तत्कालीन विश्वविद्यालय थे जहाँ विश्व के बौद्ध देशों से विद्वान आकर विद्याध्ययन करते थे ।

इन्हीं विहारों में बौद्ध संघ के उदीयमान और मेधावी शिष्यों को सभी प्राकर से उच्चकोटि की शिक्षा और विद्याओं में परिपक्व बनाया जाता था जिससे वे धर्म और संघ के माध्यम से मानव समाज की सेवा कर सकें । अश्वघोष और बुद्धघोष ऐसे ही मेधावी शिष्य थे जिनके अनेक गुरुओं ने पूर्ण विद्वान बना दिया था । ह्वेनसांग ने स्वयं कई विहारों में कुछ समय तक रुक कर वहाँ के प्रकाण्ड विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की थी ।

काश्मीर, जालंधर, कन्नौज (कान्यकुब्ज)आदि नगरों के ऐसे प्रसिद्ध विहार थे जहाँ ह्वेनसांग ने विद्याध्ययन किया था ।[1] मातीपुर (मण्डावर) स्थान के एक मठ (संघाराम) में चार मास तक ठहर कर वहाँ के प्रधान मित्रसेन से "ज्ञान–प्रस्थान शास्त्र" का अध्ययन किया था ।[2] कान्यकुब्ज के "भद्र विहार" में उसने तीन महीने रुककर पिटकों के आचार्य वीरसेन से शिक्षा प्राप्त की थी ।[3] विहार प्रदेश के हिरण्य पर्वत अर्थात् मुंगेर के एक मठ (महाविहार) में कई वर्षों तक ठहरा था । वहाँ उसने विभाषा तथा वसुबन्धु के मित्र संघभद्र द्वारा रचित न्यायानुसार शास्त्र पढ़ा था ।[4]

---

1. ह्वेनसांग की जीवनी, पृ0 70–76
2. वही, पृ0 81.
3. वही, पृ0 84.
4. वही, पृ0 86.

प्रवेश विधि :

नालन्दा महाविहार के व्याख्यान मण्डलों में प्रवेश के निवास के नियम बड़े ही कठिन थे । महाविहार के द्वार पर द्वारपालों (पण्डितों) की नियुक्ति की गयी थी जो विभिन्न विषयों में पारंगत होते थे । द्वारपाल विद्यार्थियों से दार्शनिक तथा जटिल समस्याओं पर कड़े प्रश्न पूछते थे जिनका सन्तोषप्रद उत्तर देने पर ही विद्यार्थी को प्रवेश की अनुमति दी जाती थी । इस परीक्षा में 20% (बीस प्रतिशत) विद्यार्थी ही बड़ी कठिनाई से सफल हो पाते थे ।[1]

विद्यार्थियों के गुण एवं विद्यालय में प्रवेश की योगयता

प्राचीन भारत में सदाचार पर बड़ा बल दिया जाता था । विद्यार्थी के लिये सदाचारी होना आवश्यक माना जाता था । बौद्ध भिक्षुओं के लिय शीलाचरण एक संकल्प ही था ।[2] भिक्षुओं का, उच्चतर शिक्षण देने के लिये जो उपसम्पदा संस्कार होता था, उसके पहले ही संघ के सभी निवासियों का मत लिया जाता था । यदि संघ पक्ष में नहीं होता था तो उपसम्पदा नहीं हो सकती थी ।[3]

संघ में विद्याध्ययन करने के लिये प्रवेश पाने वाले भिक्षुओं के लिये रोगमुक्त होना, ऋण के भार से मुक्त होना, राजा की सेवा में न होना, माता-पिता की अनुमति प्राप्त होना, अवस्था का कम से कम 20 वर्ष का होना, आवश्यक अर्हताएँ थीं ।[4]

बौद्ध विद्यालयों में प्रवेश परीक्षा कठिन थी । नालन्दा महाविहार में प्रवेश पाने के लिये द्वार पण्डितों द्वारा ली हुई परीक्षा में 100 विद्यार्थियों में से मुश्किल से 10-15 विद्यार्थी ही सफल हो पाते थे । विक्रमशिला महाविहार में छः प्रकाण्ड द्वार पण्डित प्रवेश परीक्षा के लिए द्वारों पर प्रतिष्ठित थे । उनकी परीक्षा में सफल होने पर ही विहार के अन्दर जा सकते थे ।[5]

---

1. वाट्र्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 165.
2. उपाहन जातक, पृ0 231.
3. चुल्लवग्ग, 9/1/4.
4. वही, 10/17/2.
5. वाट्र्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 165.

पाठ्य विषय एवं शिक्षण प्रणाली :

इस महाविहार में विविध विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती थी । पाठ्य विषयों में महायान मत तथा बौद्ध धर्म के अट्ठारह ग्रन्थ सम्मिलित थे । इसके अतिरिक्त वेद, हेतु विद्या, शब्द विद्या, योगशास्त्र, चिकित्सा विद्या, तान्त्रिक ग्रन्थों, सांख्य दर्शन और अन्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी ।

शिक्षा का माध्यम व्याख्यान थे । उच्चकोटि के प्रसिद्ध विद्वान भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यान देते थे । ऐसे सैकड़ों व्याख्यान प्रत्येक दिन दिये जाते थे । प्रत्येक विद्यार्थी इन व्याख्यानों को सुनने के लिये तत्पर एवं उत्सुक रहता था । प्रत्येक विद्यार्थी की उपस्थिति नितांत अनिवार्य थी । व्याख्यान मण्डलों के अतिरिक्त शिक्षा का एक अन्य ढंग भी था जिसे औपध्यापिक शिक्षा (वह शिक्षा जिसे शिष्य गुरु की सेवा द्वारा प्राप्त करता था) कहा गया है ।[1]

गुरु–शिष्य सम्बन्ध :

जो नवागंतुक संघ का सदस्य बनता था उसे पहले एक उपाध्याय के सुपुर्द कर दिया जाता था । उसकी सेवा में वह विद्या विद्यार्थी समर्पित रहता था । उपाध्याय उस शिष्य को अपने पुत्र की भाँति मानता था और उसे त्रिपिटक अथवा अन्य किसी विषय का पाठ देता था । विद्यार्थी अपने आचार्य या उपाध्याय की श्रद्धा के साथ सेवा करता था और इसके बदले आचार्य केवल उसकी समुचित शिक्षा ही नहीं बल्कि उसे नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा भी देता था । गुरु–शिष्य के मध्य पिता–पुत्रवत् सम्बन्ध तो होते ही थे साथ ही उत्तरदायित्व और कर्तव्यनिष्ठा के अतिरिक्त सिद्धान्त भी प्रगाढ़ थे ।[2]

---

1. समद्दर, ग्लोरीज़ ऑफ मगध, पृ0 138.
2. इत्सिंग, रिकार्ड ऑफ बुद्धिष्ट रिलीजन, अ0 25, पृ0 116.

इस महाविहार में एक हजार ऐसे व्यक्ति थे जो पूरे सूत्रों और शास्त्रों के बीस संग्रहों का अर्थ समझा सकते थे । पांच सौ व्यक्ति ऐसे थे जो तीस संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे । इन सबमें शीलभद्र सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे जो इस महाविहार के अध्यक्ष थे ।[1] सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग भारत आया था उस समय भी शीलभद्र इस महाविहार के अध्यक्ष थे । उन्हें समस्त सूत्रों एवं शास्त्रों के संग्रह कंठस्थ थे ।[2] उनके पहले धर्मपाल यहाँ के अध्यक्ष थे जो शीलभद्र के गुरु थे ।[3] शीलभद्र महान ग्रन्थकार थे । उन्होंने बौद्ध दर्शन विशेषतः योगाचार्य की व्याख्यात्मक टीकाएँ लिखी थीं ।[4]

प्रमुख बौद्ध विद्या–केन्द्र

गुप्त शासकों के बाद भारत में बौद्ध शिक्षा के केन्द्र भारत के विभिन्न भूभागों में स्थित प्राप्त होते हैं । समग्र रूप से उन सभी प्रमुख विद्या–केन्द्रों को देखने से पता चलता है कि शिक्षा के क्षेत्र में और विशेषकर बौद्ध विद्या के लिये बिहार प्रदेश का भूभाग सर्वाधिक उल्लेखनीय है । इसी प्रकार पश्चिम में वलभी, दक्षिण में कांजीवरम्, उत्तर में श्रावस्ती प्रसिद्ध विद्या केन्द्र (महाविहार) थे । यहाँ उस युग के प्रमुख बौद्ध विद्या केन्द्रों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।

नालन्दा :

तत्कालीन बौद्ध जगत में अति प्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय एक विशेष विद्या का केन्द्र था जिसकी ख्याति चारों ओर फैली हुई थी । यहाँ पर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की संख्या बहुत अधिक थी । उनकी महानता और विद्वता भी विशेष रूप से

---

1. बील, ह्वेनसांग की जीवनी, पृ0 112.
2. वाटर्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 165.
3. वही
4. वही
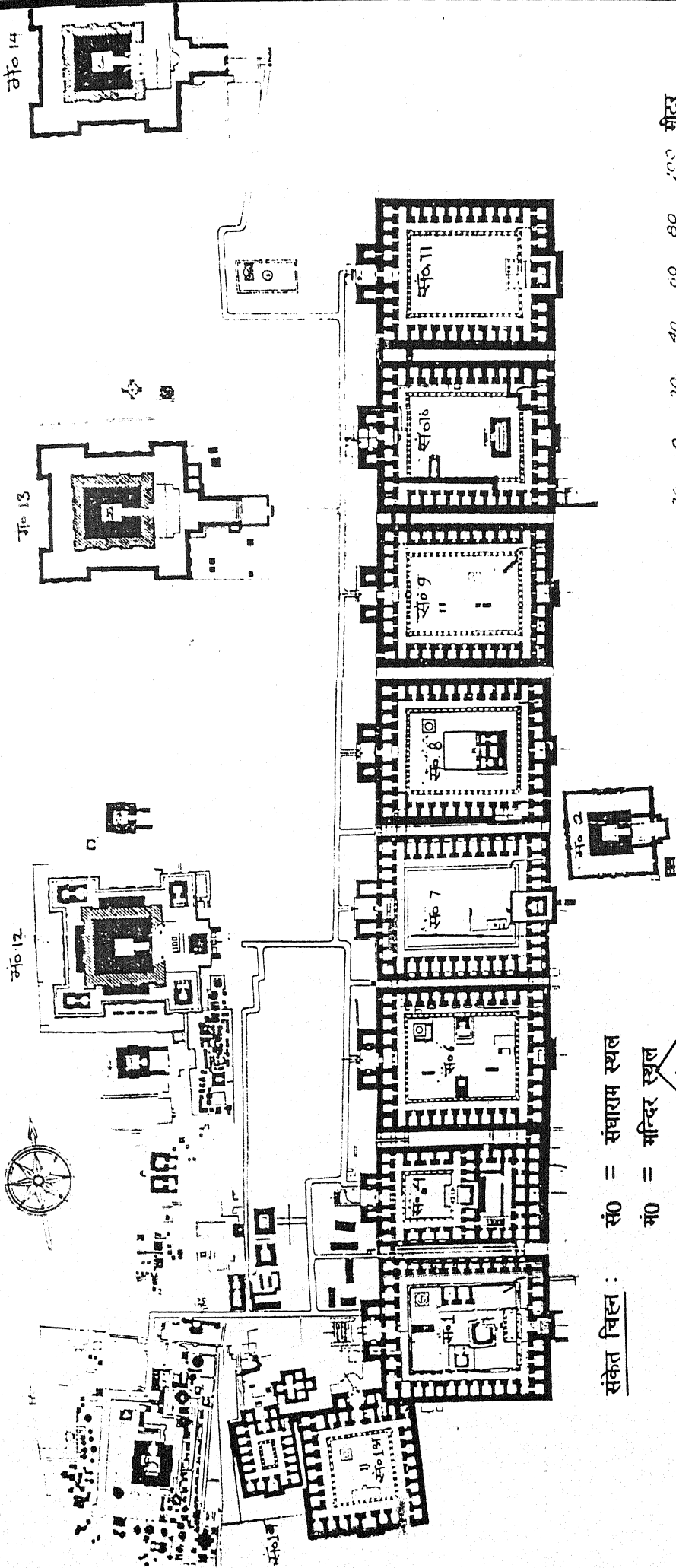
नालन्दा महाविहार

।भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रकाशित "नालन्दा" से साभार।
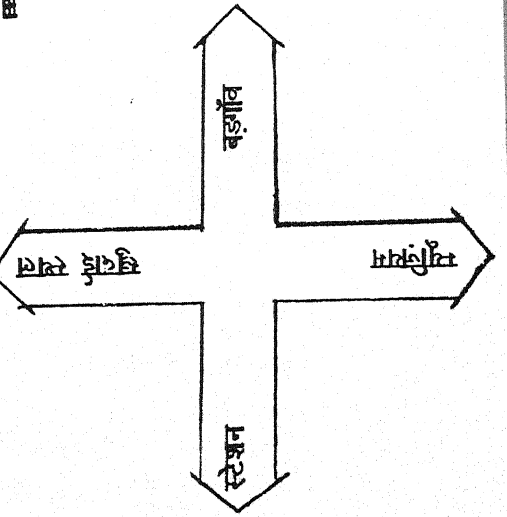
प्रसिद्ध थी । यहाँ के विशाल प्रसाद रूप विद्याभवन एवं बड़े–बड़े कक्षों में भिन्न–भिन्न विषयों–धर्म, दर्शन, भाषा साहित्य का अध्ययन होता था । नालन्दा की ख्याति इतनी अधिक थी कि यहाँ के विद्यार्थी और आचार्य सभी जगह आदर की दृष्टि से देखे जाते थे ।

विद्या केन्द्र के रूप में विकसित होने के पूर्व नालन्दा एक साधारण ग्राम मात्र था जो पटना जिले (बिहार प्रदेश) से 50 मील दक्षिण–पूर्व स्थित है । यह सारिपुत्र की जन्मस्थली थी । इस कारण से यह ग्राम भी उतना ही प्रसिद्ध हो गया जितना कि बौद्ध धर्म के इतिहास में सारिपुत्र का नाम, व्यक्तित्व और कृतित्व प्रसिद्ध है ।

यद्यपि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक ने यहाँ पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था ।[1] तथापि इसकी उन्नति, विस्तार और गरिमा का का प्रारम्भ लगभग 450 ई0 से ही होता है । बौद्धाचार्य नागार्जुन ने नालन्दा महाविहार में प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् राहुलभद्र का शिष्यत्व स्वीकार कर सभी शास्त्रों और विद्याओं का अध्ययन किया था ।[2] कुछ समय तक असंग भी यहाँ के आचार्य रहे थे ।[3]

नालन्दा महाविहार की विशेष उन्नति गुप्त युग से प्राप्त होती है । शक्रादित्य (सम्भवतः कुमार गुप्त) के शासनकाल (410 ई0 से 455 ई0 तक) में नालन्दा महाविहार के विकास की नींव डाली गयी थी और मठों, महाविहारों तथा संघारामों का निर्माण किया था ।

शक्रादित्य के पौत्र (पुरुगुप्त के पुत्र) बुद्धगुप्त ने इस विहार के दक्षिण की ओर और तथागत गुप्त ने बुद्ध गुप्त के द्वारा बनवाये विहार के पूर्व में विहार स्थापित

---

1. लेग्गे, फाह्यान, पृ0 557.
2. डी0 के0 बरुआ, वि0 ऐ0 इं0, पृ0 139.
3. वही

करवाया । बालादित्य ने गौतम बुद्ध की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने के लिये तीन सौ फीट ऊँचा मन्दिर बनवाया था । विहार के बाहर इस मन्दिर से लगभग 200 फीट पूर्व की ओर पूर्णवर्मा द्वारा बनवाया छः तला मन्दिर था जिसमें 80 फीट ऊँची ताँबे की बनी हुई गौतम बुद्ध की मूर्ति स्थापित थी । वज्र ने बालादित्य विहार के पश्चिम में एक विहार बनवाया था । इस प्रकार इस युग में पाँच विहारों का निर्माण हुआ था ।[1]

सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया । उसने अपने यात्रा विवरण में नालन्दा के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है कि नालन्दा क्षेत्र को पाँच सौ सेठों ने दस करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से क्रय करके गौतम बुद्ध को समर्पित किया था । चीनी यात्री भी यह मानता है कि नालन्दा की स्थापना शक्रादित्य नामक राजा द्वारा की गयी थी ।[2] हर्ष ने भी यहाँ पर एक संघाराम का निर्माण करवाया था जिसमें चालीस भिक्षुओं के दैनिक जीवन की व्यवस्था की गयी थी ।[3]

नालन्दा महाविहार के सघन कुंजों और उपवनों में ह्वेनसांग ने भ्रमण किया था । मनोरम जलाशयों के रुचिर जल में नील पद्म अपनी पंखुड़ियों का विकास करते थे । विद्यालय की शोभा कनक वृक्षों से विशेष मनोरम प्रतीत होती थी । इनके रक्तिम कुसमों के गुच्छे चित्ताकर्षक थे । विद्यालय के समीप दस स्नानागार बने हुए थे । नहाने के समय घण्टा बजता था ।[4] पर्वतों के समान ऊँचे विद्यालय की खिड़कियों से लोग वायु और बादलों के परिवर्तन का अनुमान कर लेते थे । यहीं से सूर्य और चन्द्र दिखायी पड़ते थे । बाह्य मन्दिर के चार विभाग हैं । यहाँ का सबसे बड़ा विहार दौ सौ तीन फीट लम्बा एक सौ चौंसठ फीट चौड़ा था जिसमें साढ़े नौ फीट से बारह फीट तक लम्बे कक्ष थे । विद्यालय भवन में व्याख्यान के लिये सात विशाल कक्ष तथा तीन

---

1. डी० के० बरुआ, वि० ए० इं०, पृ० 139–140.
2. वाटर्स, आ० यु० ट्रै० इं०, भाग 2. पृ० 164.
3. वही, पृ० 170.
4. वही, पृ० 166.

सौ छोटे–बड़े कक्ष थे । विद्यार्थी छात्रावास में रहते थे तथा प्रत्येक कोने पर कूपों का निर्माण किया गया था । सोने के लिए प्रत्येक कोठरी में चबूतरा बना हुआ था । प्रदीप तथा पुस्तकें रखने के लिए समुचित स्थान बनाये गये थे ।[1]

सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (672 ई0) में एक अन्य चीनी यात्री इत्सिंग भारत की यात्रा पर आया था । उसने भी नालन्दा महाविद्यालय में अध्ययन किया था । उसका नालन्दा महाविहार का वर्णन अधिक विस्तृत है । यहाँ का विशाल और समृद्ध पुस्तकालय विश्व प्रसिद्ध था । यह ग्रन्थागार तीन भागों में विभाजित था । जहाँ तीनों पिटकों से सम्बन्धित साहित्य संग्रहीत था ।

विक्रमशिला विद्यापीठ :

गुप्तकाल के पश्चात् बौद्ध विद्या केन्द्रों में पश्चिम बंगाल में विक्रमशिला महाविहार भी बहुत प्रसिद्ध था । यह महाविहार पाल राजवंश की धर्मरति तथा धर्मसंरक्षण का प्रतिफल था । जब नालन्दा की युवावस्था ढ़लने लगी थी तभी इस प्रसिद्ध बौद्ध विद्या केन्द्र की स्थापना हुई थी । इसे विक्रमशील (धर्मपाल) ने स्थापित करवाया था । तिब्बत के लोग आज भी इसे विक्रमशील ही कहते हैं । इसका नाम श्रीमद् विक्रमशील–देन–महाविहार था । यह चारों दिशाओं में प्रसिद्ध महाविहार बौद्ध विद्या और दर्शन का प्रसिद्ध केन्द्र था जो मगध के उत्तर में गंगा नदी के दाहिने तट पर स्थित था । सुल्तानपुर के निकट पथरघाट के पास भागलपुर जिले में इसका मूल अधिष्ठान था । केन्द्र स्थल पर महाबोधि की मूर्ति स्थापित थी । मन्दिर की भित्तियों पर महाबोधि के दृश्यों का तक्षण किया गया था । अन्य छोटे–बड़े मन्दिरों की संख्या एक सौ से ऊपर थी । यहाँ पर अनेकानेक विद्वान् थे जिन्होंने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की थी । उनमें रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, रत्नाकरशान्ति, ज्ञान श्रीमित्र, रत्नवज्र, दीपंकर और अभयंकर आदि प्रसिद्ध थे । दीपंकर नामक विद्वान् भिक्षु ने लगभग दो सौ ग्रन्थों की रचना की थी । उनका जन्म गौड़ देश (बंगाल) में हुआ था ।[2]

---

1. वाट्र्स, आ0 यु0 ट्रै0 इं0, भाग 2, पृ0 180.
2. इण्डियन टीचर्स ऑफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज़, पृ0 30.

धर्मपाल ने यहाँ 108 आचार्यों की नियुक्ति की थी और साथ ही सुव्यवस्था के लिये अन्य अधिकारियों का भी चुनाव किया था। महाविहार की भित्तियों और द्वारों पर संस्था के सर्वोच्च विद्वानों और आचार्यों के चित्र बने हुये थे। जिनमें दीपंकर सर्वोपरि थे। शनैः शनैः छः महाविद्यालयों का निर्माण हुआ और उनके मध्य में एक विशाल शाला बनायी गयी थी जिसमें छः द्वार छः महाविद्यालयों की ओर थे।

विक्रमशिला विद्यालय में प्रवेश पाने के लिये छः द्वार पण्डितों के द्वारा उत्तीर्ण होकर उनकी अनुमति लेना आवश्यक था। दशवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में प्रथम द्वार पर कश्मीर के रत्नवज्र, द्वितीय द्वार पर गौण देश के ज्ञानश्रीमित्र बैठते थे और अन्य चार द्वारों पर रत्नाकर शान्ति, वागीश्वर कीर्ति, नरोप और प्रज्ञाकर–मति नामक आचार्य आसन ग्रहण करते थे। यहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों की सुविधा के लिये पुस्तकें भी उपलब्ध की जाती थीं तथा उनकी जिज्ञासाओं का समाधान आचार्यों द्वारा किया जाता था। देश के ही नहीं बल्कि विदेशों से भी छात्र यहाँ अध्ययन के लिये आते थे। जिनमें तिब्बत के छात्र अधिक होते थे जो बौद्ध धर्म और दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यहाँ रहते थे। प्रायः एक छात्रावास तिब्बत के छात्रों से ही भरा रहता था। शिक्षा प्राप्ति के बाद विद्यार्थियों को उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं जो उनके विषय की दक्षता का प्रमाण मानी जाती थीं।[1]

विक्रमशिला महाविहार को तान्त्रिक बौद्ध शास्त्रों के अध्ययन–अध्यापन का विशेष केन्द्र माना जाता था। यहाँ के आचार्यों ने तिब्बत में बौद्ध धर्म विद्या और दर्शन तथा तन्त्र विद्या का प्रचार किया था। इस विश्वविद्यालय का समस्त व्यय–भार श्रद्धावत दानदाता वहन करते थे। आवास और भोजन का प्रबन्ध विश्वविद्यालय की ओर से किया जाता था। भिक्षु अध्यापक प्रबन्ध में हाथ बंटाते थे। छः द्वार पण्डितों

---

1. इण्डियन टीचर्स ऑफ बुद्धिष्ट यूनिवर्सिटीज़, पृ0 47.

की समिति द्वारा इसका संचालन होता था जिसका प्रधान महास्थविर होता था ।[1]

ज्येष्ठ धर्म स्वामी लामा ने (1153–1216 ई0) तथा कश्मीरी विद्वान् शाक्य श्रीभद्र (1145–1225 ई0) ने विक्रमशिला महाविहार को प्रसिद्ध विद्या केन्द्र के रूप में देखा था ।[2] लेकिन लामाधर्मस्वामी जब 1235 ई0 में नालन्दा आये थे उस समय उन्होंने विक्रमशिला महाविहार को नहीं पाया । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि 1225 ई0 से 1235 ई0 के मध्य मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इस बौद्ध विद्या केन्द्र को नष्ट कर दिया था । उसके शिलान्यास पट्टिका को उठाकर गंगा में फेंक दिया था ।[3]

इस प्रकार कई सौ वर्षों तक विक्रमशिला महाविहार भारत के विभिन्न भूभागों में ही नहीं भारतेत्तर देशों में भी अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान प्रकाश प्रकीर्ण करता रहा लेकिन जिस प्रकार अन्य विद्या केन्द्र आक्रमणकारियों द्वारा विनष्ट कर दिये गये उसी प्रकार विक्रमशिला महाविहार को भी बख्तियार खिलजी ने तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जलाकर नष्ट कर दिया ।

कहा जाता है कि उसने महाविहार के भवन को दुर्ग समझकर आग लगा दी और बौद्ध भिक्षुओं को सैनिक समझकर कत्ल कर दिया । यह आश्चर्यजनक बात ही है कि उसने (आक्रमणकारी ने) इसके पहले बौद्ध विहार और बौद्ध भिक्षुओं को देखकर भी सत्य को नहीं जाना । यह असम्भव नहीं कि बौद्ध धर्म और दर्शन के विरोधी विद्वेषी तत्वों ने उसका विनाशकारी मार्ग प्रशस्त किया हो ।

---

1. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, ए0 एस0 अल्टेकर, पृ0 99
2. डॉ0 सुकुमार दत्त, बु0 मा0 ए0 मो0 आ0 इण्डिया, पृ0 359.
3. वही, पृ0 359.

ओदन्तपुरी (महाविहार) विद्या केन्द्र :

नालन्दा महाविहार के अवनतिकाल में बंगाल के पाल शासक गोपाल (या लोकपाल), जो 730 ई0 में राजा हुआ था ने ओदन्तपुरी महाविहार की स्थापना की थी।[1] डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार इसकी स्थापना का श्रेय धर्मपाल को देते हैं ।[2]

यह बौद्ध विद्या केन्द्र पटना जिले में बिहार शरीफ के निकट स्थित था जो नालन्दा क्षेत्र से केवल 10 किलोमीटर दूरी पर स्थित था ।[3] यहाँ बौद्ध और ब्राह्मण ग्रन्थों का विशाल भण्डार था । गोपाल से लेकर देवपाल तक के सभी पाल शासकों ने इसकी वृद्धि की थी । रचना की दृष्टि से यह विहार इतना उत्कृष्ट था कि विदेशियों ने भी इसका अनुकरण किया । तिब्बत में 749 ई0 में "अचिन्त्य विहार" का निर्माण ओदन्तपुरी विहार के नमूने पर ही करवाया गया था । डॉ0 एस0 के0 डे तिब्बत के इस प्रथम विहार का नाम "समयेविहार" मानते हैं ।[4]

ओदन्तपुरी महाविहार में अतिश दीपंकर श्री ज्ञान अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । ये महान दार्शनिक थे । इनके अतिरिक्त शीलरक्षित, चन्द्रकीर्ति और धर्मरक्षित जैसे बौद्ध विद्वान इस महाविहार के आचार्य रहे थे ।[5]

बख्तियार खिलजी ने (लगभग 1190 ई0) अन्य महाविहारों और बौद्ध केन्द्रों की भांति इसे भी जलाकर नष्ट कर दिया ।

सोमपुर महाविहार :

सोमपुर महाविहार भी पाल युग का बंगाल का सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्या केन्द्र था । इसकी पहचान पहाड़पुर से की जाती है ।[6] सोमपुर महाविहार, नालन्दा

---

1. डा0 सुकुमार दत्त, बु0 मा0 ए0 मो0 आ0 इण्डिया, पृ0 354.
2. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 115.
3. वही, पृ0 417.
4. वही, पृ0 333.
5. इण्डियन टीचर्स ऑफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज़, पृ0 30.
6. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 417.

महाविहार के आदर्शों पर चल रहा था । दोनों महाविहारों के स्थापत्य में साम्य था । नालन्दा के अनुरूप ही सोमपुर से भी एक टेराकोटा अभिलेख प्राप्त हुआ है । जिससे पता चलता है कि इसकी स्थापना धर्मपाल के पुत्र तथा उत्तराधिकारी देवपाल (810 ई0 से 850 ई0) ने करवायी थी ।[1]

जगद्दल विद्यापीठ :

पाल युगीन बौद्ध विद्या केन्द्रों में जगद्दल महाविहार का नाम भी उल्लेख-नीय है । यह तान्त्रिक बौद्ध विद्या का केन्द्र था ।[2] इसकी स्थापना पाल शासक रामपाल (1077–1120 ई0 तक) ने करवायी थी । उस समय के पाल दरबार के प्रसिद्ध कवि सन्ध्याकरनन्दिन ने जगद्दल महाविहार का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है । जब विक्रमशिला और ओदन्तपुरी विद्या केन्द्र नष्ट किये जा चुके थे तब जगद्दल बौद्ध केन्द्र जीवन्त विद्या केन्द्र था जो उत्तरी बंगाल में स्थापित था । इस भूभाग को प्राचीन काल में वरेन्द्र या वरेन्द्री कहते थे । इसी भूभाग में रामपाल ने अपनी राजधानी रामावती स्थापित की थी । कदाचित् यह विद्या केन्द्र राजधानी में अथवा उसके आस-पास ही रहा होगा ।

तिब्बती बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि विभूतिचन्द्र दानशील, मोक्षाकर गुप्त और शुभाकर गुप्त जगद्दल बौद्ध महाविहार के प्रतिष्ठित आचार्य थे । यह विद्यापीठ अवलोकितेश्वर को समर्पित था ।[3]

नागार्जुन महाविहार और अमरावती :

आन्ध्र प्रदेश के नागार्जुन कोण्डा में प्राचीन भारत का प्रसिद्ध बौद्ध विद्या केन्द्र था । शून्यवाद के संस्थापक बौद्धाचार्य नागार्जुन भारत के सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्र

---

1. डॉ0 सुकुमार दत्त, बु0 मो0 ए0 मो0 आ0 इण्डिया, पृ0 374.
2. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 326.
3. वही, पृ0 337, 418.

वेत्ता थे जिन्होंने पत्थर से सोना बनाया था । पहले नागार्जुन अमरावती विहार में रहते थे बाद में नागार्जुनी कोण्डा चले आये और यहीं श्री पर्वत पर अपना विद्या केन्द्र स्थापित किया । विन्ध्य पर्वत के उस पार का यह विशाल महाविहार था जिसमें 27 विहारों और 20 स्तूपों के अवशेष उत्खनन से प्राप्त हुए हैं । इनमें से महान स्तूप को "महाचेतिय" कहा जाता था जिसमें भगवान के पवित्र धातु सन्निहित थे (धातुवरपरिगहिता) । यहाँ एक भिक्षुणी विहार भी था । चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी श्रीपर्वत के विद्या केन्द्र का विस्तृत वर्णन किया है ।[1]

अमरावती विहार का प्राचीन नाम धान्यकटक था जैसा कि अभिलेखों से स्पष्ट है ।

कांजीवरम् :

कांजीवरम् दक्षिण भारत का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था । गुप्त काल में इस महाविहार में भदन्त ज्योतिपाल प्रसिद्ध आचार्य थे जिनके पास रहकर कुछ समय तक आचार्य बुद्धघोष ने शिक्षा ग्रहण की थी और बाद में उन्हीं के अनुरोध पर बुद्धघोष ने "मनोरथ पूरणी" की रचना की थी ।[2] डॉ0 भिक्षु धर्म रक्षित भी यह मानते हैं कि बोधगया से प्रस्थान कर बुद्धघोष दक्षिण के अन्य विहारों के अलावा कांजीवरम् में रहकर बौद्ध धर्म की आचार्य परम्पराएं सीखी थीं । [3]

कान्यकुब्ज महाविहार :

कन्नौज प्राचीन भारत का गौरवशाली नगर रहा है । गंगा नदी के किनारे स्थित होने के कारण इसका व्यापारिक महत्व भी रहा । भगवान बुद्ध का कन्नौज

---

1. बील, चा0 ए0 इ0, जि0 4, पृ0 415-20.
2. भारत और विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक, पृ0 129.
3. आचार्य बुद्धघोष, पृ0 13.

पदार्पण हुआ था ।[1] विनयपिटक में वर्णित उत्तरापथ मार्ग पर कान्यकुब्ज स्थित था ।[2]

सातवीं शताब्दी के चीनी बौद्ध यात्री के अनुसार यहाँ लगभग 100 संघाराम थे जिनमें दस हजार भिक्षु रहते थे । यहाँ पर हीनयान एवं महायान दोनों सम्प्रदायों का अध्ययन–अध्यापन होता था ।[3] नगर के उत्तर–पश्चिम में एक स्तूप था जो लगभग 200 फीट ऊँचा था । गंगा नदी के दक्षिण की ओर छः या सात ली दक्षिणपूर्व में एक अन्य स्तूप था । यह स्तूप भी 200 फीट ऊँचा था । ये दोनों स्तूप अशोक द्वारा बनवाये गये थे ।[4] ह्वेनसांग कान्यकुब्ज के "भद्र–विहार" में तीन मास तक रुका था और वही त्रिपिटकाचार्य वीर्यसेन से बुद्धदास कृत विभाषा शास्त्र पढ़ा। इसको वर्ण विभाषा व्याकरण कहते हैं ।[5]

श्रावस्ती विद्या केन्द्र :

महामानव बुद्ध के जीवन काल में ही श्रावस्ती नगर बौद्ध धर्म और शिक्षा का केन्द्र बन चुका था । श्रावस्ती के जेतवन विहार का निर्माण अनाथपिण्डक ने गौतम बुद्ध के जीवन काल में ही कराया था । निर्माता के न रहने पर कुछ समय तक यह विहार उपेक्षित पड़ा रहा । जेतवन आराम का क्षेत्रफल लगभग 130 एकड़ था । इसमें 120 भवन और अनेक शालाएं थीं । उपदेश देने, समाधि लगाने एवं भोजन करने के लिये अलग–अलग शालाएं निर्धारित थीं । साथ ही स्नानागार, औषधालय, पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष आदि बने हुए थे । जलाशयों के चारों ओर घनी एवं मनोरम छाया थी । सारे भवन एक ऊँची दीवाल से घिरे थे । पुस्तकालयों बौद्ध धर्म की पुस्तकों के

---

1. कन्नौज का इतिहास, पृ0 671.
2. वही, पृ0 672.
3. ह्वेनसांग की जीवनी, पृ0 82–83.
4. वही, पृ0 84.
5. वही

अतिरिक्त अन्य धर्मों, तत्कालीन विज्ञान और शिल्प शास्त्रों के ग्रन्थों का भी संकलन किया गया था । ह्वेनसांग ने यद्यपि इस उन्नत दशा में नहीं पाया था तथापि गहड़वाल शासकों के यहाँ प्राप्त अभिलेखों से यह सिद्ध है कि ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी तक यह विद्या केन्द्र विद्या धर्म दान करता रहा ।

वलभी महाविहार :

गुजरात (काठियावाड़) में समुद्र के निकट स्थित वलभी एक ध्वस्त अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह ही नहीं अपितु शिक्षा का भी प्रधान केन्द्र था जो नालन्दा महाविहार के साथ–साथ विकसित हुआ था । ईसा की सातवीं शताब्दी तक इसकी ख्याति देश के विभिन्न भागों में हो गई थी । इस शिक्षा केन्द्र में सर्वप्रथम विहार का निर्माण राजकुमारी टुड्डा ने कराया था । तदनन्तर राजा धरसेन ने 580 ई0 में दूसरा विहार बनवाया था जिसका नाम श्री बप्पपाद था । इस विहार का निर्देशन और प्रशासन आचार्य स्थिरमति करते थे । इत्सिंग के अनुसार इसका (वलभी महाविहार) नालन्दा महाविहार के ही समान था ।[1] यहाँ अनेक बौद्ध विहार एवं महाविहार थे । ह्वेनसांग ने यहाँ के 100 विहारों तथा 6,000 भिक्षुओं का उल्लेख किया है ।[2] गंगा की तलहटी से अनेक ब्राह्मण भी अपने पुत्रों को यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजते थे ।[3] इससे इसका महत्व स्पष्ट है ।

स्थिरमति और गुणमति नामक विद्वान् इसी महाविहार की शोभा थे ।[4] तर्क, व्याकरण, सहित्य आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा यहाँ दी जाती थी ।इस महाविहार के सर्वोत्कृष्ट विद्वानों और आचार्यों के नाम प्रमुख द्वारों पर श्वेत अक्षरों में लिखवाकर उनका सम्मान किया जाता था ।

---

1. बील, ह्वेनसांग की जीवनी, पृ0 177.
2. वाट्र्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 246.
3. क0 स0 स0 सा0, 32/42–43 : अन्तेर्वेद्यामभूत्पूर्वं वसुदत्त इति द्विजः ।
विष्णुदत्ताभिधाश्च पुत्रस्तस्योपपद्यत ॥
स विष्णुदत्तो वयसा पूर्णषोडशत्सरः ।
गतुं प्रवृत्तेर्विद्या प्राप्तेय वलभीपुरीम् ॥
4. इण्डि0 ऐन्टी0, जि0 6, पृ0 11; वाट्र्स, आ0 यु0 ट्रे0 इं0, भाग 2, पृ0 243.

वलभी नगर मे सौ करोड़पति रहते थे जिनका आर्थिक सहयोग इस महाविहार को प्राप्त था । अनेक राजाओं ने इसे दान स्वरूप समुचित धन प्रदान किया था । ग्रन्थों के लिये भी यहाँ दान प्राप्त होते रहते थे ।

बारहवीं शताब्दी के बाद जब मुसलमानों के आक्रमण तीव्रता से होने लगे तब इस शिक्षा केन्द्र पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उन आक्रमणकारियों से अपने को बचा न सका ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म में शिक्षा-दीक्षा पर विशेष बल दिया जाता था । प्रत्येक बौद्ध विहार छोटा-मोटा विद्यालय ही था । महाविहार तो उच्च शिक्षा के केन्द्र (विश्वविद्यालय) ही थे । उक्त विवेचन से पता चलता है कि नालन्दा, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी एवं वलभी जैसे विश्वविद्यालयों की बड़ी प्रतिष्ठा थी । कठिन परीक्षा के पश्चात् ही प्रवेश मिलता था । यद्यपि ये बौद्ध केन्द्र और विद्यालय थे तथापि इनमें अन्य धर्मों के विविध दर्शनों कलाओं का अध्ययन-अध्यापन होता था । गुरु–शिष्य सम्बन्ध पिता पुत्र के समान थे । इस युग में उन बौद्ध विद्यालयों के उत्कृष्ट आदर्शों और व्यवहारों का समाचरण अनुकरणीय और ग्राहय है ।

---------- 0 ----------

अष्टम अध्याय

बौद्ध धर्म प्रचार एवं प्रचारक

बौद्ध धर्म की 'मिशनरी' गाथा सिद्धार्थ शाक्य गौतम के बोधि गया (बोधगया) में ज्ञान प्राप्त करने के बाद उनके द्वारा धर्म-प्रचारसे प्रारम्भ होती है । परन्तु इसका वास्तविक इतिहास अशोक के युग से ही प्रारम्भ होता है । जब उसने भारत और भारत के बाहर भी विद्वान् आचार्यों को धर्म प्रचार के लिये भेजा था ।

भगवान बुद्ध ने सारनाथ से धर्म चक्र प्रवर्तन प्रारम्भ किया तथा पाँच भिक्षुओं (पंचवर्गीय भिक्षुओं) से धर्म प्रचार के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाकर धर्म का प्रचार करने के लिए कहा ।

इस प्रकार बौद्ध धर्म का प्रसार कार्य प्रारम्भ हुआ । परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अभी तक न तो संघ की ही स्थापना हुई थी और न कोई अन्य प्रसार-संगठन था । बुद्ध ने अपने जीवन काल में उत्तर प्रदेश तथा बिहार के ही क्षेत्रों तक अपना धर्म प्रचार किया था । उनके बाद भी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई ।

कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर इस धर्म की उन्नति के लिये राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्ति लगा दी एवं स्थान स्थान पर अभिलेखों द्वारा उन्होंने प्रजा का धर्मानुशासन किया और धर्म के गुणों को समझाया ।

बौद्ध धर्म के उत्थान के लिये भी उसके हृदय में धर्मकामता बढ़ी । धर्मस्तम्भों (धम्मथमों) पर बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सिद्धान्तों, अहिंसा और जीवदया आदि का प्रचार किया । वह कुछ समय बौद्ध संघ में भी रहा था (मया संघं उपयीत) इसके बाद उसने ऐसा प्रयत्न किया कि सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में धर्मघोष ही सुनायी पड़ता था ।

अशोक का हृदय परिवर्तन और धर्म विजय

कलिंग युग के नरसंहार आदि से उसके हृदय में दया का स्रोत उमड़ पड़ा और उस अनुशोचन का परिणाम ही धर्मविजय की नीति थी । धर्म विजय का तात्पर्य धर्म द्वारा ही विश्व विजय करना तथा धर्म-राज्य की स्थापना करना था । उसने स्पष्ट घोषणा की :-

इछति हि देवनं प्रियो स्ब भूतानां अछतिं च संयमं च समचेरांच
माधवं च । इयं च मुख मते विजये देवनं प्रियस यो धमंविजयो ।[1]

अर्थात् अशोक (देवानां प्रियस प्रियदर्शी) इच्छा करता है कि सभी प्राणियों की अक्षति (आघात, प्रहार, चोट या पीड़ा का अभाव) सभी को (सभी के साथ) संयम (क्षान्ति, इन्द्रिय निग्रह, क्रोध, कटुवचन, कठोरता आदि का अभाव)।

सभी के साथ सम चर्या (समानता का व्यवहार) व्यवहार समता सभी के साथ मृदुता और मुदिता, प्रसन्नता और प्रीति का व्यवहार इस प्रकार प्राणिमात्र के सुख और जीवन रक्षा के आधार पर उसने ईसा मसीह के पेदा होने के लगभग दो सौ वर्ष पूर्व विचित्र धर्म चलाया तथा उसका प्रचार और प्रसार वह सम्पूर्ण विश्व में करना चाहता था ।

भगवान बुद्ध का भी यही उद्देश्य था जिसे अशोक ने पूरा किया । अशोक ही स्वयं कहता है :-

सोच पुन लघो देवानं प्रियस इध सवेसु च
अंतेषु अ षषु वि योजनशतेषु यत्र अंतियको नाभ योन रज
परं च तेन अंतियोकेन चतुरो राजानों तुरमायो च ।
अंतिकिनि नाम मगो अलिकसुंदरो
नामनिचं चोडपंडिय तंबपनिय
एवमेव इध राज विसयम्हि यरेन के बोजेसु
नभ के नामपंक्तिस भोज -मितिनिकेसु

---

1. अशोक का त्रयोदस शिलालेख

अंध्र पुलिन्देषु संवत देवल पियस

धर्मानुसस्टि अनुवतरे ......।[1]

इस अभिलेख में स्वयं अशोक द्वारा यह तो संक्षिप्त इतिहास है उसके द्वारा विश्व के समस्त देशों – पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी योरप मे बुद्ध धर्म का प्रसार।

इसके अतिरिक्त प्रत्यन्त प्रदेशों, (योन, कम्बोज और गान्धार) जो राज विषय ही थे तथा चोल, पाण्ड्य और ताम्रपर्णी, ताम्रपर्ण (लंका) मे बौद्ध धर्म का प्रसार। इसका प्रचार कैसे हुआ यह हमें इसी लेख में उसने बताया है -

यत वि दूता देवानं पियस न वचंति(व्रजंति)

ते पि श्रुत देवनं पियस धर्मयुतं विधनं ।।[2]

यह धर्मानुशासन दूतों द्वारा जहाँ-जहाँ वे गये थे ओर जहाँ नही गये थे वहाँ भी लोगों द्वारा सुना गया। सम्भवतः वहाँ धर्म-दूत भिक्षु आदि गये थे। अशोकावदान[3] और आर्य मंजुश्री मूलकल्प[4] से भी ज्ञात होता है कि उसने सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में चोरासी हज़ार धर्म राजिका स्तूपों का निर्माण करवाया था।

अब हम उन देशों ओर जातियो पर विचार करेंगे जहाँ अशोक ने धर्म विजय प्राप्त की थी। ये हैं -

यवनराज अन्तियोक यह सीरिया योन (यूनानी) राजा ऐन्टीयोकस थ्योस था (261 ई0 पू0 – 246 ई0 पू0)

तुलमय (तुरमयो) ईजिप्ट का टॉलमी द्वितीय फिलेडेल्फस (ई0पू0 285-247 ई0पू0)

अंतिकिनि मेसीडोनिया का ऐन्टी गोनस गोनाटस (278 या 277 ई0 पू0–258 ई0पू0)

---

1. अशोक का त्रयोदश शिला लेख
2. वही
3. अशोकावदान, पृ0 55, यावच्च राजा अशोकेन चतुश्शी ति धर्मराजिका सहस्र प्रतिष्ठापितं
4. म0 मू0 क0, 53/342, पृ0 474 जम्बूद्वीप इमं कृत्सनं स्तूपालंकृत भूषणाम्।
   कारयन्तु भवन्तो वैधातुमर्मा वसुधराम।

मका (मगा) : उत्तारी अफ्रीका मे सीरीन का राजा मैगस । यह ईजिप्ट (मिश्र) के पश्चिम में स्थित था ।

अलिकसुंदरो : एपिरस का राजा अलग्ज़ेन्डर (लगभग 272 ई0पू0 – 255 ई0पू0) अन्य कुछ लोगों की पहचान के अनुसार यह कोरिन्थ का अलग्ज़ेन्डर था (लगभग 252 ई0 पू0 244 ई0 पू0) निंच (नीचे समुद्र की ओर) दक्षिण में –

चोंड : चोल देश, कारोमडल तट,
तंजोर -- त्रिचनापली प्रान्त

पंडिय : पांड्य देश-मदुरा-तिन्नेवली प्रान्त और ताम्रपणी नदी की घाटी ।

तंबपंनि : ताम्रपर्णी या ताम्रपर्ण (तप्रोवेन) = लंका

योन-कंबोज : कंबोज का योन राज्य

अथवा

कंबोज के निकट योन राज्य (बैक्ट्रिया)

पितिनिक : दक्षिण में गोदावरी घाटी में स्थित प्रतिष्ठान देश (प्राचीन) अस्सक या अश्मक राज्य ।

नाभक : सम्भवतः यह पूर्वी पंजाब का नाभा-राज्य था ।

भोज : यह महाराष्ट्र जाति (यादवों की शाखा) थी ।

अन्ध्र : प्रसिद्ध आंध्र देश है । यहाँ बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई थी ।
धन्यकटक, अमरावती और नागार्जुनी कोंड प्रसिद्ध युद्ध क्षेत्र थे ।

पुलिन्द : ये विन्ध्याटवी (अटवी) आटव्य (वनचर) थे ।

लंका : (सिंहल) के प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ महावंस तथा सांची के स्तूप (नं0 2) की खुदाई से प्राप्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि तृतीय बौद्ध संगीति के बाद बौद्ध धर्माचार्य भिन्न भिन्न देशों को गये तथा वहाँ भिन्न-भिन्न सूत्रों का उपदेश दिया था ।

क्रमांक	भिक्षु का नाम	देश जहाँ वे गये	उपदेश सूत्र
1.	मज्झन्तिक	काश्मीर और गान्धार	असी विसोपम सूत्र
2.	महादेव	महिष मंडल (मैसूर)	देवदूत सुतन्त
3.	रक्खित	वनवासी (उत्तरी कनारा)	अनमतंग्ग सूत्र
4.	योन, योनक धम्मरक्खित	अपरान्तक (उत्तरी कोंकण)	अग्गिखन्धोपम सुत्त
5.	महाधम्म रक्खित	महारट्ठ (महाराष्ट्र)	महानारद कस्सप जातक
6.	महारक्खित	योनदेश (बैक्ट्रिया)	कालाराम सुत्त
7.	मज्झिम	हिमवन्त प्रदेश लद्दाख हिमाचल प्रदेश पौड़ी गढ़वाल तथ अलमोड़ा नेनीताल	धम्मचक्क पवत्तन सुत्त
8.	सोणव उत्तर	सुवर्णभूमि (लोवर बर्मा)	ब्रह्मजाल सूत्र
9.	महेन्द्र और सघमित्रा	लंका (सिंहल)	चूलचथिपयुपमा सुत्त[1]

काश्मीर और गान्धार :

बौद्धाचार्य मज्झन्तिक को काश्मीर तथा गान्धार में बौद्ध धर्म का प्रचार करने भेजा गया था। महावंस से ज्ञात होता है कि जब वहाँ काश्मीर पहुँचा तो उसे कुछ प्रकोपों का सामना करना पड़ा, जिन्हें उसने अपने योग बल से शान्ति कर दिया।[2]

---

1. कै0 हि0 इं0, जिल्द 1, पृ0 449–50.
   मुकर्जी, अशोक, पृ0 32–34.
2. महावंस, परिच्छेद 12, पृ0 60–61.

राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि अशोक राज ने काश्मीर की पवित्र भूमि को स्तूपों से अलंकृत कर दिया ।[1] उसने धर्मारण्य विहार में भी एक चैत्य का निर्माण कराया था ।[2] श्रीनगर (श्रीनगरी) की स्थापना भी अशोक ने ही कराई थी ।[3] काश्मीर से ही बौद्ध धर्म की लहर लेह होती हुई तिब्बत में भी गयी होगी ।

गान्धार से ही बौद्ध धर्म अफगानिस्तान और मध्य एशिया में फैला था । इसमें काश्मीर और गान्धार के बौद्ध भिक्षुओं का योगदान था ।

इसी प्रकार योन–कम्बोज में से होता हुआ भी चक्षु की घाटी में बौद्ध धर्म फैला था ।

हिमवन्त प्रदेश :

सिन्ध, रावी, झेलम ओर सतलज तथा व्यास के ऊपरी पर्वतीय क्षेत्रों को हिमवन्त प्रदेश कह सकते हैं । शाकल के ऊपर रावी नदी का क्षेत्र तपोवन ही था । इसी प्रकार इस सम्पूर्ण क्षेत्र में तपस्वी तप करते रहते थे । यह मानस–कैलास खण्ड ही था जहाँ धर्म का प्रचार किया गया था ।

कालसी (कालशिला) :

देहरादून मंसूरी से थोड़ी दूर ही यमुना (कालिन्दी और टोंस नदी के संगम स्थल पर पहाड़ी में खुदा हुआ अशोक का शिलालेख प्राप्त हुआ है । लेख के नीचे हाथी का चित्र खींचा हुआ प्राप्त होता है । यह बुद्ध का प्रतीक है बुद्ध को "सब्ब लोक सुखाकशे – गजतमो" कहा गया है । महावंस के अनुसार स्थविर मज्झन्तिक तथा चार अन्य स्थविरों ने हिमवन्त खण्ड के भिन्न–भिन्न देशों के लाखों निवासियों

---

1. रा0 तं0 1, 102.
2. वही, पृ0 1/103.
3. वही, 1/104.

को धर्म में दीक्षित किया ।[1] इस प्रकार नेपाल और भूटान में भी बौद्ध धर्म पहुँचा ।

सुवर्णभूमि :

डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार के अनुसार दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार में सुवर्णभूमि और स्वर्णद्वीप का विशेष महत्व रहा है ।[2] अशोक के समय सोण और उत्तर को सुवर्णभूमि में धर्म का प्रचार करने भेजा गया था । इन्होंने वहाँ के लोगों को ब्रह्मजाल सुत्त का उपदेश किया था इसके फलस्वरूप बहुत से मनुष्यों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया ।

साढ़े तीन हज़ार कुमारों तथा डेढ़ हज़ार कुमारियों ने वहाँ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया तथा प्रव्रज्या ग्रहण की थी ।[3]

सिंहल :

सिंहल (या लंका) भारतवर्ष का ही एक भाग था सिंहल में बौद्ध धर्म का प्रचार करने संघमित्रा और महेन्द्र को भेजा गया था ।

संघमित्रा के पुत्र सुमन को भी चार स्थविरों के साथ भेजा गया था ।

संघमित्रा के चार पुत्र सुमन को भी चार स्थविरों के साथ भेजा गया था । इसी समय भारत से बोधि वृक्ष भी लंका में आरोपित किया गया ।

आन्ध्र – सातवाहन युग

सातवाहन सम्राट प्रारम्भ से ही बौद्ध धर्म के संरक्षक थे । द्वितीय सातवाहन सम्राट कन्ह (कष्ण) ने बौद्धों के लिये नासिक में लेण (गुफा) खुदवायी थी ।[4] इस

---

1. महावंस, परिच्छेद 12, पृ0 62–63.
2. सुवर्णद्वीप, दूसरा भाग, पृ0 5–8.
3. महावंस, परिच्छेद 12, पृ0 63.
4. कृष्ण (कान्ह) का नासिक लेख ।

प्रकार अन्य सम्राटों ने भी पश्चिमी भारत की बहुत गुफाओं के निर्माण [1] में अपना योगदान दिया था। सांची के तोरणों के निर्माण में भी इनका योगदान था। अमरावती स्तूप भी इसी युग की देन थी। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य और दार्शनिक नागार्जुन की देन थी और वह सातवाहन का मित्र भी था। आन्ध्र के इक्ष्वाकुवंश के शासन काल में बौद्ध धर्म की उन्नति हुई।

यह अपने सामुद्रिक व्यापार के लिये प्रसिद्ध था। अतः दक्षिणी समुद्र द्वीपों में बौद्ध धर्म का प्रचार इस युग में हुआ।

कुषाण युग

कुषाण राजाओं का युग बौद्ध धर्म की उन्नति और विदेशों में प्रसार के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

इस युग में भारत का मध्य एशिया के साथ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्पर्क बढ़ा। स्वयं कुषाण मध्य एशिया के तुखारिस्तान (तुषार देश) से आये तुरुष्क थे। अर्थात् तुर्किस्तान और भारत के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध स्थापित हुए। मध्य एशिया को कनिष्क प्रथम ने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। भारत (आर्यावर्त) और मध्य एशिया एक ही शासन सूत्र में बंध गये थे।

कनिष्क प्रथम महान बुद्ध भक्त था। इसी समय एक नये धर्म का उदय हुआ जो महायान धर्म कहा गया है। इस धर्म के अन्तर्गत बुद्ध की प्रतिमा बनने लगी थी। स्तूपों के आकार में भी परिवर्तन हुआ। कुषाण स्तूप गोल ज़्यादा नहीं होते थे,

---

1. गौतमी पुत्र शातकर्णी का नासिक जुहा लेख, पं0 3.
   एध अम्हे हि पवते तिरण्हुन्हि धमदाने लोणे पतिवसतान
   पर्वाजितान भिखुन गामें करवडीसु पुव खेतं दत्त।
2. वही, पं0 4
   वासिष्ठी पुत्र पुलुमावी का नासिक गुप्त लेख, पं0 2-3.

परन्तु ऊँचे अधिक होते थे । संघाराम विहार और मठ तथा स्तूप, सारनाथ, मथुरा, गान्धार तथा काश्मीर में पटे पड़े थे । वे मुस्लिम राज्य काल में काल–कवलित हो गये ।

चौथी बौद्ध सभा

चतुर्थ बौद्ध संगीति जालन्धर (अथवा काश्मीर) में हुइ थी । महास्थविर पार्श्व इसके अध्यक्ष थे । स्थविर वसुमित्र उपाध्यक्ष थे । बौद्ध दार्शनिक–भक्त कवि अश्वघोष भी उपस्थित थे । उत्तरापथ में संगीति का होना ही बौद्ध धर्म को हिमालय के पार फैलना था ।

चाहे वह जालन्धर में हुई हो या काश्मीर या पुरुषपुर में, हिमवन्त प्रदेश, गान्धार के अतिरिक्त खोतान आदि देशों से बौद्ध और अन्य श्रमण भी आये होंगे । वे सभी अपने–अपने क्षेत्रों में धर्म प्रसारक बन गये । इस बौद्ध महासभा के महोत्सव का प्रभाव मध्य एशिया और चीन पर विशेष रूप से पड़ा ।

चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश भी इसी समय चीनी सम्राट मिंग ती के शासनकाल (58–75) में हुआ ।

भारतीय भिक्षु काश्यप मातंग और धर्मरक्ष दोनों ही भिक्षु चीन को बौद्ध धर्म का प्रसार करने गये । चीन के सम्राट ने उनका भव्य स्वागत किया । मध्य एशिया में खोतान, कुचि और सॉग्डियना आदि क्षेत्रों में बौद्ध धर्म तथा भाषा का प्रचार हुआ । काशगर भी बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया । यह "सिल्क–रूट" (रेशम पथ) पर स्थित था । अफगानिस्तान में भी बौद्ध धर्म की उन्नति हुई ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुषाण युग में बौद्ध धर्म का भारत के उत्तरी भागों – मध्य एशिया तथा चीन में विशेष रूप से हुआ ।

काश्यप मातंग :

ये भारतीय बौद्ध विद्वान् भिक्षु थे, जिन्होंने चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार किया । चीन के सम्राट मिंगती ने भारत में एक दूत–मण्डल भेजा था । काश्यप मातंग

इसी दूत मण्डल के साथ चीन गये थे । उनके साथ उनके मित्र धर्मरक्ष भी थे । उन्होंने चीन में पशु–जीवन की पवित्रता, अध्यात्म ज्ञान, भिक्षुचर्या और कर्म की शुद्धता पर बल दिया । काश्यप मातंग ने बयालिस बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया था । इनमें अनुवादों में "सुवर्ण प्रभास सूत्र" तथा "द्वाचत्वारिंशत सूत्र" प्रसिद्ध हैं ।[1]

चीन में बौद्ध धर्म प्रचारकों में काश्यप मातंग प्रथम थे ।[2]

धर्मरक्ष :

ये प्रकाण्ड विद्वान थे और काश्यप मातंग के साथ चीन गये थे ।

वैरोचन :

अर्हत वैरोचन धर्म प्रचार के लिए खोतान को गये थे । उन्होंने खोतान में महायान धर्म का प्रचार किया था ।

श्रीमित्र :

ये भारतीय बौद्ध भिक्षु थे जिन्होंने तुषार प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था ।

गुप्त युग में बौद्ध प्रचारक

उपशून्य :

उपशून्य का जन्म उज्जैन में हुआ था । भिक्षु होने के बाद उत्तर–पश्चिम मार्ग से चीन गये थे । 538–540 के बीच उन्होंने तीन ग्रन्थों का अनुवाद किया था । इन्होंने नानकिंग में बौद्ध धर्म का प्रचार किया ।

उपाध्याय यश :

ये मगध के रहने वाले थे । इन्होंने 561 तथा 578 ई0 के बीच मध्य चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया । चीन में इन्होंने जिन गुप्त तथा यशोगुप्त की सहायता

---

1. बनर्जी, स्ट0 चा0 बु0, जि0 3, पृ0 248.
2. बौ0 सं0, पृ0 301.

से छः ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया । जिनमें 'महामेघ' और 'अभिसमय सूत्र' उपलब्ध है ।

कुमारजीव :

काश्मीर के एक राजकुमार (कुमार) गृह त्याग कर हिमवन्त प्रदेश और उस पार घूमते हुए कुचि देश में पहुँचे वहाँ की राजकुमारी जीवा ने कुमार से विवाह कर लिया । इन दोनों से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका ही नाम कुमार जीव रखा गया । जीवा कुमारजीव को काश्मीर ले आई और वहाँ अध्ययन के बाद वे बुद्ध क्षेत्रों तथा अन्य विद्या केन्द्रों में घूमते हुये कुचि पहुँच गये । उनकी विद्वता और धार्मिक निष्ठा की प्रसिद्धि सम्पूर्ण मध्य एशिया में फैल गयी ।

383 ई0 में सिन–वंशी चीनी सम्राट् फु–शेन ने कुचि विजय की । कुमारजीव को अत्यन्त सम्मान के साथ उनके लिये श्वेताश्व–महाविहार बनवाया गया । चीन में रहते हुये कुमारजीव ने सैकड़ों संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा वे वहाँ 332 ई0 से 412 ई0 तक रहे । 412 ई0 में उनका शरीरान्त हो गया ।

गुणभद्र :

वे भारतीय ब्राह्मण थे जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था । बौद्ध होकर बौद्ध ग्रन्थों (शास्त्रों) का अध्ययन करते हुए पहले वे सिंहल गये । वहाँ से 435 ई0 में वे कैन्टन (चीन) पहुँच कर कुछ समय नान्किंग के जेतवन विहार में रुके । उन्होंने अपना सारा जीवन धर्म प्रचार में ही लगा दिया । धर्म प्रचार करते हुए नान्किंग में उनका देहावसान हो गया ।[1]

गुणवर्मा :

यह काश्मीर के राजा संघानन्द के पुत्र थे ।[2] वे राज्य को स्वीकार न कर

---

1. स्ट0 चा0 तु0, पृ0 18.
2. म0 ए0 ची0 भा0 सं0 पृ0 178–79.

काषाय वस्त्र धारण कर बौद्ध भिक्षु हो गये। वे विनय के विशेष आचार्य थे।

पहले सद्धर्म का प्रचार करने सिंहल गये। वहाँ से वे जावा चले गये। उनसे प्रभावित होकर सम्पूर्ण राज–परिवार बौद्ध हो गया। गुणवर्मा की ख्याति चीन में भी पहुँची। 431 ई0 में नन्दी नामक भारतीय व्यापारी के जलयान द्वारा वे नान्किंग पहुँचे। चीन के राजा ने उनका भव्य स्वागत किया तथा उनके निवास के लिये जेतवन विहार में प्रबन्ध करवा दिया।

गुणवर्मा ने चीन में संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। 431 ई0 में नान्किंग में ही उनका देहावसान हो गया।

गौतम प्रज्ञारुचि :

इनका जन्म वाराणसी में हुआ था। 516 ई0 में धर्म–प्रचार के लिए लोयांग (चीन) गये थे और 543 ई0 तक घूम–घूम कर वे चीन में धर्म प्रचार करते रहे। 553 ई0 में चीन में ही उनका निर्वाण हुआ।[1]

गौतम संघ देव :

यह काश्मीरी बौद्ध विद्वान थे। उन्होंने चीन में धर्म प्रचार किया। दक्षिण चीन में उनका प्रचार कार्य हुआ। वे नान्किंग में रहे और कई बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया।

चन्द्रगोमिन :

ये पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न हुए थे। वे सद्धर्म का प्रचार करने लंका गये थे।

---

1. म0 ए0 ची0 भा0 सं0, पृ0 178–79.

जिनगुप्त :

इनका जन्म पेशावर में हुआ था । वे सात वर्ष की अवस्था में ही बौद्ध हो गये थे । वे नौ यात्रियों के साथ चीन गये ।

दिङ्नाग :

आचार्य दिङ्नाग का जन्म दक्षिण में कांची के निकट सिंहचक्र नामक स्थान में हुआ था ।[1] भिक्षु नागदत्त ने उन्हें बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था । बाद में उत्तर भारत में चले आये और उन्होंने आचार्य वसुबन्धु का शिष्यत्व स्वीकार किया । उन्होने हीनयान और महायान दोनों के मौलिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया था । दिङ्-नाग बौद्ध धर्म-प्रचार करने चीन गये थे । वहाँ उन्होंने महायान धर्म का प्रचार किया था । ये ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में हुए थे । उड़ीसा के पुण्यारण्य में उनका शरीरान्त हुआ था ।[2]

धर्मकाल :

उनका जन्म मध्य प्रदेश में हुआ था ।भिक्षु होकर वे चीन गये थे और वही जीवन पर्यन्त धर्म प्रचार करते रहे ।[3] उन्होंने विनय स्म्बन्धी प्रातिमोक्ष सूत्र का चीनी अनुवाद किया था । यह भिक्षुओं के लिए नित्यप्रति स्मरण करना तथा नियमों का पालन करना अनिवार्य था ।[4]

धर्मक्षेम :

यह भी मध्य प्रदेश के निवासी थे । उन्होंने धर्मयक्ष के संरक्षण में पहले हीनयान और बाद में महायान का बीस वर्षों तक अध्ययन किया । वे महायान के प्रसिद्ध

---

1. सं0 सा0 सं0 इ0, पृ0 229.
2. वही, पृ0 230.
3. बनर्जी, स्ट0 चा0 बु0, पृ0 11.
4. वही, पृ0 11.

प्रसिद्ध विद्वान आचार्य थे । बाद में धर्मक्षेत्र काश्मीर चले गये । वहाँ से मध्य एशिया होते हुए कांसू (चीन के उत्तर–पश्चिम) पहुँचे वहाँ उन्हें हूण राजा चिन–किन–मोड.–शू–येन ने अपना धर्मगुरु बना लिया । उन्होंने चीनी भाषा पढ़कर धर्मग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया । 434 ई0 में हूण राजा ने किसी बात से रुष्ट होकर उनका वध करवा दिया ।

धर्मगुप्त :

वे लाट या राढ़ के निवासी थे । कन्नौज के कौमुदी – संघाराम में उनकी दीक्षा हुई थी । कुछ काल से वे टक्क (उत्तरी पंजाब)में रुके ।

584 ई0 में वे धर्म प्रचार हेतु कूच देश को गये । वहाँ का राजामहायान धर्म को मानने वाला था । 590 ई0 में छड.–अन प्रदेश में अनुवाद कार्य करते रहे ।[1]

धर्मपाल :

इनका जन्म तामिल (द्रविड़) देश के कांचीपुर में हुआ था । इन्होंने लंका में धर्म कार्य किया था ।

धर्मफल :

ये वेदवेत्ता ब्राह्मण थे जिन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया । वे हीनयान और महायान को अच्छी तरह जानते थे । धर्म प्रचार हेतु वे लोयाड. गये थे ।

धर्ममित्र :

यह काश्मीरी भिक्षु थे जो धर्म प्रचार हेतु दक्षिणी चीन को गये थे ।

---

1. बौ0 सं0, पृ0 325.

धर्मयक्ष :

ये काश्मीरी विद्वान् थे जो धर्म प्रचार हेतु चीन गये थे ।[1] वे 453 ई0 तक चीन में घूम–घूम कर धर्म प्रचार करते रहे । उन्होंने बहुत से बौद्ध ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया था ।[2]

धर्मरुचि :

ये दक्षिण भारत के निवासी थे और बौद्ध धर्म का प्रचार करने चीन गये थे । वहाँ उन्होंने तीन ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया था ।[3]

एक अन्य धर्मरुचि काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे । उनका जन्म 671 ई0 में हुआ था । 727 ई0 में वे चीन गये थे । उनकी आयु 156 वर्ष की थी । चीन में उन्होंने धर्म का प्रचार किया तथा संस्कृत ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया । उन्होंने पन्चपन ग्रन्थों का अनुवाद किया था ।

नागसेन :

ये मिलिन्द के नागसेन (मिलिन्द के गुरु)से भिन्न हैं । वे व्यापारियों के साथ कैन्टन गये थे । वे चीन में धर्म प्रचार करने गये थे ।

परमार्थ :

ये उज्जयिनी के ब्राह्मण थे । वे बौद्ध धर्म को स्वीकार कर, धर्म प्रचार के लिये बौद्ध केन्द्रों में भ्रमण करते हुए पाटलिपुत्र पहुँचे जब मगध में विष्णुगुप्त नामक राजा राज्य कर रहा था । 546 ई0 में यहाँ से चीनी सम्राट के आमन्त्रण पर चीन में धर्म प्रचार करने गये । यहाँ उन्होने अनुवाद कार्य किया । 569 ई0 तक वे

---

1. म0 ए0 ची0 भा0 सं0, पृ0 179.
2. वही, पृ0 178.
3. बौ0 सं0, पृ0 41300

चीन के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न वर्गों के लोगों को धर्म को उपदेश देते रहे ।

पुण्यत्रात :

ये काश्मीरी बौद्ध भिक्षु थे । वे चीन में धर्म प्रचार करते हुए कुमारजीव के सहयोगी थे ।[1]

बुद्धघोष :

यह गुप्त काल में कुमार गुप्त प्रथम के समकालीन प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य थे । वे लंका में पाली बौद्ध ग्रन्थों पर भाष्य लिखते रहे तथा धर्म का प्रचार करते रहे ।

बुद्धजीव :

ये काश्मीरी बौद्ध भिक्षु थे । वे फ़ाहियान के साथ चीन गये गये थे । धर्म प्रचार के साथ-साथ उन्होंने उन पुस्तकों का अनुवाद किया जिन्हें फाहियान भारत से ले गया था ।

बुद्धदत्त :

ये दक्षिण भारत के बौद्ध भिक्षु थे । उन्होंने लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था ।

बुद्धयश :

ये काश्मीरी ब्राह्मण थे जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर सम्पूर्ण मध्य एशिया में भ्रमण किया और धर्म का प्रचार किया । बुद्धयश ने काशगर में धर्म का प्रचार किया था ।

---

1. म0 ए0 ची0 भा0 सं0, पृ0 179.

बोधिधर्म

श्रीमती डॉ0 यमुना लाल द्वारा रचित भारत तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक नामक पुस्तक से उद्धृत

बुद्धशान्त :

ये भारतीय बौद्ध भिक्षु थे जिन्होंने 520 ई0 से 530 ई0 तक चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था ।

बुद्धसेन :

ये महायान के प्रकाण्ड बौद्धाचार्य थे । ये खोतान के गौतमी विहार (गोमती) में रहते थे । उन्होंने चीनी राजकुमार त्यड्.याग को शिक्षा–दीक्षा दी थी ।

बोधि धर्म :

ये दक्षिण भारत के निवासी थे । वे ध्यान–योगी थे और उन्होंने उत्तरी चीन में ध्यान धर्म का प्रचार किया ।

यशो गुप्त :

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार वे उत्तर प्रदेश के निवासी थे । 561 ई0 और 578 ई0 के बीच वे चीन गये थे जहाँ उन्होंने उपाध्याय यश को अनुवाद कार्य में सहायता की थी ।[1]

वसुबन्धु :

ये पेशावर के निवासी तथा असंग के भाई थे ।[2] इन दोनों की शिक्षा काश्मीर में हुई थी । धर्म प्रचार के लिये साकल (स्यालकोट) तथा कौशाम्बी गये थे ।[3]

विमलाक्ष :

ये काश्मीरी बौद्ध थे[4] जिन्होंने मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का प्रचार किया ।[5]

---

1. बौ0 सं0, पृ0 320.
2. वही, पृ0 318.
3. सं0 सा0 सं0 इ0, पृ0 229.
4. स्ट0 चा0 बु0, पृ0 15.
5. मा0 ए0 ची0 भा0 सं0, पृ0 178.

406 ई0 में वे चीन गये थे और अनुवाद कार्य में कुमारजीव की सहायता की थी ।[1] कुछ समय बाद वे दक्षिण चीन चले गये और धर्म प्रचार करते हुए ही उनका वहीं शरीरान्त हो गया ।[2]

विमोक्षसेन :

ये पश्चिमोत्तर भारत में उद्यान के निवासी थे । उन्होंने गौतम प्रज्ञारुचि से बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी । उनके साथ ही वे चीन चले गये थे । चीन में उन्होंने नागार्जुन के ग्रन्थ 'विग्रह व्यावतिनी' का चीनी अनुवाद किया था ।[3]

संघमूर्ति :

ये भी काश्मीरी बौद्ध थे, जो धर्म प्रचार हेतु चीन गये थे ।[4]

ज्ञानभद्र :

पो–त्यु–मो (पद्म, पद्मनगरी = पद्मावती, पवाया ग्वालियर के समीप) के निवासी थे । वे चीन गये थे और वहाँ उन्होंने पंचविद्या शास्त्र का अनुवाद किया था ।[5]

भारत में विदेशी धर्म प्रचारक

विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार होने तथा चीन विशेष में बौद्ध धर्म, बौद्ध शास्त्र और धर्म दर्शन के अध्ययन आदि से कुछ जिज्ञासु बुद्ध भक्तों में बुद्ध देश को देखने की उत्कंठा बढ़ी और वे भारत में 1200 ई0 तक आते रहे ।

---

1. म0 ए0 ची0 भा0 सं0, पृ0 178.
2. बौ0 सं0, पृ0 304.
3. वही
4. म0 ए0 ची0 भा0 सं0, पृ0 177.
5. बौ0 सं0, पृ0 320.

चु–शि–हिंग :

ये चीनी भिक्षु थे । बचपन में ही बौद्ध हो गये थे तथा चीन के विहार में बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया था ।

बौद्ध शास्त्रों की खोज में वे भारत के लिये चल पड़े । खोतान में भारतीय बौद्धों से उनकी भेंट हुई थी । वे भारत नहीं पहुँच सके ।

चे–मोंग :

ये चीनी भिक्षु थे जो अपने चौदह साथियों के साथ 404 ई0 में भारत की सद्धर्म यात्रा पर रवाना हुए थे । मध्य एशिया के बौद्ध केन्द्रों में घूमते हुए काश्मीर में आये थे । 424 ई0 में अपने कुछ साथियों के साथ भ्रमण किया ।

पा–ओ–युनु :

यह भी चीनी बौद्ध भिक्षु था जिसने 397 ई0 में भारत की यात्रा पर चला था । मध्य एशिया में फ़ाहियान से उसकी भेंट हुई थी ।

ताओ–पो :

यह चीनी भिक्षु 451 ई0 में भारत आया था । उसने संकाश्य तक बौद्ध तीर्थों का भ्रमण किया ।[1]

फाहियान :

इस प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री ने भारत में 399–413 ई0 तक यात्रा की थी । वह समुद्री मार्ग से चीन वापस गया था ।

शी–ताऊ–ताई :

ये चीनी बौद्ध भिक्षु थे जो बौद्ध ग्रन्थों के लिए भारत आये थे । वे काश्मीर में कुछ समय तक रहे ।

---

1. स्ट0 चा0बु0 , ए0 सी0 बनर्जी, पृ0 11.

ह्वेनसांग

श्रीमती डॉ0 यमुना लाल द्वारा रचित भारत
तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक
नामक पुस्तक से उद्धृत

शुंग–युन :

यह चीनी यात्री 25 साथियों के साथ भारत की ओर चला था । वे लोग उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तक ही सीमित रहे ।

सो–फा–शेट्‌ :

यह चीनी सद्धर्म ग्रन्थों की खोज में भारत आया था । यहाँ बौद्ध तीर्थों का दर्शन करते हुए भ्रमण करता रहा ।

ह्वेनसांग :

यह अति प्रसिद्ध यात्री महाराज हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया था । सम्पूर्ण भारत भ्रमण करता रहा । कन्नौज की सभा में उसने महायान धर्म पर व्याख्यान किया था । वह नालन्दा विश्वविद्यालय में रहा था ।

हर्ष युग के बौद्ध धर्म प्रचारक

अमोघ व्रज :

चीन के तांत्रिक बौद्ध धर्म के इतिहास में वज्रबोधि तथा उनके शिष्य अमोघवज्र अति प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य हैं । अमोघ वज्र चीन गये थे और वहाँ रोजाना तथा लंका में भी गये थे । चीन में उन्होंने धर्म प्रचार वज्रबोध के निर्देशन में किया था ।

अमोघवज्र का जन्म उत्तरी भारत में ब्राह्मण परिवार में हुआ था । 719 ई0 में वे चीन गये थे । गुरु (वज्रबोधि) की मृत्यु के बाद वे वहाँ वज्रयान के प्रमुख बन गये । भारत में उन्होंने लगभग एक सौ ग्रन्थ एकत्रित किये थे और उनका चीन में अनुवाद भी उन्होंने किया था ।

आचार्य अर्जुन :

यह काश्मीरी बौद्ध आचार्य थे जो चीन गये थे । वे चीन में धर्म का प्रचार करते रहे ।

आचार्य ज्योतिपाल :

ये सिंहल (लंका) में धर्म प्रचार करने गये थे ।

आचार्य धर्मपाल :

ये कांची के निवासी तथा नालन्दा महाविहार के अध्यक्ष थे । धर्म प्रचार के लिये वे जावा–सुमात्रा को गये थे ।[1]

इत्सिंग :

ये प्रख्यात चीनी बौद्ध यात्री थे जो भारत में 671 ई0 में आये थे उन्होंने ताम्रलिप्ति और नालन्दा में अध्ययन भी किया था । वे यहाँ बौद्ध स्थानों और विहारों में घूमते हुए धर्म का प्रचार करते रहे । 79 वर्ष की अवस्था में 713 ई0 में उनका देहावसान हो गया । उनका भारत विवरण[2] बौद्धाचार्य के इतिहास को अध्ययन करने के लिये अति प्रसिद्ध है ।

ताऊसिंग :

ये चीनी बौद्ध भिक्षु थे । भारत में उन्होंने अधिकांश समय नालन्दा में व्यतीत किया । इनका समय 580 ई0 से 651 ई0 तक माना गया है ।[3]

ताऊ–हि :

यह चीनी भिक्षु भारत में श्रीदेव के नाम से प्रसिद्ध है ।[4]

ताओ–लिन :

ये चीनी बौद्ध भिक्षु थे जो भारत में धर्म यात्रा के लिये आये थे । उन्होंने

---

1. द0 पू0 ए0 भा0 सं0, पृ0 50, 103.
2. रिकर्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन इन इण्डिया एण्ड मलाया आर्कीपॅलागो, पृ025.
3. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 176.
4. बौ0 सं0, पृ0 339.

वैरोचन

श्रीमती डॉ0 यमुना लाल द्वारा रचित भारत
तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक
नामक पुस्तक से उद्धृत

ताम्रलिप्ति तथा नालन्दा में अध्ययन किया था ।[1]

दिवाकर :

ये मध्य देश के निवासी थे जो धर्म प्रचार के लिये 676 ई0 में चीन गये थे ।[2]

नन्दी (पुण्योपाय) :

ये चिकित्सा शास्त्री भिक्षु थे जिन्होंने भारत तथा लंका में 1500 बौद्ध ग्रन्थों को एकत्रित किया ।[3]

बोधिरुचि :

ये काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे । वे ईसा की सातवीं शताब्दी में चीन गये थे और वहाँ वे 20 वर्ष (693 ई0–713 ई0 तक) धर्म प्रचार करते रहे ।[4]

भिक्षु कुमार घोष :

यह गौड़ देश के निवासी थे । इन्होंने दक्षिण पूर्व द्वीपों में धर्म प्रचार किया था । ये राजगुरु थे ।[5]

भिक्षु वैरोचन :

ये तिब्बत में बौद्ध धर्म प्रचारकों में सर्वप्रथम आचार्य थे । तिब्बती के श्रेष्ठ अनुवादक थे । उन्होंने खोतान में सबसे पहले धर्म प्रचार किया था । वे आठवीं शताब्दी के भिक्षु थे ।[6]

---

1. बौ0 सं0, पृ0 339.
2. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 176.
3. बौ0 सं0, पृ0 338.
4. वही
5. द0 पू0 ए0 भा0 सं0, पृ0 33.
6. वही, पृ0 53.

महायान प्रदीप (ता0 चेन्ग–तेन्ग):

ये चीनी भिक्षु ह्वेनसांग के शिष्य थे । पश्चिमी श्याम, सिंहल तथा दक्षिण भारत की यात्रा करते हुये वे ताम्रलिप्ति में रुके । वहाँ वे बारह वर्ष तक रहे । वे संस्कृत के महान विद्वान् थे । कुशीनगर के महाविहार में इनका देहावसान हुआ था ।

मितोशान :

पन्द्रह वर्ष तक भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते हुए इन्होंने त्रिपिटक का अध्ययन किया । 702 ई0 में वे तुखार देश से चीन गये और वहाँ अनुवाद कार्य करते रहे ।[1]

रत्नचिन्ता :

ये काश्मीरी बौद्ध भिक्षु थे जो धर्म प्रचार के लिये चीन गये थे ।[2]

लङ. :

यह चीनी बौद्ध धर्म प्रचारक था जो भारत से सद्धर्म पुण्डरीक की एक प्रति चीन ले गया था ।[3]

वज्रबोधि :

इनका जन्म दक्षिण के मलय प्रदेश में 600 ई0 में हुआ था । वे ब्राह्मण थे । इनके पिता कोची के पल्लव राजा के गुरु थे । वे अपने गुरु के साथ हीनयान का अध्ययन करने नालन्दा गये थे । पचास वर्ष की आयु में वे अपने शिष्य अमोघवज्र के साथ चीन गये थे ।[4] वे तन्त्रयान के महान आचार्य थे ।

---

1. बौ0 सं0, पृ0 340.
2. स्ट0 बु0 क0 ई0, पृ0 24.
3. वही, पृ0 176.
4. हि0 बु0, जि0 3, पृ0 264.

वज्रसिद्धि :

इन्होंने नालन्दा में अध्ययन करने के बाद चीन में महायान धर्म का प्रचार किया ।[1]

वाड.-पो :

ये चीन के भिक्षु थे । इन्होंने भारत में संस्कृत का अध्ययन किया । बौद्ध तीर्थों का अध्ययन करने के बाद वे स्वदेश लौट गये । उनका भारतीय नाम मतिसिंह था ।[2]

ह्वी-निच-वे :

ये कोरिया के भिक्षु थे जिन्होंने नालन्दा महाविहार में धर्म का अध्ययन किया था । साठ वर्ष की अवस्था में नालन्दा में उनकी मृत्यु हो गयी ।

ह्वेनताई और ह्वेन-चाउ :

ये दोनों कोरिया के बौद्ध भिक्षु थे । वे तिब्बत के मार्ग से होते हुये भारत में महाबोधि (बोधगया) में रुके थे । 650-655 ई0 तक इन्होंने भारत की यात्रा की थी ।

ह्वेन-चू :

ये चीनी बौद्ध भिक्षु थे जिनका भारतीय उपनाम प्रकाश मति था । वे बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिये चार वर्ष तक जालन्धर में रहे । सात वर्ष तक बोधगया और नालन्दा महाविहार में रहकर धर्म का अध्ययन किया । धर्म प्रचार करते हुये अमरावती (आन्ध्र प्रदेश) में इनका देहावसान हो गया ।

इस प्रकार यहाँ 650-750 ई0 के बीच भारत में विदेशों से तथा विदेशों से भारत में आने जाने वाले धर्म प्रचारकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

---

1. स्ट0 चा0 बु0, पृ0 96.
2. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 176.

अतिश दीपांकर श्रीज्ञान

श्रीमती डॉ0 यमुना लाल द्वारा रचित भारत
तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक
नामक पुस्तक से उद्धृत

पाल युग के बौद्ध धर्म प्रचारक

ईसा की आठवीं शताब्दी में पाल वंश की स्थापना हुई। इस वंश में धर्मपाल और देवपाल महान सम्राट और प्रशासक तथा विजेता थे। इस वंश के शासकों ने परम सौगत की उपाधि धारण की थी। इससे सिद्ध होता है कि वे बुद्ध भक्त सम्राट थे। इस युग में ओदन्तपुरी और विक्रमशिला के प्रसिद्ध विश्व विद्या केन्द्र स्थापित हुये। हर्ष की मृत्यु के बाद धर्म अन्तर्वेदी (मध्य देश) से पूर्व देश की ओर बढ़ गया।

पालवंशीय सम्राट् महायान धर्म के मानने वाले थे। उनके शासनकाल में महायान धर्म दक्षिण–पूर्वी समुद्र के द्वीपों – जावा–सुमात्रा आदि (सुवर्ण द्वीप) तक फैल गया। इसके पूर्व वहाँ हीनयान धर्म ही प्रचलित था। इसके अतिरिक्त इसी युग में तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार भी यहीं से हुआ।

अतिश दीपांकर श्रीज्ञान :

इस महान् विद्वान का सम्मान तिब्बत में एक देवता के समान ही होता है। दसवीं शताब्दी के अन्त में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने अल्प काल में ही बौद्ध शास्त्रों को अधिगत कर लिया था।

उन्होंने तत्कालीन महान बौद्ध दार्शनिक चन्द्रकीर्ति से स्वर्णद्वीप में बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन किया था। इस प्रकार दीपांकर श्रीज्ञान की ख्याति दक्षिण–पूर्वी एशिया में फैल गयी थी। उन्हें बौद्ध आचार्यों का प्रधान मान लिया गया था। वे विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रधान बनाये गये। इसी समय उनको बुलाने के लिये तिब्बत से बार–बार निमन्त्रण तथा भेंटोपहार भी आ रहे थे जिसमें प्रचुर स्वर्ण भी सम्मिलित था। अन्त में विद्वानों के अनुरोध से उन्हें तिब्बत जाना ही पड़ा। दीपांकर ने तिब्बत में संस्कृत बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया। उन्होंने तिब्बती भाषा और दर्शन का भी अध्ययन किया। तेरह वर्षों के प्रवास में उन्होंने वहाँ बहुत से ग्रन्थों की रचना की तथा बौद्ध धर्म को विशुद्ध बनाकर उसे गौरवान्वित कर दिया।[1]

---

1. ग्रेटर इंडिया, आर0 सी0 मजूमदार, पृ0 15–17.

पद्मसंभव

श्रीमती डॉ0 यमुना लाल द्वारा रचित भारत
तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक
नामक पुस्तक से उद्धृत

ऊ–काङ. :

यह चीनी यात्री था जो पाल युग में भारत आया था । 751 ई0 में उसने किपिन (काबुल) ओर गान्धार के बौद्ध केन्द्रों की यात्रा की थी । वह चार वर्ष तक काश्मीर में रहा था और वहाँ उसने विनय का अध्ययन किया था । ऊ–काङ. धर्म धातु के नाम से प्रसिद्ध है ।[1]

कमल–शील :

यह नालन्दा के आचार्य तथा आचार्य शान्त रक्षित के शिष्य थे । शान्ति रक्षित के आदेश से वे तिब्बत गये थे और वहाँ उत्पन्न मतभेदों को अपने विद्याबल से दूर किया था ।[2]

पद्यसंभव :

पद्यसंभव का जन्म उद्यान में हुआ था । बोधगया में उन्होंने धर्म दीक्षा ली और वे तान्त्रिक धर्म (तन्त्रयान) तथा तन्त्रशास्त्र के महान विद्वान और सिद्ध आचार्य थे । वे तिब्बत 747 ई0 में पहुँचे थे ।

तिब्बत व लद्दाख में उनकी आज भी पूजा और स्मृति सुरक्षित है । वे तिब्बत में लामा धर्म के संस्थापक थे ।[3]

इस प्रकार पाल युग में बौद्ध धर्म ने उन्नति के पथ पर चलते हुये तिब्बत में अपना घर बना लिया था जहाँ उसने उस समय शरण ली जब यहाँ मौसुलोपद्रव ओर कलिदावानल से धर्म–विहार जल रहे थे ।

———:0:———

---

1. बौ0 सं0, पृ0 413.
2. स्ट0 बु0 क0 इ0, पृ0 175.
3. हि0 बु0, जि0 3, पृ0 349.

नवम अध्याय

बौद्ध कला, वास्तुशिल्प, मूर्ति एंव चित्रकला

सिन्धु घाटी के अवशेषों को छोड़कर जब हम एक बहुत बड़े अन्तराल के बाद बुद्ध युग में प्रवेश करते हैं तो हमें प्राचीन भारतीय कला का एक नया ही रूप देखने को मिलता है जिसे विद्वानों ने बौद्ध कला का नाम दिया है । इस कला-कर्म के विविध रूप विकसित हुए और उस विकास की कहानी भी बुद्ध के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं से सम्बद्ध है ।

प्रारम्भिक स्वरूप :

यह सत्य ही कहा गया है कि प्राचीन भारतीय कला का प्रारम्भिक रूप बौद्ध कला ही है । बौद्ध कला का प्रारम्भ भी बुद्ध के जन्म तथा जीवन से जुड़ा हुआ है । इसीलिए इसे बौद्ध कला कहते हैं । बुद्ध के जन्म के पूर्वजन्मों की कहानियों को ही जातक (कथाऐं) कहा गया है । भारतीय बौद्ध वास्तु, शिल्प तथा चित्रकला को जातक ग्रन्थों ने अत्यधिक प्रभावित किया है ।

कला के इतिहास में मौर्य कला सिन्धु सभ्यता के बाद दूसरा अध्याय है । विशेषता यह है कि पहले अध्याय (हड़प्पा कला) का दूसरे अध्याय से कोई भी स्पष्ट सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता है । मौर्य काल के उत्तरार्ध में जब अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था, उसी समय से बौद्ध कला का भी अभियान राजाश्रय से प्रारम्भ होता है ।

मौर्य कला में हमें यक्ष और यक्षिणियों की विशाल मूर्तियाँ, पटना, मथुरा, दिदारगंज, विदिशा और परखम आदि स्थानों से प्राप्त होती हैं । अशोकीय कला का भी यक्षों से सम्बन्ध है।

यक्ष भी पूज्य थे अतः उनकी मूर्तियों की प्राप्ति महत्वपूर्ण है । इसके बाद ही अशोक का बुद्ध क्षेत्र में पदापर्ण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अनुश्रुति के अनुसार उसने जम्बूद्वीप में 84000 स्तूपों को स्थापित करवाया था ।[1] इसमें बहुत से

1. प्राचीन भारत, एल0 पी0 शर्मा, पृ0 164.

कालकवलित हो गये, पर सांची, भरहुत आदि स्तूप अशोक कालीन ही बताये गये हैं। इस तथ्य की पुष्टि मंजु श्री मूलकल्प से भी सिद्ध होती है।

नगर-वास्तु

पालि तथा संस्कृत बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित विविध ग्रन्थों में तथा नगरों की भव्यता को बढ़ाने वाले भवनों तथा प्रासादों (महलों) कूप, वापी, परिखा, प्रकार आदि के उल्लेखों से प्राचीन नगर वास्तु कला के विकास का वृतान्त प्राप्त होता है।

राजगृह, चम्पा, वैशाली, श्रावस्ती, कौसाम्बी, मथुरा तथा काशी और तक्षशिला आदि अत्यन्त प्राचीन वैभवशाली नगर थे। जिनका सम्बन्ध बुद्ध के जीवन से भी रहा है।

राजगृह की नगर-परिखा भित्ति के कुछ अंश अब भी देखने को मिलते हैं। इस कला में प्राचीन पाषाण घटना के विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।[1]

मेगस्थनीज ने लकड़ी के बने हुये पाटलिपुत्र के प्रासाद का अति महत्वपूर्ण वर्णन किया है। इतना विशाल लकड़ी का ही बना हुआ प्रासाद सूसा और इकबताना के प्रासादों से भी अधिक भव्य था।[2]

मिलिन्दपन्ह में नगर-नियोजन का वर्णन मिलता है। सांची, भरहुत तथा अमरावती के स्तूपों की वेष्टनी तथा अन्य भागों में हमें इन प्राचीन नगरों की वास्तुकला का चित्रण प्राप्त होता है। वास्तुशिल्प में राजगृह, श्रावस्ती, काशी, कपिलवस्तु, कुशीनगर आदि नगरों के प्रासादों की भव्यता अति महत्वपूर्ण है। जो तत्कालीन समृद्धि का भी साक्ष्य है। यह समृद्धि व्यापार पर आधारित थी तथा बहुत से श्रेष्ठी भी भगवान बुद्ध के अनन्य भक्त थे।

---

1. राजगिरि (गाइड), ए0 इ0 यू0, पृ0 483.
2. प्राचीन भारतीय कला, राजनिति, धर्म, दर्शन, ई0 प्रसाद, शैलेन्द्र शर्मा, पृ0 567.

अनाथपिण्डक श्रेष्ठी ने श्रावस्ती में भगवान के आवास हेतु जेतवनाराम का निर्माण करवाया था । भरहुत रेलिंग पर यह दृश्य अंकित है । साथ ही अभिलेख भी लिखा हुआ है । चित्र में सिक्के भी भूमि पर बिछाये जा रहे हैं ।[1]

स्तूप–निर्माण

बौद्ध धर्म और कला में स्तूप निर्माण का विशेष महत्व है । यह प्राचीन परम्परा थी जिसका विकास बौद्ध युग में विशेषकर हुआ । लौरिया नंदनगढ़ में प्रारम्भिक सूपाकार टीले से प्राप्त होते हैं । इनके अतिरिक्त भी एक विशाल स्तूप – टाइप की इमारत (अंडाकार) भी हैं जिसके चारों ओर चढ़ने की सीढ़ियां हैं ।

परिनिर्वाण महासूत्र से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध की अस्थियों पर पहली बार आठ स्तूप बनवाये गये थे । बाद में अशोक ने जम्बूद्वीप के चौरासी हज़ार नगरों (ग्रामों) में स्तूपों का निर्माण कराया था ।

सांची स्तूप :

परन्तु इस समय भी मालवा में सांची का विशाल स्तूप (नं0 1) दर्शनीय है जिसे अशोक ने बनवाया था जिसके दक्षिणी तोरण के पास अशोकीय–स्तम्भ भी प्रतिष्ठित किया गया था जो आज भी विद्यमान है । इस स्तम्भ पर भी, सारनाथ स्तम्भ की भांति चौकी पर चार सिंह एक दूसरे की पीठ की ओर पीठ किए हुए हैं और चारों दिशाओं में (शाक्य) सिंह 'धर्म घोष' करते हैं । शुंग–सातवाहन युग में इस स्तूप का विस्तार तथा अति सुन्दर शिल्पाकरण के तोरण द्वार और वेदिका एवं प्रदक्षिणा पथ का निर्माण करवाया गया था । यह विशाल स्तूप ही मौर्य–शुंग–सातवाहन काल की बौद्ध कला का उत्कृष्ट 'मॉन्यूमेन्ट' है । इसके अतिरिक्त अशोक युग में यहाँ मठों, विहारों तथा संघारामों के भी निर्माण हुए थे । यहीं अशोक की महादेवी 'विदिशा देवी शाक्य कुमारी' (महेन्द्र एवं संघमित्रा) का विहार भी था । इसके अवशेष सांची में प्राप्त हुए

---

1. मि0 प0, 1/34, 330 से आगे ।

हैं । बड़ी–बड़ी दीवालें, मंडप (हाल) तथा बरामदे प्राप्त हुए थे । इसकी छत और खम्भे, शायद लकड़ी के बने हुये थे ।[1] शुंग सातवाहन युग में भी यह बौद्धों का प्रसिद्ध केन्द्र बना रहा ।

कुषाण तथा गुप्त युग में स्तूपों, मठों, विहारों तथा बौद्ध मन्दिरों के निर्माण में विशेष वृद्धि हुई । इसी प्रकार ईसा की छठी–दसवीं शताब्दी में भी निर्माण कार्य होता रहा । परन्तु बाद में यह स्थान मुस्लिम आक्रमणों का शिकार बना ।

तुमाइन (तुम्बवन) :

तुमाइन में भी अशोक काल के दो स्तूप प्राप्त हुए हैं । इनमें एक तो 38 फिट ऊँचा है और इसका अर्द्ध व्यास 200 फिट है । इसके ऊपर का भाग ईटों से आवृत था ।[2]

भरहुत :

मध्य प्रदेश के सतना जिले में भरहुत का स्तूप तो विश्व में अपनी विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध रहा है । इस स्तूप के चारों ओर वेदिका तथा सूची स्तम्भों पर जातक की कथायें उत्कीर्ण की गयी थीं और उनके नीचे दृश्य का लेबिल (अभिलेख) भी लिखा गया था । इन दृश्यों "अज्ञातशत्रु द्वारा बुद्ध का दर्शन" तथा 'जेतवनाराम का दान' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं । अभी तक हमें यहाँ बुद्ध की मूर्ति का दर्शन नहीं होता है ।

अमरावती :

आन्ध्र प्रदेश में अमरावती का स्तूप कला का अदभुत अलंकृत रूप था ।स्तूप को चारों ओर से संगमरमर के पत्थरों से सजाया गया था और पत्थरों पर सुन्दर बौद्ध कथायें अंकित थीं ।

---

1. आ० स० इं०, 1936–37, पृ० 84 आगे
2. शै० मा०, पृ० 83.

यहाँ बौद्ध प्रतीकों के साथ–साथ पहली बार बुद्ध मूर्ति का भी दर्शन होता है ।

सारनाथ (काशी) :

सारनाथ में अशोक कालीन चौखण्डी और धर्मराजिका स्तूप और स्तम्भ के अतिरिक्त अशोक द्वारा निर्मित प्रसिद्ध (धमेख) स्तूप आज भी प्रत्यक्ष विद्यमान है ।

वैशाली :

वैशाली में भी अशोक स्तम्भ के निकट ही एक झील (सरोवर) के पास कच्चा स्तूप है । जिसके ऊपर बोधिसत्व की मूर्ति एक मन्दिर में स्थापित की हुई आज भी विद्यमान है । यह मूर्ति सम्भवतः कुषाण काल में निर्मित की गयी थी । इसके पास से ही प्राचीन मार्ग राजगृह को जाता था ।

लुम्बिनी तथा कपिलवस्तु के निकट ही निगली सागर के तट पर कनक मुनि बुद्ध का स्तूप था । अशोक ने इसकी मरम्मत करवाई थी ।

काश्मीर :

अशोक के समय काश्मीर में भी संघारामों (धर्मारण्य विहार)का निर्माण करवाया गया था ।

अशोक के उत्तराधिकारी जालोक के समय भी काश्मीर में बौद्ध चैत्य एवं विहारों का निर्माण किया था ।

बंगाल :

बंगाल में भी स्तूपों के निर्माण का विवरण प्राप्त होता है । जिससे गुप्तोत्तर स्तूपों पर प्रकाश पड़ता है । 37 अशराफपुर (ढाका) से एक कांसे का बना हुआ छोटा सा स्तूप तथा राजा देवखड्ग के दो ताम्रपत्र खोजे गये हैं जो

सातवीं शताब्दी के हैं ।[1] एक दूसरा स्तूप जिला दीनाजपुर के अन्तर्गत जोगी गोफा के विहार में स्थित है । यह उपर्युक्त स्तूप अशराफपुर स्तूप के बाद का है ।[2] दोनों स्तूप हर्मिका युक्त छत्रावली से सुसज्जित हैं । इसी प्रकार पहाड़पुर (राजशाही) तथा झेवारी (चिटगांव) से एक-एक कांस्य निर्मित पूजा स्तूप (वोटिव स्तूप) मिला है । इन दोनों का आकार गुम्बदाकार है ।[3]

प्रस्तर स्तूप :

जहाँ तक प्रस्तर विनिर्मित स्तूपों का सम्बन्ध है केवल एक उदाहरण जोगी गोफा विहार' में स्थापित स्तूप का है जो कला की दृष्टि से निम्नकोटि का है ।

महोदय एस0 के0 सरस्वती ने बौद्ध पाण्डुलिपियों के आधार पर बंगाल के बौद्ध स्तूपों पर प्रकाश डाला है । उनके अनुसार वरेन्द्र में 'मृग स्थापन स्तूप' सातवीं शताब्दी में विद्यमान था जिसका वर्णन भी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत आये हुये चीनी यात्री इत्सिंग ने किया है । यह स्तूप अर्द्ध वृत्ताकार था जिसकी छः मेधियाँ कमलाकर थीं ।

अण्ड के ऊपरी भाग में चारों ओर चार बड़े-बड़े आले थे जिनमें भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित थीं जो मालाओं से सुसज्जित थीं । अण्ड के ऊपर चौकोर हर्मिका थी । जिस पर ऊपर की ओर क्रमशः छोटी छत्रावली थी जिसका ऊपरी भाग फहराते हुए झंडों से सुशोभित था ।[4]

दूसरा स्तूप "तुला क्षेत्र वर्धमान स्तूप" बतलाया गया है । वर्धमान की पहचान वर्तमान बर्दमान (पश्चिमी बंगाल) से की गई है ।[5]

---

1. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग 1, पृ0 483 (एडीटेड, डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार), पटना, 1943.
2. वही, पृ0 483.
3. वही, पृ0 484.
4. वही, पृ0 485.
5. वही, पृ0 485-86.

<u>इट्टिका स्तूप</u> :

ईंटों के बने हुए अनेक स्तूपों के अवशेष पहाड़पुर (राजशाही) तथा बहुलारा (बंकुरा) से मिले हैं । दोनों ही स्तूप डॉ0 एस0 के0 सरस्वती के अनुसार दस्वीं शताब्दी से पहले के नहीं हैं ।[1]

<u>मृतिका स्तूप</u> :

चीनी यात्री के यात्रा विवरण से पता चलता है कि लोग मिट्टी के लघु स्तूप भी बनाते थे । नालन्दा, बोधगया, सारनाथ, मीरपुर खास में ऐसे मृतिका स्तूप खुदाई में प्राप्त हुए हैं । इत्सिंग ने लिखा है कि ऐसे स्तूप बनाकर लोग उसमें बौद्ध धर्म का मूल सूत्र[2] लिखवाकर स्तूपों में प्रतिनिधानित करते थे क्योकि बुद्ध धातु सर्वत्र प्राप्य नहीं थे । साथ यह बौद्ध सूत्र बुद्ध का 'धर्म शरीर' माना जाता था । स्तूप दो विशिष्टताओं से परिपूर्ण माने जाते थे – धातु युक्त और पूजा परक ।[3]

डॉ0 सरस्वती से बंगाल में प्राप्त एक सर्वथा नवीन प्रकार के स्तूप का वर्णन किया है । इस स्तूप की मेधि सोलह कोणीय है । प्रत्येक कोण का बाह्य, परिधि की रेखा को स्पर्श करता है । यह स्तूप मोड़ों से भलीभाँति सुसज्जित है जिसमें कमल अंकन प्रमुख है । इस स्तूप का सोलह कोणीय प्रदर्शन नीचे से ऊपर तक दृश्यमान है और पूरा स्तूप एक वृत के भीतर समान सोलह कोणीय नक्षत्र की भाँति सजाया हुआ प्रतीत होता है । यह एक सर्वथा नवीन प्रकार का स्तूप है जो देखने में अनोखा लगता है । इसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है ।[4]

---

1. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 486.
2. ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह ।
3. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 487.
4. वही, पृ0 487–88.

स्तूप के प्रकार

स्तूप निम्नलिखित चार प्रकार के होते थे :

1. **धातु स्तूप :** जिनमें भगवान बुद्ध के अस्थि धातु प्रति निर्धारित किये गये थे । यथा सारनाथ का धर्मराजिका स्तूप ।
2. **स्मारकीय स्तूप :** किसी घटना की स्मृति में निर्मित स्तूप यथा सारनाथ चौखण्डी स्तूप ।
3. **उद्देशिक स्तूप :** किसी उद्देश्य से निर्मित स्तूप यथा सारनाथ का धमेक स्तूप ।
4. **पूजापरक स्तूप :** पूजा आदि के लिये छोटे-छोटे स्तूप जिन्हें साथ ले जाने में कठिनाई न हो ।

इस प्रकार स्तूप कला का विशेष सम्बन्ध बुद्ध के जीवन और दर्शन से रहा है ।

स्तम्भ

अशोक की अमर कला में उसके बनवाये हुए धर्म स्तम्भ (धम्मथम) हैं । अधिकांशतः स्तम्भों पर अशोक ने धम्मलिपियाँ भी लिखवायी थीं, परन्तु कुछ स्तम्भों पर यथा वैशाली के स्तम्भ पर अभिलेख नहीं प्रापत होते हैं । ये अभिलेख बिहार प्रदेश के चम्पारन प्रान्त में लौरिया नन्दनगढ़, लौरिया अरराज तथा रामपुरवा में प्राप्त होते हैं । स्तम्भों पर मौर्यकालीन पालिश की अपनी ही विशेषता है । अशोकीय स्तम्भों के शेषभाग पर पशु-मूर्तियाँ - सिंह, वृषभ, गज (संकिसास्तम्भ), अश्व (लुम्बिनि स्तम्भ) आदि बनी हुई प्रतिष्ठित हैं । ये सभी पशु भगवान बुद्ध के ही प्रतीक हैं ।

सारनाथ के स्तम्भ पर चार सिंह (शाक्य सिंह) चारों दिशाओं में धर्म घोष करते हैं (सिंहोनदति) ।

कनक मुनि स्तूप के पास भी अशोक ने एक स्तम्भ स्थापित करवाया था और उस पर अभिलेख भी उत्कीर्ण हैं। इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि अशोक ने धर्म यात्रा करते हुये इस स्तूप का दर्शन तथा पूजा-अर्चना की थी। इस समय यह स्तम्भ टूटा हुआ पड़ा है।

लुम्बिनि :

भगवान बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनि में भगवान के जन्म के स्थान पर अशोक के एक स्तम्भ (स्मारकीय स्तम्भ) लगवाया था। उस पर अभिलेख भी लिखवाया गया था कि यहीं शाक्य मुनि बुद्ध का जन्म हुआ था (हिद बुधे जाते सक्य मुनीति)।

चैत्य एवं गुहा विहार

बिहार प्रदेश (गया की पहाड़ी) भारत के पर्वत भी स्वयं पवित्र थे और वहाँ प्रकृति निर्मित गुफाएं भी थीं तथा आज भी बहुत सी गुफाएं हैं। भारतीय कला में अशोक ने चैत्य-निर्माण कला को भी विकसित किया। आयताकार चैत्य-हाल तथा इसके अन्तिम छोर पर अर्द्ध गोलाकर स्थान में स्तूप का निर्माण किया जाता था। स्तूप के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ भी होता था।

गया के पास बराबर की पहाड़ियों में अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ द्वारा बनवायी हुई गुफायें आज भी विद्यमान हैं। यही सबसे प्रसिद्ध गुफा लोमस ऋषि की गुफा है जिसके द्वार पर गज-पंक्तियां दर्शनीय हैं।

साँची में गुप्तकालीन विहारों के अवशेष और साक्ष्य प्राप्त होते हैं। यहाँ से दक्षिणापथ की ओर बढ़ने पर हमें अजन्ता के शान्त विहार-मण्डल के निर्जन क्षेत्र में बनी हुई उन्तीस गुफाएं वाकाटक-गुप्त युग की बौद्ध-कला का अति उज्ज्वल स्वरूप दर्शाती हैं। नीचे जल हेतु पहाड़ी नदी (गिरि नदी) बहती है और उसके किनारे-किनारे अर्द्धचन्द्राकार रूप में ये गुफाएं खोदी गई थीं। यहाँ हमें वास्तु, शिल्प

(मूर्तिकला) तथा चित्रकला की त्रिवेणी का दर्शन होता है ।

अजन्ता की गुफाएँ चैत्य तथा विहार का सन्धिकाल दृष्टिगोचर होता है । चैत्यों में केवल चैत्य ही बुद्ध मूर्ति के प्रतीक हैं । विहारों में चैत्यों का स्थान मूर्ति ले लेती हैं । इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे चैत्य भी हैं जिनमें बुद्ध की मूर्ति भी उत्कीर्ण है । इस प्रकार हमें यहाँ हीनयान और महायान दोनों की वास्तुकला का दर्शन होता है ।

पश्चिमी भारत

परन्तु सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण गुफायें सह्य पर्वत (पश्चिमी घाट) में पूना के पास माजा को चैत्य अपनी काष्ठ शिल्प कला के लिये भी प्रसिद्ध है । पास में ही काले, कोण्डाने तथा बेदस आदि की गुफाएं भी प्रसिद्ध हैं । नासिक में सातवाहन वंश के सम्राट् कृष्ण (कान्ह) ने भी बौद्धों के लिए लेण (लयन) खुदवाये थे । यहाँ की अधिकांश गुफाएँ या चैत्य शक–सातवाहन युग में ही निर्मित हुए थे ।

आन्ध्र प्रदेश

सातवाहन युग में धान्य कटक, अमरावती तथा नागार्जुनी कोण्डा प्रसिद्ध स्थान, बौद्ध धर्म, शिक्षा और कला के केन्द्र थे । अमरावती का स्तूप तो विश्व भर में प्रसिद्ध है ।

महाराष्ट्र प्रदेश

एलोरा गुफायें (गुफा विहार) :

अजन्ता की गुफाओं चैत्य विहारों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है । ईसा की आठवीं शताब्दी प्रासाद – कला (मन्दिर निर्माण) का विशेष युग था जब मन्दिरों का निर्माण शिलाखण्डों की पाषाण–घटना अथवा पहाड़ियों या पहाड़ को ही काटकर गुफाओं की तरह किया गया था । यहाँ गोदावरी नदी की घाटी में 33 गुफायें हैं जिनमें

बारह बौद्धों की (1 से 12 तक), सोलह ब्राह्मणों की (13 से 28 तक) और पॉंच जैनों (29 से 33 तक) की हैं।बौद्ध गुफाएँ सिरे पर हैं। ये विशाल गुफा मन्दिर अत्यन्त दर्शनीय तथा महत्वपूर्ण हैं।

ये गुफाएं लगभग 550 ई0 और 1250 ई0 के बीच बनायी गई थीं। यहाँ विशाल बुद्ध और बोधिसत्व मूर्तियाँ भी पहाड़ के शिलाखण्डों को काटकर ही बनायी गयी थीं। ये अत्यन्त दर्शनीय हैं और आज भी जीवित प्रतीत होती हैं।

औरंगाबाद के गुफा विहार और चैत्य भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियों के अलावा जातक कथाएँ भी उत्कीर्ण की गई हैं।

विहार-वास्तु

यद्यपि बौद्ध धर्म निवृत्ति–प्रधान सन्यासात्मक धर्म था। जिसके अनुसार बुद्ध की भाँति भिक्षुओं को पृथिवी पर भ्रमण करना ही उपदिष्ट था। परन्तु वर्षाकाल में विशेषकर बिहार, उड़ीसा और पूर्वी उत्तर प्रदेश में गहरी और चौड़ी नदियों का जाल बिछा हुआ है। वर्षा काल में वे भयानक रूप धारण कर लेती हैं जिन्हें बिना पुल के पार करना अब भी दुष्कर है।

प्राचीन काल में भी यही दशा थी। उन पर पुल आदि नहीं थे। लकड़ियों–लट्ठों के ही पुल या सेतु छोटी–छोटी नदियों पर थे और उनका भी प्रयोग शरद ऋतु तथा ग्रीष्म काल में हो सकता था।सार्थ (व्यापारी गण) भी वर्षा काल में यात्रायें बन्द कर देते थे। इसलिए बौद्ध भिक्षुओं को भी प्राचीन ऋषियों की भाँति चातुर्मास्य (व्रत) या वर्षावास के लिये सुरक्षित छाया वाले स्थान की आवश्यकता थी। कहीं–कहीं पहाड़ों में बनी हुई गुफायें ही काम देती थीं। इसकी पूर्ति मठों और विहारों द्वारा की गयी थी। इनमें भिक्षुओं का निवास स्थान तथा पूजा, साधना, प्रवचन और धर्म श्रवण का स्थान – दो प्रकार की इमारतों का निर्माण किया गया।

चुल्लवग्ग से यह पता चलता है कि सबसे पहले भगवान बुद्ध से आज्ञा प्राप्त कर राजगृह के एक श्रेष्ठी ने साठ विहारों का निर्माण करवाया था ।[1] बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि विहार के लिये चयनित भूमि गाँव या नगर के न बहुत समीप और न बहुत दूर होनी चाहिए ताकि बुद्धानुयायियों के लिए पहुँचना कठिन न हो ।[2] विहार निर्माण और उसकी मरम्मत को 'नवकम्म' तथा उस निर्माण कार्य की देखभाल करने वाले वास्तुविद को नवकम्मिक कहते थे ।[3] स्थापत्य विशारद को वास्तुज्ञ[4] कहा जाता था । विहार की निर्माण सामग्री में ईंटा, खपरैल, पत्थर, लकड़ी तथा चूना मिट्टी की विशेष आवश्यकता होती थी ।[5] भूरी मिली मिट्टी से जिसे धुसर्पिण्डक कहते थे उसकी दीवालों की और छत की लेसाई की जाती थी ।

विहारों, आँगन, कोट्ठक, भोजनशाला, सभागार, अग्निशाला, शौचालय, चंकम, कुआँ आदि का होना आवश्यक था । समीप में जलाशय (पुष्करणी) भी होती थी ।[6] सुरक्षा के लिये फाटक तथा कोठरियों में ताला–चाभी (यन्तक सूचिक)[7] का प्रयोग किया जाता था । पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप विभिन्न बौद्ध केन्द्रों में मौर्य, कुषाण और गुप्त, पाल तथा गहड़वाल काल के विहारों और संघारामों के अवशेष प्राप्त हुए हैं ।

गुप्त काल के बाद विहारों के निर्माण में पहले जैसी तेजी दिखाई नहीं पड़ती । ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से अवश्य उन पर प्रकाश पड़ता है । लेकिन उससे विहार के वास्तु कला पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता । यद्यपि उसका वर्णन यह अवश्य

---

1. चुल्लवग्ग के अन्तर्गत, सेनासन-क्खंधक
2. चुल्लवग्ग, पृ0 252, पं0 24–25.
3. वही, पृ0 253–54.
4. सौ0, 1/41.
5. चुल्लवग्ग, पृ0 247–48.
6. दृष्टव्य, चुल्लवग्ग सेनासनक्खंधक
7. चुल्लवग्ग, पृ0 241, पं0 11.

दर्शाता है कि कुछ विहार कई मंजिलों के थे । मुर्शिदाबाद जिले में रांगामाटी के राक्षसी डांगा टीले से जिस विहार के अवशेष मिले हैं उनसे उसकी स्थिति छठवीं–सातवीं ई0 तक सिद्ध है । रांगामाटी की पहचान कर्ण सुवर्ण से की गई है । जिसके विहार का उल्लेख ह्वेनसांग ने लो–टो–मो–चि नाम से किया है ।[1]

चीनी यात्री इत्सिंग 686 ई0 में सारनाथ आया था । उसने सारनाथ में उस समय महाबोधि के पूरब की ओर दक्षिण के राजा आदित्य सेन द्वारा निर्मित एक विहार देखा था । दक्षिण से आने वाले भिक्षु इसी विहार में ठहरते थे । उस समय सारनाथ में सर्वास्तिवादियों का प्रभुत्व था ।[2]

पाल शासक धर्मपाल ने (आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में) सोमपुर में (आधुनिक ओमपुर) में विशाल बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था । यहाँ से अभिलेख इस प्रकार मिला है :–

"श्री सोमपुरे श्री धर्मपाल देव महाविहारीय आर्य भिक्षु संघस्य"

यहाँ से प्राप्त अवशेषों के आधार पर महोदय के0 एन0 दीक्षित ने कहा था कि बंगाल में प्राप्त यह विशाल संघाराम जिसकी दीवालों की मोटाई ही यह सूचित करती है कि विहार कई मंजिल का था ।[3] इस विहार का मुख्य द्वार उत्तर की ओर था जहाँ ऊँची ओटियों वाला जीना मिला है । यह जीना ऊँचे धरातल पर निर्मित स्तम्भों वाले प्राशाल तक जाता था । यह प्राशाल भी उत्तर की ओर खुलता था । दक्षिणी दीवाल में भी एक दरवाजा था । आँगन के इस मुख्य मन्दिर के दायीं और बायीं ओर भिक्षुओं के रहने के लिये कोठरियाँ थीं । प्रत्येक कोठरी की लम्बाई 13'6" है । कोठरियों के आगे चारों ओर 8–9 फीट चौड़ा बरामदा है । जिससे बीच के आँगन से उतरने के लिये चारों ओर बीच में सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । कालान्तर में भिक्षु विपुल श्री मिश्र ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था ।[4]

---

1. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, जि0 1, पृ0 489.
2. सारनाथ का इतिहास, पृ0 18.
3. आ0 स0 इ0, 1927–28, पृ0 106.
4. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, जि0 1, पृ0 489–493.

पाल शासक महीपाल ने सारनाथ में 1027 ई0 में स्थिरपाल और बसन्तपाल द्वारा धर्म राजिका एवं धर्म चक्र (धमेक) स्तूपों का संवर्धन करवाया था। इसी समय गन्धकुटी को पत्थरों से सुशोभित करवाया गया था।[1]

7वीं से 12वीं ई0 तक के कुशीनगर से प्राप्त अभिलेखों से यहाँ के श्री बन्धन महाविहार, श्री महापरि निर्वाण महाविहार, गाथा नाना विहार, एरण्ड महाविहार की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है।[2] उत्तर भारत में सर्वाधिक प्रसिद्ध राज्य कन्नौज के गहड़वाल शासकों में (11वीं व 12वीं शताब्दी में) गोविन्द चन्द्र राजा थे। उनकी रानी का नाम कुमार देवी था। जयचन्द्र, गोविन्द चन्द्र के पौत्र थे। बौद्ध स्थापत्य में कुमार देवी का महत्वपूर्ण योगदान था जिसने सारनाथ में 'धर्म चक्र जिन विहार' का निर्माण करवाया था।[3] इस विहार की लम्बाई पूर्व से पश्चिम को 760 फीट थी। गर्मियों में रहने योग्य एक तलघर बनवाया गया था जिसे सुरंग कहा जाता है। उसी में भगवान बुद्ध की एक भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गयी थी। विहार में उत्तर पूर्व और दक्षिण में तीनों ओर कोठरियाँ थीं। विहार के बीच में स्नान गृह और एक जल कूप था। भिक्षुओं के पठन-पाठन के लिए विहार के प्रांगण में परिवेण बनाया गया था। विहार के मध्य भाग में एक मन्दिर था जिसमें भगवान बुद्ध की विशाल मूर्ति स्थापित की गई थी। यह मन्दिर सारनाथ के सभी मन्दिरों में सुन्दर और दर्शनीय था। जिसे मध्यकालीन बौद्ध स्थापत्य कला का उत्तम प्रतीक माना जा सकता है। इस विहार के निर्माण में पत्थरों का उपयोग भी हुआ है।

धर्म चक्र जिन विहार के खर्च के लिये कुमारदेवी ने वाराणसी की सबसे बड़ी तहसील जम्बुकी का दान इसके भिक्षु संघ को दिया था।[4]

---

1. सारनाथ का इतिहास, पृ0 84.
2. दृष्टव्य, कुशीनगर का इतिहास, पृ0 142-144 तथा 112.
3. सारनाथ, वी0 एस0 अग्रवाल, पृ0 6.
4. सारनाथ का इतिहास, पृ0 88.

गहड़वाल महारानी कुमारदेवी ने केवल धर्मचक्र जिन विहार का निर्माण ही नहीं करवाया अपितु मौर्य सम्राट अशोक द्वारा निर्मित कुटी में भगवान बुद्ध की मूर्ति की उसने पुनः प्रतिष्ठा की और उसके नाम का अलग विहार भी बनवाया था ।[1]

जयचन्द्र के बौद्ध दीक्षा गुरु जगन्मित्रानन्द थे ।[2] महाराज जयचन्द्र की प्रमुख रानी भी बौद्ध धर्मावलम्बी थी जिसके लिये लिखी गई 'प्रज्ञापारमिता' पुस्तक की एक प्रति अब भी नेपाल के दरबार पुस्तकालय में विद्यमान है ।[3]

बौद्ध केन्द्र श्रावस्ती भी गहड़वाल शासकों के निर्माण कार्य और दान से वंचित न रहा । इस वंश के राज मदनपाल और उसके सुपुत्र गोविन्द चन्द का संरक्षण श्रावस्ती को भी मिला । मदनपाल के शासनकाल सम्वत 1176–1119 ई0 का एक लेख जेतवन संघाराम नं0 19 में मिला है । जिससे पता चलता है कि उसके मन्त्री विद्याधर ने शैव धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था और अपना साराधन जेतवन में एक विहार को बनवाने में लगा दिया था ।[4]

उत्खनन में विद्याधर द्वारा स्थापित इस विहार के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर यह विहार वर्गाकार था जिसकी प्रत्येक भुजा 118 फुट लम्बी थी । मध्य भाग में प्रचलित विहार वास्तु की भाँति खुला हुआ आँगन था जिसके चारों ओर बरामदा और उसके पीछे भिक्षुओं के रहने के लिए कोठरियाँ थीं । मुख्य द्वार के सामने पीछे की दीवाल के बीच में स्थित कोठरी मन्दिर का रूप थी, जिसमें स्थापित भगवान बुद्ध की प्रतिमा मुख्य द्वार से आँगन में आते ही दिखाई देती थी । चारों ओर के बरामदे की छत आँगन की ओर खम्भों पर टिकी थी । बरामदा और आँगन का फर्श कंकठरा (कंकरीट) द्वारा बनाया गया था । इसमें कुल 24 कोठरियाँ हैं । पश्चिमी

---

1. सारनाथ का इतिहास, पृ0 88–89.
2. वही, पृ0 91.
3. गाइड टु सारनाथ, डी0 आर0 साहनी, पृ0 32.
4. श्रावस्ती, भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा प्रकाशित, पृ0 11–12.

दीवाल के सहारे 4 फुट उँचा मंच बना है । जिस पर भगवान बुद्ध की प्रतिमा स्थापित थी ।[1]

दूसरा लेख गोविन्द चन्द्र के शासन काल 1129–30 ई0 का है जिससे ज्ञात होता है कि राजा ने श्रावस्ती के आसपास के छः गाँव जेतवन महाविहार के भिक्षु संघ के लिये दान कर दिये थे ।[2]

बौद्ध कला में प्रतीकवाद

प्रारम्भिक बौद्ध कला प्रतीकात्मक है, क्योंकि उसमें भगवान बुद्ध की उपस्थिति मूर्ति के रूप में न दिखाकर कुछ प्रतीकों द्वारा व्यक्त की गयी है । भगवान बुद्ध, उनके जीवन एवं उनके धर्म से प्रभावित कला को ही बौद्ध कला नाम देना न्याय संगत है । इस कला का प्रारम्भ महाराज अशोक के पूर्व नहीं हुआ था, यद्यपि बुद्ध और उनके धर्म का विकास लगभग दो सौ वर्ष पूर्व ही हो चुका था ।

भगवान के परिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियों पर स्तूप बनवाये गये थे । ये स्तूप राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकम्प, रामग्राम, वेथदीप और कुशीनगर बनवाये गये थे । किन्तु वे कालान्तर में स्थित नहीं पाये गये और एक ऐसी अनुश्रुति है कि अशोक ने उन आठ धातु स्तूपों में से सात[3] को खुदवाकर उनमें निविष्ट शरीर

---

1. श्रावस्ती, पृ0 14–15.
2. वही, पृ0 12.
3. प्रारम्भ में निर्मित 10 स्तूपों में से द्रोण विद्वान् ने जिसने अस्थि विभाजन करवाया था) अस्थियों वाले घड़ों को प्रतिनिधिनित करके एक स्तूप बनवाया था । अस्थि विभाजन के बाद में पहुँच सकने के कारण मोरिय लोगों ने चिता में बचे हुए कोयले को अपनी राजधानी पिप्पली ले जाकर उसके ऊपर स्तूप बनवाया था । वे दो स्तूप ऐसे बने थे जिनमें भगवान बुद्ध की अस्थियाँ नही थीं । शेष आठ स्तूपों में तथागत के धातु (अस्थियां) विद्यमान थीं । मौर्य सम्राट अशोक ने रामग्राम के धातु स्तूप की धातुओं के अलावा शेष सातों धातु स्तूपों की अस्थि धातु निकलवाकर उन्हें चौरासी हजार (अथवा अस्सी हजार भागों में) विभाजित कर उतने ही स्तूप बनवाये थे ।

धातु अवशिष्टों को चौरासी हजार भागों में विभाजित कर जम्बूद्वीप के चौरासी हजार (अथवा अस्सी हजार)[1] नगर निगम और ग्रामों में स्तूपों का निर्माण करवाया था।

अशोकीय कला में ही हम वास्तव में बौद्ध कला का प्रारम्भ या उदय देख सकते हैं। अशोकीय कला के प्रमुख अंग इस प्रकार हैं :

1. स्तूप
2. स्तम्भ
3. चैत्य (शिलोत्खात गुफायें) एवं
4. विविध पशु मूर्तियाँ – जिन्हें हम स्तम्भ शीर्षों पर प्रतिष्ठित पाते हैं।

ये मूर्तिगामी भगवान बुद्ध के स्वरूप का परिचय देती हैं, क्योंकि भगवान् बुद्ध के मनुष्य रूप में मूर्त करने को मना किया था। ब्रह्मजाल सुत्त में कहा गया है कि **"याव अस्स कायो तिट्ठति ताव न दिस्सन्ति देव मनुसा"**।[2] इस प्रकार उनके शरीर धातु पर निर्मित स्तूप या चैत्य तथा बोधि वृक्ष भी उनका ही प्रतीक है जिनकी प्रतिष्ठापना सभी स्थानों पर की गयी थी।[3] स्तूपों का त्रिरत्न, छत्रयुक्त अश्व बोधि वृक्ष का अंकन बुद्ध के प्रतीक माने जाते थे।

इसी प्रकार शारीरिक (शरीर धातु) उद्देशिक (यथा त्रिरत्न हाथो–सब्बसेतो गजतमो लोक सुखा करो) तथा पारिभोगिक (यथा–भिक्षा पात्र, आसन, सिंहासन, वज्रासन एवं बोधि –मंड) को ही प्रारम्भिक बौद्ध कथा (जातक) प्रधान कला में प्रदर्शित पाते हैं।

---

1. पालि बौद्ध ग्रन्थों में स्तूप संख्या चौरासी हजार मिलती है। लेकिन अश्वघोष ने अपने महाकाव्य बुद्ध चरित (28) में यह संख्या अस्सी हजार लिखी है।
2. ब्रह्मजाल सुत्त
3. वन्दामि चेतियं सब्बं सब्ब ठानेसु प्रतिट्टतं।
   सारीरिक धातु महाबोधिं बुद्ध रूपं सकलं सदा॥

बौद्ध मूर्ति कला

भारत के धार्मिक इतिहास में कुषाण युग का कई कारणों से विशेष महत्व है । इस युग में अशोक-युग की भाँति बौद्ध धर्म की विशेष उन्नतिं तथा भारत के बाहर भी इसका अत्यधिक प्रसार-प्रचार हुआ था ।

सम्भवतः केडफाइसेस प्रथम के सिक्के पर बैठी हुई आकृति बुद्ध मूर्ति ही है, जैसा डॉ0 स्मिथ का विचार है ।[1]

कनिष्क प्रथम का युग बौद्ध धर्म के उत्थान का युग था । भारतीय बौद्ध सम्राटों में कनिष्क प्रथम का स्थान अशोक की तरह ही महत्वपूर्ण है । उसने 23 वर्ष तक राज्य किया था जिसमें विजयों तथा विजित प्रदेशों का सुदृढ़ शासन था । इस कारण राज्य में शान्ति और समृद्धि थी । आर्थिक समृद्धि से उसने धार्मिक और साहित्यिक उन्नति को आगे बढ़ाया था । उसका विस्तृत साम्राज्य पाटलिपुत्र से लेकर गान्धार और सिन्ध प्रान्त तथा भावलपुर राज्य एवं उत्तरापथ और हिमालय के उस पार मध्य एशिया में भी स्थित था । इस विस्तृत क्षेत्र में उसके अभिलेख और सिक्के प्राप्त होते हैं । उसके अभिलेखों में स्तूप और बौद्ध धर्म सम्बन्धी दानों के सांची, श्रावस्ती, सारनाथ और कौशाम्बी में मिलते हैं । इसके स्वर्ण सिक्कों पर बुद्ध मूर्ति अंकित है तथा उस पर अभिलेख 'बोड्डो' लिखा हुआ प्राप्त होता है ।

बौद्ध धर्म और कला के इतिहास में देव पुत्र कनिष्क प्रथम का युग विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

कुषाण युग में हमारा ध्यान अधिकांशतः मध्य देश (मथुरा, सारनाथ एवं श्रावस्ती आदि) तथा उत्तरापथ में जालन्धर, तक्षशिला, बामियान काबुल घाटी) और काश्मीर तथा हिमालय के उस पार मध्य एशिया में जाता है । कुषाण कला में भी स्तूपों, विहारों और मठों महाविहारों का निर्माण विशेष रूप से हुआ था ।

---

1. के0 क्वा0 इ0 म्यु0, वाल्यूम, 1, कुषाण क्वान्स .

अवलोकितेश्वर ।कांस्य प्रतिमा।
12वी शताब्दी ई0, पटना म्यूज़ियम
।द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0एस0 अग्रवाल, 1984 से साभार।

इस युग में बौद्ध कला के दो विशेष केन्द्रों – मथुरा और गान्धार का विकास हुआ। इसी समय बुद्ध की मानव मूर्ति ने भी भक्त हृदय को अपने शान्त स्वरूप से आह्लादित किया। मथुरा की कला भारतीय कला के आदर्शों – शान्त, आन्तरिक गाम्भीर्य तथा योगी स्वरूप का प्रदर्शन करती है जिससे दर्शक को भी ध्यान की प्रेरणा मिलती है। गान्धार की कला में बुद्ध मूर्ति तथा बौद्ध वृत्तों को यूनानी कला के सिद्धान्तों पर गढ़ा गया। इसीलिए इसे "ग्रश्यो – बुद्धिस्ट आर्ट" भी कहते हैं। इसका क्षेत्र उत्तरापथ विशेष कर काबुल – स्वात नदी की घाटी उद्यान था। यही बामियान, कपिस आदि प्रसिद्ध बौद्ध कला केन्द्र थे। तक्षशिला भी इसी क्षेत्र का प्रमुख बौद्ध केन्द्र स्थान था।

गुप्त कालीन स्वर्ण युग में बौद्ध कला का उच्चतम उत्कर्ष सारनाथ (काशी) तथा मथुरा में विशेष रूप से हुआ। इस युग की बौद्ध कला में विहार, मठ तथा आराम, कूप आदि विशेष कला कृतियाँ थीं। मूर्तिकला के क्षेत्र में बुद्ध, ध्यानी बुद्ध एवं बोधिसत्वों – अवलोकितेश्वर आदि के प्रमुख रूप थे। सारनाथ (संग्रहालय) की बैठी हुई भगवान बुद्ध की मूर्ति सबसे सुन्दर और श्रेष्ठ कही गयी है। इसी प्रकार मथुरा की खड़ी हुई बुद्ध मूर्ति अपने ढंग की श्रेष्ठ मानी जाती है। गुप्त-युग में कला ने भी काव्य का रूप ले लिया था जैसा कि हम इस युग के सिक्कों तथा मूर्तियों में चित्रित पाते हैं।

भारतीय कला का स्वरूप :

जिस वाक्य का वचन सेरसानुभूति–आनन्द प्राप्त हो वह काव्य कहलाता है (रसात्मकं वाक्यं काव्यं) यह लोकोत्तर आनन्द ही है। काव्य और कला के क्षेत्र में अश्वघोष और आर्यशूर प्रभृति काव्य मर्मज्ञ होते हुए भी उच्च कोटि के कलाकार थे जिनका हृदय धर्म से परिप्लावित हो रहा था। इस प्रकार कला का भी वही उद्‌देश्य है जो धर्म का रहा है। सांची के उत्तरी द्वार पर के शीर्ष पर त्रिशूल सा बना चिह्न त्रिरत्न बना हुआ है, जो एक अनजान मनुष्य को त्रिरत्न–बुद्ध, धर्म और संघ का

बुद्ध का महापरिनिर्वाण (600–642 ई0)
अजन्ता गुफा सं0 26
(द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0 एस0 अग्रवाल, 1984 से साभार)
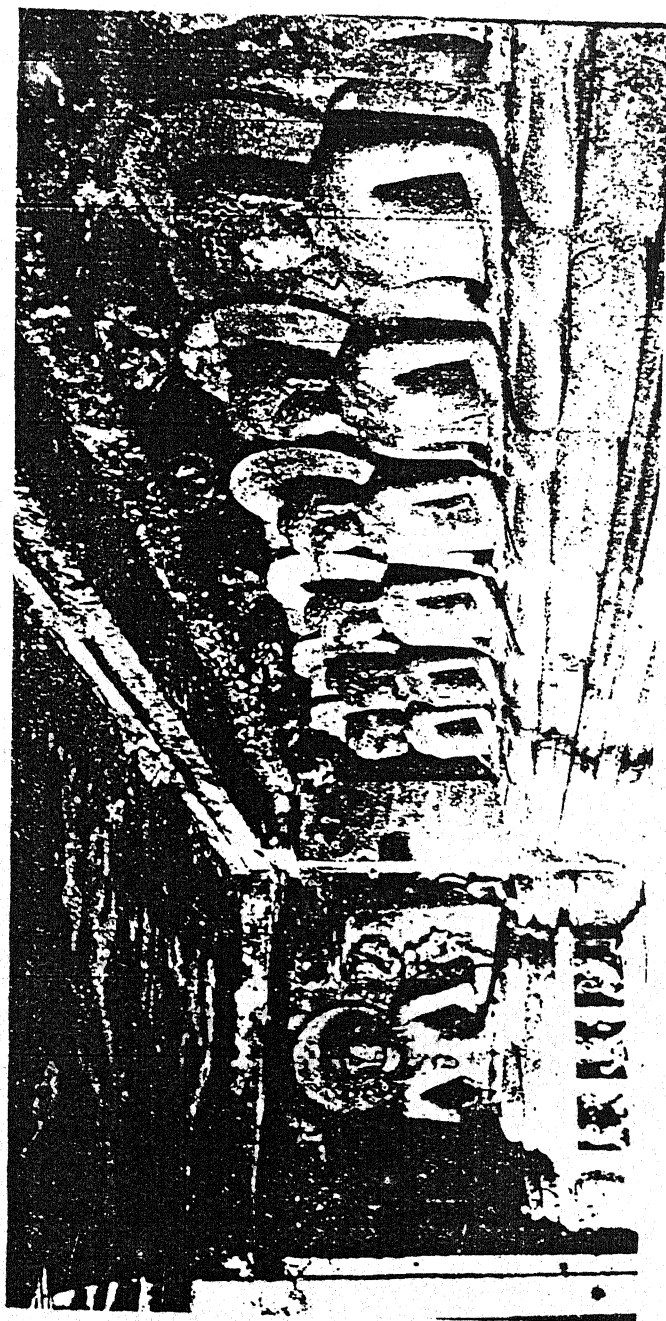
ध्यानमग्न बुद्ध (700–735 ई0)

गुफा सं0 12

एलोरा

।द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0एस0 अग्रवाल, 1984 से साभार।

मंजूश्री ।कांस्य प्रतिमा।
8वीं-9वीं शताब्दी ई0 नालन्दा

(द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0 एस0 अग्रवाल से साभार)

पद्मपाणि ।कांस्य प्रतिमा।
8वीं शताब्दी ई0
पटना म्यूजियम

।द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0एस0 अग्रवाल से साभार।

स्मरण कराता है । एक घोड़ा सजा है और उस पर छत्र भी लगा है परन्तु कोई सवार नहीं है । यह वह घोड़ा है जिसने रात्रि में अभिनिष्क्रमण के समय बुद्ध का वहन किया था ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म के कठिन सिद्धान्तों को कलाकार ने छेनी, हथौड़ी और तूलिका से प्रतीकों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया था । प्रारम्भिक बौद्ध कला को यदि जातक कला का नाम दिया जाय तो अनुचित न होगा । जातक ग्रन्थों में तथागत के पूर्व जीवन से सम्बन्धित कथायें हैं जिनका चित्रण भरहुत की कला के अतिरिक्त अजन्ता की गुफाओं में भी चित्रित हैं ।

महायान धर्म के स्वर्णयुगम में आर्यशूर ने जातक-माला नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की थी । इसमें भी भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाओं का संस्कृत-काव्य शैली में वर्णन किया गया है ।"अजन्ता की भित्ति-चित्रण कला में भी इनका वर्णन किया गया है । अजन्ता की भित्ति चित्रण कला में जातक माला की भी कुछ कथायें चित्रित हैं ।"[1]

अजन्ता गुहा-मण्डल एक पुण्य क्षेत्र था जहाँ बौद्ध साधक ध्यान और योग साधना (विपश्यना) करते रहते थे । वहाँ की बौद्ध कला-वास्तु, मूर्ति और चित्रकला उन योगी भिक्षुओं तथा उपासकों की ही देन है, जिसने सम्पूर्ण विश्व को सम्मोहित कर लिया है । यह वास्तु कठिन शिल्प कर्म था जिसमें कड़े पत्थर की पहाड़ी को काटकर बिना जोड़ के शालाओं का निर्माण किया गया है । इसकी मूर्ति शिल्प कला उससे भी कठिन है । जहाँ बुद्ध (ध्यानी बुद्धों) एवं बोधिसत्वों तथा पशुओं और पक्षियों एवं अन्य मूर्तियों को तराशकर बनाना अत्यन्त गुरुतर कार्य था ।

---

1. जा0 मा0, इन्ट्रोडक्शन, पृ0 8-9.

भगवान बुद्ध

7वी शताब्दी ई0, गुफा सं0-1, अजन्ता

।द हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वी0एस0 अग्रवाल से साभार।

सबसे अधिक कठिन कार्य चित्रकर्म था । विशेष कर छतों पर चित्र बनाना और चित्रों में भिन्न-भिन्न दृश्यों या कथाओं का वर्णन कठिनतम साधना थी । ये साधना के चरण ही उसे निर्वाण तक प्रज्ञा और तितिक्षा के माध्यम से चढ़ने के लिए गम्भीर बनाते थे । यहाँ की समपूर्ण कला उनकी धृति का ही चित्रण है ।

ये गुफायें ईसा पूर्व की द्वितीय शताब्दी से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक बनती रहीं । सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भी यहाँ चहल-पहल रही परन्तु बाद में लोग यहाँ से अन्यत्र चले गये । यह बौद्ध धर्म का तपोवन ही था ।

वैड्र्यकुट्टिम मनोहर शाद्वलानि ।

क्रीडावनाधिक सुखानि तपोवनानि ।।[1]

बौद्ध चित्रकला

भारतीय चित्रकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है । प्रागैतिहासिक गुफाओं (मध्य प्रदेश, रायसेन, भीमबेटका आदि) में हमें वन्य-जीवन (मृगया) से सम्बन्धित चित्र प्राप्त होते हैं । बुधगुप्त के समय सारनाथ की बौद्ध प्रतिमा (गु० सं० 157 = 476 ई०) में भी चित्रण किया गया था (चित्र विद्यास निर्माता) । परन्तु अजन्ता की गुफायें पूर्ण रूप से बौद्ध गुफायें हैं, जो संसार के कोलाहल से दूर निर्जन वन में ध्यान-समाधि-साधना के उपयुक्त थीं । प्रकृति का सौन्दर्य और शान्त वातावरण मन को शान्ति तथा चित्त के ध्यान को पुष्ट करते थे । इनके निर्माता अनाम ही थे । वे बौद्ध-योगी थे । अजन्ता की गुफायें अपनी चित्रकला के लिये विश्व में प्रसिद्ध हैं । इस भित्ति-चित्रकला को "फ्रेस्को पेन्टिंग" का नाम दिया गया है । इसकी अपनी ही शैली थी जिस पर प्राचीन भारतीय लेपकला का प्रयोग किया गया है । रंग भी प्रायः भारतीय ही हैं और अधिकांश स्थानीय पहाड़ी ही में मिलते हैं । केवल नीले रंग के प्रयोग के लिये 'लेपिस लेजुली' को ईरान से मंगाते थे ।

---

1. जा० मा०, 8/33.

चित्रण विषय :

चित्रित विषयों को तीन भागों में विभक्त किया गया है :–

1. अलंकरण
2. रूप चित्रण एवं आख्यान–चित्रण
3. प्रकृति–चित्रण

आख्यानात्मक दृश्य जातक कथाओं से लिए गये हैं । गुफा सं0 9 व 10 में सबसे प्राचीन चित्र हैं । 16 नं0 की गुफा में भी कुछ चित्रों के अंश बच गये हैं । इसमें नन्द का बौद्ध धर्म में दीक्षित होना चित्रित है ।

सारांश

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्टतः सिद्ध है कि गुप्त काल के पश्चात् भी बारहवीं तेरहवीं शताब्दी तक भारत में बौद्ध कला और निर्माण कार्य चलता रहा । बौद्ध स्तूपों का निर्माण और संवर्द्धन कार्य बराबर होता रहा है । डॉ0 वी0 एस0 अग्रवाल का मत है कि मूल स्तूप को 'अल्पेशाख्यं' कहते थे और संवर्द्धन के बाद उसे महेशाख्य कहते थे ।चैत्य और गुहा विहारों का निर्माण पूर्वी दक्षिणी भारत के क्षेत्रों में विशेष रूप से हुआ । इस प्रकार विहार–निर्माण में जहाँ पूर्वी भारत में पाल शासकों को विशेष योगदान था वहीं उत्तरी भारत में (श्रावस्ती, सारनाथ आदि में) वाराणसी और कन्नौज के गहड़वालों का योगदान भी स्तुत्य था ।गहड़वाल रानी कुमारदेवी द्वारा सारनाथ में विनिर्मित 'धर्मचक्र जिन विहार' सबसे विशाल और श्रेष्ठ विहार था । इसी प्रकार इसी युग का श्रावस्ती में विहार सं0 19 विशेष रूप से आकर्षण का केन्द्र रहा था । बौद्ध कला में प्रतीकवाद इस अध्यायकी अपनी विशेषता है । कला के दूसरे अंगों – मूर्तिकला और चित्रकला का भी विशेष रूप से वर्णन किया गया है ।

———————:0:———————

दशम अध्याय

भारत में बौद्ध पराभव

वैदिक धर्म की सबसे बड़ी विशेषता समाज का वर्गीकरण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व एवं शूद्र में) था। इस वर्गीकरण में जो वर्ण क्रम में पहले था उसके लोग उतने ही अधिक अधिकार सम्पन्न और शुद्ध माने जाते थे। निम्न वर्ण के लोग सेवक माने जाते थे और सुरक्षा हेतु संघर्ष किया करते थे। सेवा कार्य उन्हें दण्ड स्वरूप दिया गया था। इस वैदिक वर्ण–भेद ने समाज में एक अन्तर कलह को जन्म दिया। इस व्यवस्था में पीड़ित लोगों ने नये धार्मिक तथा दार्शनिक आदर्शों की खोज प्रारम्भ की। फलतः छठी शताब्दी ई० पू० में गंगा की (तलहटी) घाटी में अनेक धर्मों का उदय हुआ, जिन्होंने वैदिक धर्म के विरुद्ध विचार किया।

नवीन दर्शनों के उदय का मुख्य कारण कृषि पर आधारित आर्थिक विकास था जिसके लिये उत्तर–पूर्वी भारत सबसे अधिक उपयुक्त था। यह कृषि कार्य निम्न वर्ण के द्वारा ही सम्पन्न किया जाता था।

छठी शताब्दी ई० पू० में इस मैदानी भाग में लोहे का व्यापक प्रयोग हुआ। परिणामस्वरूप कृषि सम्बन्धी उपकरण बने और बड़े–बड़े नगर स्थापित हुए। कौसाम्बी, कुशीनगर, वाराणसी, वैशाली आदि महानगर प्रसिद्ध ही हैं। कृषि के साथ–साथ इस युग में शिल्प और व्यापार की भी विशेष उन्नति हुई। सिक्कों का प्रयोग किया जाने लगा। इससे वैश्यों का भी विशेष महत्व बढ़ा। चूँकि वैदिक वर्ण व्यवस्था में वैश्य तृतीय स्थान पर आते थे। अतः वे भी चतुर्थ वर्ण (शूद्रों) की भाँति किसी नवीन धर्म की खोज में थे जहाँ उन्हें सम्मान मिल सके और अपनी स्थिति सुधार सकें। यही कारण था कि नवीन धार्मिक क्रान्ति ने शूद्रों को ही नहीं अपितु वैश्यों तथा अन्यों को भी आकर्षित किया। बौद्ध धर्म सामाजिक वर्गीकरण विभाजन के विरुद्ध सभी मनुष्यों के कल्याण का दर्शन था।[1] उपर्युक्त दोनों सामाजिक, आर्थिक कारणों से

---

1. पी० वी० वापट, बौद्ध धर्म के पच्चीस सौ वर्ष, प्राक्कथन .

वैश्यों ने अपने सामाजिक उत्कर्ष हेतु बौद्ध धर्म अपनाया ।

बौद्ध धर्म में सम्पूर्ण मानव जाति को एक ही जाति (मानव जाति) के रूप में देखा गया था ।[1] जिस नारी समाज को ब्राह्मणवाद ने समाज में पुरुष के समान धार्मिक स्तर प्रदान करने से इनकार किया गया था वहीं बौद्ध धर्म ने उन्हें बौद्ध संघ में प्रवेश दिया और सम्मान भी प्रदान किया । छठवीं शताब्दी ई0 पू0 तक मगध को आर्यावत (आर्य धर्म क्षेत्र) के बाहर का देश माना जाता था । यही नहीं बनारस के पास बहने वाली कर्मनाशा नदी के विषय में यह कहा जाता था कि जो भी व्यक्ति (आर्य) इस नदी को पार कर पूर्व की ओर जायेगा उसके सम्पूर्ण कर्म-फल नष्ट हो जायेंगे । मगध को "ब्रात्य देश" कहा जाता था । इस प्रकार मगध के लोगों को कट्टर ब्राह्मणवादी लोग हेय दृष्टि से देखते थे । अस्तु मगध के लोगों ने बौद्ध धर्म को प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार किया ।

बुद्ध ने देवभाषा संस्कृत के स्थान पर अपने धर्म प्रचार के लिए लोक भाषा – पालि को अपनाया, जिसके कारण बौद्ध धर्म सम्पूर्ण लोक के लिए ग्राह्य हुआ । बुद्ध ने अन्ध विश्वास, अविद्या और पराश्रय को त्यागकर मनुष्य को स्वालम्बन (अत्तदीपा) और सद्ज्ञान का उपदेश दिया । साथ ही आत्मा ओर परमात्मा के बन्धन से मुक्ति का सन्देश दिया । उन्होंने सबसे पहले इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि नैतिक आचरण (पञ्चशील का आचरण) मनुष्य की प्रगति के लिए आवश्यक है। करुणा और मैत्री के आधार पर उन्होंने ऐसे समाज की स्थापना की जिसमें शस्त्र और दण्ड का कोई स्थान नहीं था (अशस्त्रेय अदण्डेन) जहाँ देश की राजनैतिक सीमाएँ मानवीय सौहार्द्र में बाधक नहीं थी । यही कारण था कि महामानव बुद्ध के उपदेश भारत के बाहर भी मध्य एशिया के विभिन्न देशों तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में शताब्दियों-शताब्दियों तक फलते-फूलते रहे । अन्यान्य वन्य और असभ्य जातियों के लोगों को बौद्ध भिक्षुओं ने करुणा, मैत्री और बन्धुता के आधार पर सुसभ्य बनाया । इस मानव कल्याण के लिये उन्होंने अपने प्राणों की कभी चिन्ता नहीं की ।[2]

---

1. दिव्यावदान, 323/14; 332/17.
2. डॉ0 अँगने लाल, सं0 बौ0 सा0 भा0 जी0, पृ0 201.

ब्राह्मण–विद्वेष :

भगवान बुद्ध का ऐसा असाधारण दर्शन भी वर्णवादी लोगों को नहीं भाया जिसकी ध्वनि हमें विष्णु पुराण में स्पष्ट सुनाई पड़ती है जिसमें 'अर्हतों', 'निर्ग्रन्थों' तथा 'पाषाण्डों' को नग्न कहकर अपमानित किया गया है क्योंकि बौद्ध वेदों की अपौरुषेयता को नहीं मानते थे ।[1]

ये उपर्युक्त लोग (अर्हत, निर्ग्रन्थ आदि) वैदिक संस्कृति के अन्धविश्वासी आवरण को स्वीकार नहीं करते थे और यज्ञ तथा देवों का आश्रय त्यागकर अपनी शक्ति और बुद्धि पर विश्वास करते थे ।

श्रमण (बौद्ध तथा जैन) धर्मों का प्रभाव और सुपरिणाम यह हुआ कि नन्दवंशीय शासक यद्यपि नाई (नापित) पुत्र थे तथापि वे शासक बन सके और विशाल साम्राज्य की स्थापना कर सम्राट पद प्राप्त कर सके । भारतीय इतिहास में यह प्रथम उल्लेखनीय घटना थी जब शूद्र वंश में जन्म लेकर नन्द शासकों ने ब्राह्मणवादी वर्ण धर्म के बन्धनों को तोड़कर उड़ीसा से लेकर पंजाब तक (व्यास नदी तक) विशाल साम्राज्य की नींव डाली । उल्लेखनीय है कि नन्द शासक जैन धर्म के अनुयायी थे ।[2]

मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्मावलम्बी था तथा उसका पौत्र सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था लेकिन उन्होंने अपने धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों को भी पूर्ण विकसित होने का अवसर प्रदान किया था ।[3] भारत के सामाजिक इतिहास में यह प्रथम अवसर था जब समाज में न्याय और दण्ड के क्षेत्र में बिना वर्णगत भेदभाव के एकरूपता स्थापित की गयी (वियोहाल समता च सिय दंड समता) । अहिंसा, करुणा, भ्रातृत्व तथा "अक्षति" जैसे उत्कृष्ट मानव मूल्यों के व्यवहार के

---

1. विष्णु पुराण, तृतीय अंश, अध्याय 17–18.
2. खारवेल का हाथीगुंफा लेख
   नन्दराज कलिंग पर आक्रमण करके जिन मूर्ति (जैन तीर्थंकर)को मगध लाया था और मन्दिर में स्थापित किया था। अस्तु सिद्ध है कि जैन धर्मावलम्बी थे ।
3. अशोक का बारहवां शिलालेख .

कारण ही तत्कालीन भारतीय साम्राज्य पूरब में बंगाल से लेकर पश्चिम में हिन्दूकुश पर्वत तक स्थापित हो सका । ईरान, मिश्र, सीरिया तथा श्रीलंका के लोगों ने बौद्ध धर्म के विचारों को स्वीकार किया । यह एक ओर जहाँ भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष था वहीं दूसरी ओर भारत की राजनैतिक सीमाओं का वृहत विस्तार भी था ।

बौद्ध धर्म को प्रारम्भ से ही अन्य धर्मों से संघर्ष करना पड़ रहा था । एक समय जब भगवान बुद्ध वैशाली में उपस्थित थे तब भद्दिय लिच्छवि ने उनसे पूछा कि भगवान लोग कहते हैं कि गौतम जादू-टोना जानते हैं और उसी की मदद से दूसरे सम्प्रदायों के लोगों को आकर्षित करते हैं ।[1] बुद्ध ने कहा, "जो लोग मुझ पर आरोप लगाते हैं वे महत्वाकांक्षी हैं । अतः उनकी बात को बिना सबूतों के बिना निरीक्षण के मत मानो ।" बुद्ध ने आगे कहा, "मेरी जिस शैली को, जो सन्यासी या ब्राह्मण जादू-टोना कहते हैं, उसका परिणाम विश्व के सुख और कल्याण में होगा ।" [2]

भगवान बुद्ध पर यह भी आरोप लगाया गया कि वे 'परजीवी' हैं । अपनी जीविका स्वयं नहीं कमाते । बुद्ध एक बार ब्राह्मणों के "एकनाला" ग्राम में काशी-भरद्वाज ब्राह्मण के निकट जाकर खड़े हो गये । भरद्वाज ने कहा "मैं खाने से पहले खेत जोतता और बोता हूँ और तब खाता हूँ ।" भगवान् बुद्ध ने कहा, "मैं भी खाने के लिए जोतता-बोता हूँ । मेरा बीज मेरी निष्ठा है । जीवन की कठोरता वर्षा है। बुद्धि मेरा जुआ और हल है । प्रयास मेरा मजबूत बैल है । जो मेरी भाँति खेती करता है वह सभी बुराइयों से मुक्ति पाता है"।[3]

मगध के बहुत से युवा लोगों को भगवान का शिष्य होते हुए देखकर उनके विद्रोहियों ने उन पर यह आरोप लगाया कि वह सुखी परिवारों को तोड़ रहे हैं ।[4]

---

1. बुद्धा एण्ड हिज़ धम्मा, पृ0 351.
2. वही, पृ0 352.
3. वही, पृ0 353.
4. वही, पृ0 354.

परन्तु भगवान् ने स्पष्ट किया कि मेरे धर्म में कोई दबाव नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति गृह त्याग के लिये स्वतन्त्र है । प्रत्येक व्यक्ति घर पर रहने के लिए भी स्वतन्त्र है ।[1]

कुछ जनों ने भगवान पर सुन्दरी नाम की महिला के वध का आरोप भी लगाया ।[2] कुछ जैनों ने उन पर चिन्चा नाम की महिला से अनैतिक सम्बन्ध का भी आरोप लगाया ।[3] ब्राह्मणों ने भी बहुत से आरोप उनके जीवन काल से ही लगाने शुरू कर दिये थे ।[4] लेकिन वे सभी झूठे और निराधार सिद्ध हुए ।

ब्राह्मणधर्मी शासकों द्वारा बौद्ध धर्म की हानि :

बौद्ध धर्म के विकास के परिणामस्वरूप वर्ण धर्म के बन्धन शिथिल हुए जिसके कारण यज्ञ–यज्ञादि कराने वाले पुष्यमित्र शुंग जैसे कट्टर ब्राह्मणधर्मी लोग भी सेनापति बन सके ।

हिंसापूर्ण यज्ञों का सम्पादन करके स्वर्ग प्राप्ति मानने वाले वर्णाभिमानी लोगों को बौद्ध धर्म का यह "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" उपदेश भी असह्य था । ब्राह्मण वर्चस्व की यथास्थिति स्थापित रखने के लिये ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने अपने मौर्य सम्राट् बृहद्रथ के प्रति विश्वासघात कर उसका वध कर दिया और स्वयं शासक बन बैठा । उसने ब्राह्मण वर्चस्व की स्थापना के लिए आतंक का सहारा लिया और मानवीय समानता, करुणा तथा मैत्री के प्रचार–प्रसार करने वाले बौद्ध भिक्षुओं के संहार के लिये राजाज्ञा प्रसारित की और पुरस्कार वितरित किये ।[5] उसने वर्ण व्यवस्था को और सुदृढ़ करने के लिये मनुस्मृति की रचना करवाई तथा बौद्ध विहारों को विनष्ट करवा दिया ।

---

1. बुद्धा एण्ड हिज़ धम्मा, पृ0 354.
2. वही
3. वही, पृ0 355.
4. वही, पृ0 359.
5. दिव्यावदान, पृ0 277/23–24 :यो मे श्रमणशिरं दास्यति
   तस्याहं दीनार शतं दास्यामि ।

कुमारिल और बौद्ध धर्म का विरोध बहुत चर्चित रहा है । कुमारिल ने उज्जैन के राजा सुधर्मन (सुधन्वा) को बौद्ध धर्म के विनाश के लिए उकसाया था ।[1]

माध्यमिक दर्शन के संस्थापक नागार्जुन का वध एक ब्राह्मणवर्णी सातवाहन राजा द्वारा किया गया था ।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में आने पर जब विदेशियों ने ब्राह्मण धर्म स्वीकार किया था तो उनमें भी धार्मिक विद्वेष भर दिया गया था जिससे उन्होंने भी बौद्धों पर अत्याचार किये । मध्य एशिया से आये हुये हूणों ने जिन्होंने अपने आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य की जड़ें हिला दी थीं और अपना राज्य स्थापित किया था और स्यालकोट (साकल) को राजधानी बनाया । हूण शासक मिहिरकुल ने शैव धर्म अपनाया और उसने सैकड़ों बौद्ध भिक्षुओं का वध करवा दिया । काश्मीर में सोलह सौ स्तूपों और संघारामों को नष्ट कर दिया । नौ हजार बौद्ध उपासकों को मौत के घाट भी उतार दिया गया ।[3]

धर्मस्थल अथवा धार्मिक केन्द्र धर्म के आधार माने जाते हैं । अस्तु बौद्ध तीर्थ स्थलों को नष्ट करने अथवा उन्हें ब्राह्मण धर्म में परिवर्तित करने के प्रयास ब्राह्मण राजाओं द्वारा किये गये । ब्राह्मणधर्मी गौड़ाधिपति शशांक ने पाटलिपुत्र की उस प्रस्तर शिला को नदी में फेंकवा दिया था जिस पर भगवान बुद्ध के चरण चिह्न अंकित थे ।[4] उसने बोधगया के उस बोधि वृक्ष को कटवा डाला जिसके नीचे भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त किया था ।[5] यही नहीं उसने उस महाबोधि मन्दिर से भगवान बुद्ध की मूर्ति को उठवाकर नदी में फेंकवा दिया था और उसमें शिवलिंग की स्थापना करायी थी ।[6] मन्दिर के पास स्थापित पञ्चवर्गीय भिक्षुओं तथा सुजाता की मूर्तियों को पाँच पाण्डवों और द्रोपदी की मूर्ति की संज्ञा दी जो आज भी ब्राह्मण–बौद्ध

---

1. हिन्दुज्म एण्ड बुद्धिज्म, जि0 2, पृ0 6
2. वाटर्स, आ0 यु0 ट्रे0 इ0, भाग 2, पृ0 201.
3. वही, भाग 1, पृ0 288–89
4. वही, भाग 2, पृ0 92.
5. वही, पृ0 115.
6. बील, चा0 ए0 ई0., जि0 3, पृ0 359

संघर्ष का कारण बना हुआ है।

कामरूप के राजा भास्कर वर्मा ने नालन्दा को नष्ट करने की धमकी दी थी। भास्कर वर्मा की धमकी से स्पष्ट होता है कि बौद्धस्थल का उसके अहम् के सामने कोई महत्व न था।[1]

भारत के उन राज्यों में जो मुस्लिम आधिपत्य के अन्दर आये, सिन्ध प्रथम था। यह एक शूद्र राजा द्वारा शासित था। परन्तु उसे एक चच नामक ब्राह्मण ने सिंहासनच्युत कर दिया और अपने वंश के नाम पर चच राज्य स्थापित किया।[2] इस राज्य की राजधानी के लिये ब्राह्मणाबाद की स्थापना की गयी।

ह्वेनसांग के अनुसार उसके समय में पंजाब एक बौद्ध शासक द्वारा शासित था। जिसका सेनापति लल्लिय ब्राह्मण था जिसने 880 ई0 में अपने राजा के साथ विश्वासघात करके गद्दी छीनकर ब्राह्मण 'शाही वंश' की स्थापना की। जब पंजाब में मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हुए, उस समय इसी ब्राह्मण शाही वंशके शासक जयपाल (960-980 ई0), आनन्दपाल (980-1000 ई0) एवं विलोचन पाल (1000-21 ई0) आदि शासन कर रहे थे। वे सभी ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे।[3]

इस प्रकार ब्राह्मणधर्मी शासकों ने बौद्ध धर्म की कम हानी नहीं की। वे राजा, अब प्रजा रंजक-रक्षक नहीं बल्कि केवल ब्राह्णधर्मी लोगों के रंजक और रक्षक थे।

---

1. दि क्लासिकल एज, पृ0 139, विद्याभवन, बम्बई, 1966, द्वितीय संस्करण.
2. वही, पृ0 166.
3. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ0 113-114, विद्या भवन, बम्बई, प्रथम संस्करण, 1955

साहित्यकारों का विद्वेषभाव :

हिन्दू साहित्यकारों ने भी बौद्ध धर्म को कम क्षति नहीं पहुँचायी। भवभूति ने मालतीमाधव में बौद्ध धर्म का उल्लेख किया है, जिसमें उसने बौद्ध भिक्षुणी कामन्दकी तथा उसकी तीन शिष्य–भिक्षुणियों का भी उल्लेख किया है। जिनके नाम अवलोकिता, बुद्धरक्षिता तथा सौदामिनी थे।[1] ग्रन्थकार ने इन भिक्षुणियों को धर्म साधना के स्थान पर लौकिक जीवन में संलग्न होने का वर्णन करके उनका हेय और हानिप्रद स्वरूप प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हिन्दू साहित्यकारों ने बौद्धों के प्रति विद्वेषभाव उगल कर कम हानि नहीं पहुँचायी।

मुस्लिम विद्वान् अलबरुनी जो सुल्तान महमूद गजनवी के समय भारत आया था उसने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर संस्कृत का अध्ययन किया। वह सभी भारतीय धर्मों के विषय में जानना चाहता था लेकिन संस्कृत आचार्यों और ब्राह्मण पण्डितों ने उसे बौद्ध धर्म साहित्य के विषय में कुछ नहीं बताया।[2] पृथ्वीराज तृतीय चाहमान के दरबारी कवि चन्दबरदायी ने बौद्ध धर्मावलम्बी गहड़वाल शासक जयचन्द को देशद्रोही रूप में चित्रित किया है।

बौद्ध विद्वेषी राजाओं और लेखकों के उपर्युक्त दूषित प्रयासों के बावजूद भी सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक वल्लभी, सिन्धु, बिहार और बंगाल में बौद्ध धर्म लोकप्रिय था।[3]

कुछ विद्वानों के अनुसार मनुस्मृति की रचना 170 ई0 पू0 से 15 ई0 पू0 के बीच में हुई और ब्राह्मण क्रान्ति 185 ई0 पू0 में हुई। अब इसमें कोई संदेह नहीं है कि मनुस्मृति की रचना पुष्यमित्र शुंग ने करवायी थी ताकि बौद्ध धर्म का विनाश किया जा सके।[4] पुष्यमित्र की क्रान्ति एक राजनैतिक क्रान्ति थी जो ब्राह्मणों के द्वारा

---

1. एस0 एम0 मिश्र, यशोवर्मन ऑफ कन्नौज, पृ0 225–227.
2. अरबरुनी का भारत, भूमिका, पृ0 12.
3. एस0 एम0 मिश्र, यशोवर्मन ऑफ कन्नौज, पृ0 127.
4. बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज़, वाल्यूम 3, पृ0 272.

तैयार किया गया षडयन्त्र था । पुष्यमित्र ने षडयन्त्र करके तत्कालीन आर्य विधि को ठुकराया था । तत्कालीन आर्य विधि के अनुसार राजत्व क्षत्रिय का ही अधिकार था ।[1] कोई भी ब्राह्मण शस्त्र का व्यवसाय नहीं अपना सकता था । राजा के विरुद्ध विद्रोह पाप है । अतः उसने आर्य विधि को परिवर्तित करके मनुस्मृति में नये उपबन्ध सम्मिलित किये, जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण को सेनापति और राजा बनने का अधिकार है । ब्राह्मण को मनुस्मृति में राजा को मारने और नरसंहार करने का भी अधिकार दिया गया उसे विद्रोह करने का भी अधिकार प्रदान किया गया ।[2]

मनु ने ब्राह्मणों को विधि के ऊपर माना है ।[3] जबकि सम्राट् अशोक ने उन्हें कानून के ऊपर नहीं माना ।[4]

मनु ने ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों और एकाधिकारों को बनाये रखने के लिये वर्णों को जाति में बदल दिया ।[5] इसका अर्थ यह है कि उसने प्रतिष्ठा एवं पेशे को आनुवांशिक बना दिया ।[6] वर्ण को आनुवांशिक बनाकर ही ब्राह्मण अपने बच्चों को शूद्र घोषित होने से रोक सकते थे ।[7] मनुवादी ब्राह्मण धर्म ने आपसी विवाह और आपसी खान-पान पर भी रोक लगा दी ।

मनु के अनुसार जैसे सभी बड़ी और छोटी नदियां महासागर में विश्राम पाती हैं उसी तरह सभी लोग गृहस्थ लोगों से सुरक्षा पाते हैं । मनु द्वारा वानप्रस्थ या सन्यास

---

1. बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज़, वाल्यूम 3, पृ0 275.
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही, पृ0 285.
6. वही, पृ0 286.
7. वही, पृ0 292.

आश्रम के लिये विवाह की शर्त रखने का यह कारण था कि वह लोगों को सन्यासी बनने से हतोत्साहित करना चाहते थे । साथ ही बौद्ध धर्म में भिक्षुओं के महत्व और प्रतिष्ठा को रोकना चाहते थे । ये सन्यासी (गृह त्यागी भिक्षु) बनाना और बनना इसलिए भी रोकना चाहते थे क्योंकि बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व बौद्ध भिक्षुओं पर ही था । मनु के इस प्रतिबन्ध से गृहत्यागी भिक्षुओं की संख्या में अवश्य कमी आ गयी होगी ।[1]

भाषा परिवर्तन का षडयन्त्र :

बौद्ध ग्रन्थों को प्रक्षिप्त कर उनमें ब्राह्मणी विचारों-दर्शनों को जोड़ा गया और पालि के स्थान पर पालि-संस्कृत खिचड़ी में ग्रन्थों का उल्था किया गया ।[2] महावस्तु जैसे ग्रन्थों में यह स्पष्ट देखने को मिलता है । इस ब्राह्मणी चाल ने बौद्ध धर्म के विनाश का कार्य किया ।

यही नहीं बुद्ध ने अपने धर्म के स्थायित्व के सम्बन्ध में यह कहा था, "लोग जब तक लोक-भाषा पालि में धर्मोपदेश करते रहेंगे तब तक बौद्ध धर्म की बढ़ोत्तरी होती रहेगी ।" बौद्ध विद्वेषी लोग मूल बौद्ध साहित्य को विलुप्त करने और उसे दूषित करने के प्रयास में लगे । उन्होंने बुद्ध के मुँह से ऐसी बातें कहलवाकर मूल बौद्ध साहित्य में सम्मिलित कर दीं, जो बुद्ध के विचारों के प्रतिकूल थीं जैसे बुद्ध-मुख से यह कहलवा दिया कि बुद्ध सदैव ब्राह्मण क्षत्रिय उच्चकुल में ही पैदा होते हैं । यही नहीं उन्होंने पालि के स्थान पर संस्कृत में बौद्ध साहित्य को लिख डाला, जिसमें बौद्ध विरोधी अनेक बातों, कथानकों और विचारों का समावेश कर दिया

---

1. बाबा साहब डॉ अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज़, वाल्यूम 4, पृ0 266.
2. राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 119 .

ओर उसे ही बुद्ध की मूल देशना कहा जाने लगा । महावस्तु, दिव्यावदान, ललितविस्तर, आर्य मंजुश्री मूलकल्प, लंकावतार सूत्र आदि बौद्ध ग्रन्थों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । इस प्रकार से विद्वेषी ब्राह्मण द्वारा बौद्ध धर्म और साहित्य को निरन्तर पराभूत और दूषित करने का प्रयास किया जाता रहा ।

संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर तन्त्रयान–मन्त्रयान और वज्रयान भारत में जड़ जमाते गये । वज्रयान को सार्वजनिक रूप चौरासी सिद्धों ने दिया जिसमें सिद्ध सरहपाद प्रथम थे । सिद्ध सरहपाद बंगाल के पाल शासक धर्मपाल (768–809) अथवा (768–809 ई0) के समकालीन थे । वज्रयानी सिद्धों की परम्परा आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से 12वीं शताब्दी तक बढ़ती ही गयी । कालान्तर में नाथ पन्थ चला जिसके गोरखनाथ विख्यात ही हैं ।[1] इस भाषा परिवर्तन और ब्राह्मण धर्म के दोषों से युक्त वज्रयान और सहजयान ने बुद्ध द्वारा प्रतिपादित आचार्य संहिता की ही अवहेलना कर मनमानी करने की भिक्षुओं को छूट दे दी जिसके कारण समाज में उसका मान–सम्मान गिर गया ।

<u>ब्राह्मण आचार्यों द्वारा बौद्ध धर्म के विनाश की प्रेरणा</u> :

ब्राह्मण शंकराचार्य ने राजाओं के सहयोग से बौद्ध मठों को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । कुमारिल ने शंकराचार्य के विषय में लिखा है कि वे आर्य धर्म के विरोधी बौन्द्धों को नष्ट करने के लिये कार्तिकेय कुमार ही उत्पन्न हुये हैं ।

"आर्य धर्म विमुखान् सुगतान् निहन्तुम् जातोगुह"

कुशीनगर के विहारों में खुदाई में जो कोयला आदि प्राप्त होता है वह कदाचित शकराचार्य द्वारा बौद्ध विहारों को जलाने का ही प्रमाण है ।

---

1. बौद्ध धर्म और बिहार, हवलदार त्रिपाठी सहृदय, पृ0 240.

कुमारिल और बौद्ध धर्म का विरोध बहुत चर्चित रहा है । कुमारिल ने उज्जैन के राजा सुधर्मन को बौद्ध धर्म के विनाश के लिये उकसाया था ।[1]

750 ई0 में कुमारिल भट्ट नाम के एक ब्राह्मण उपदेशक ने लोगों से एक बार फिर अपने मत में लौटने की अपील की । बौद्धों के विरुद्ध विद्रोह की लहर पहले से ही आ चुकी थी इसे हवा देने का काम सत्तासीन शासकों ने किया । यह कहा जाता है कि सुधनवन नाम के राजा ने उक्त धार्मिक उपदेशक के इशारे पर भारत में बौद्धों के संहार के लिए आदेश दिया था ।

शंकराचार्य ने वही कार्य दक्षिण में किया जो कुमारिल ने उत्तर में किया था और उनके उदाहरण से प्रेरित होकर कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने सम्पूर्ण भारत में बौद्धों को उत्पीड़ित करने और बौद्ध धर्म के अनुयायियों का संहार करने की आवाज उठायी । उन्होंने यह भी घोषणा की कि विष्णु का दसवाँ अवतार तलवार के साथ बौद्ध धर्म के विनाश के लिए उतरेगा । इस घोषणा को सभी धार्मिक क्रान्तिकारियों ने जो बौद्ध धर्म को नष्ट करना चाहते थे और ब्राह्मण धर्म को दुबारा लाना चाहते थे, स्वीकार किया । इस पुनरागम धर्म को हिन्दू समाज ने 'सनातन धर्म' कहा । इसमें राजा और किसान दोनों ने संगठित रूप से बौद्ध धर्म के विरुद्ध धर्मान्ध उत्साह दर्शाया ।[2] ऐसी परिस्थितियों में भी बौद्ध धर्म 1000 ई0 – 1199 ई0 तक किसी तरह चलता रहा । यह कम साहस की बात न थी ।

समन्वयवदी नीति : आत्मसात का प्रारम्भ :

पहली और दूसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म का पुनः प्रभाव स्थापित हुआ । चतुर्थ बौद्ध संगीति सम्राट कनिष्क के शासन काल में हुई । महामानव बुद्ध की मूर्तियां

---

1. स्प्रिट आफ बुद्धिज्म, सर हरी सिंह गौड, पृ0 216–217.

2. वही

बनायी गयीं । इस युग में बौद्ध धर्म भारत के बाहर मध्य एशिया के देशों में भी फैल गया था । करुणा और मैत्री के धनी बौद्ध भिक्षुओं ने अपने प्राणों की चिन्ता न करके दुर्गम वनों और दुर्लंघ्य नदियों और समुद्रों को पार कर अनेक वन्य और असभ्य जातियों को सभ्य बनाया । इतना होते हुये भी इस बौद्ध संगीति का सबसे बड़ा दोष यह था कि शास्ता बुद्ध के निर्देशों के विपरीत त्रिपिटक ग्रन्थों पर भाष्य संस्कृत भाषा में लिखे गये जिसमें एक शब्द के कई अर्थ निकल सकते थे । इससे दूसरी क्षति यह हुई कि पालि का पठन–पाठन कब हुआ और संस्कृत का प्रभाव बौद्ध समाज में भी बढ़ने लगा ।

बढ़ती हुई भारतीय बौद्ध संस्कृति को रोकने के लिये गुप्त- युग में समन्वय का सफल प्रयास किया गया । समुद्रगुप्त ने बौद्ध धर्म को प्रज्ञा- सुख का साधन माना । यही प्रज्ञा पारमितः या समाधि सुख था । उसने राजकुमार (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध बौद्धाचार्य वसुबन्धु को नियुक्त किया था ।[1] बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म (विशेषकर वैष्णव धर्म) का समन्वित रूप ही भागवत धर्म कहलाया । इस समन्वय से बौद्ध धर्म की बहुत हानि हुई क्योंकि उसका स्वतन्त्र अस्तित्व क्षीण होने लगा । बुद्ध को पुरुषोत्तम कहा गया और विष्णु के साथ एकात्म कर दिया गया । उनकी मूर्ति स्थापित कर पूजा की जाने लगी । वे भक्ति का एक आधार बिन्दु बन गये । शनैः शनैः ब्राह्मण धर्म के दोष भी बौद्ध धर्म में आने लगे । इस भक्ति सम्प्रदाय का प्रभाव बौद्ध भिक्षुओं पर भी पड़ा और वे भी धीरे–धीरे धर्म परायण के स्थान पर भक्ति परायण होने लगे ।इस समन्वयवाद से बौद्ध धर्म का पराभव हो गया ।

धीरे–धीरे ब्राह्मणवाद का प्रभाव बौद्ध धर्म पर पड़ने लगा और उन्होंने बुद्ध को विष्णु का अवतार कहना प्रारम्भ कर दिया । यही नहीं बौद्ध धर्म में अनेक

---

1. वाकाटक-गुप्त एज, पृ0 156

तान्त्रिक साधनाओं आदि का समावेश कर दिया जो मूलतः बौद्ध धर्म के विरुद्ध थीं। साथ ही तन्त्रयान, मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान जैसे सम्प्रदायों का बौद्ध धर्म में प्रवेश करा दिया गया। इन सम्प्रदायों के लोगों में पञ्च–मकारों (मांस, मदिरा, मत्स्य, मैथुन और मज्जा) का प्रयोग भी चल पड़ा। स्पष्टतः वह बौद्ध धर्म जिसका आधार ही शील और आचार था, पथ विचलित होने लगा। इस प्रकार विद्वेषी लोगों ने बौद्ध धर्म को इतना दूषित कर दिया कि लोगों की बौद्धों के प्रति श्रद्धा घटती गयी और धीरे–धीरे अन्ध विश्वासों की इतनी बाढ़ आई कि बौद्ध धर्म और दर्शन उससे ढक गया।

दक्षिण के वैष्णव भक्ति आन्दोलन ने समन्वयवाद का इतना अधिक प्रचार किया कि बौद्ध धर्म लोगों की दृष्टि में समाहित सा हो गया था। डॉ० एस० राधाकृष्णन का विचार है कि भारत में बौद्ध धर्म समाप्त हो गया और संशोधित ब्राह्मण धर्म के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ।[1]

अवतारवाद – एक षडयन्त्र :

समन्वयवाद का अगला चरण अवतारवाद का षडयन्त्र था जिसमें बुद्ध को विष्णु का एक अवतार बता दिया गया। हिन्दू अवतार सूची में बुद्ध का नाम गुप्तकाल के बाद ही जुड़ा क्योंकि महाभारत जो प्रायः गुप्त युग (पांचवीं शताब्दी ई०) में लिखित मानी जाती है, के शान्तिपर्व की अवतार सूची में बुद्ध का नाम नहीं है।[2] धीरे–धीरे समन्वयवाद और आत्मसातीकरण की यह प्रक्रिया और तेज होती गयी। बौद्ध साहित्य की "मारव्यानकथा" को ब्राह्मण लेखकों ने अपने ग्रन्थों में यम और काम की कथा बना दी। तान्त्रिक युग में तारादेवी की बौद्ध और ब्राह्मण दोनों उपासना करने लगे। इसी प्रकार अवलोकितेश्वर, बोधिसत्व और मंजुश्री बोधिसत्व को शिव और विष्णु के रूप में वर्णित किया गया।

---

1. डॉ० एस० राधाकृष्णन, इण्डियन फिलॉसफी, जि० 1, पृ० 608.
2. डी० एल० रामटेके, रिवाइवल ऑफ बुद्धिज़्म इन मॉर्डन इण्डिया, पृ० 45

यह कहा गया है कि बुद्ध ने दुष्टों को दण्ड देने के लिये विष्णु का अवतार लिया और यह भी कह दिया गया कि वे ब्राह्मण और क्षत्रिय अनुयायियों को अधिक चाहते थे और उन्होंने यज्ञों, जाति व्यवस्था और विधवाओं की पवित्रता का कोई विरोध नहीं किया । उन्होंने ईश्वर तथा अमरता के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा । इस प्रकार उन्होंने इन सभी बातों को हिन्दू धर्म की भाँति स्वीकार कर लिया गया ।[1]

जयदेव ने अपने 'गीतगोविन्द' में लिखा है कि हिंसक यज्ञों में निरीह पशुओं के वध को रोकने के लिये विष्णु ने बुद्ध का अवतार लिया था ।[2]

इस प्रकार के कुतर्कों और असत्य बातों का प्रचार करके लोगों ने बौद्ध उपासक समाज को बहुत भ्रमित किया और ब्राह्मणों ने अपनी सामाजिक यथा- स्थिति बरकरार रखने में सफलता प्राप्त की ।

समन्वयवाद का कुप्रभाव :

कुछ लोगों का यह कथन है कि बौद्ध धर्म का विघटन और ह्रास द्वितीय बौद्ध संगीति से ही प्रारम्भ हो गया था । लेकिन यह सत्य नहीं है क्योकि महासांघिक और थेरवादी दोनों निकायों के बौद्ध भिक्षु साथ–साथ विहारों में रहते थे और बुद्ध विनय का पालन करते थे । उनका अलग से कोई विनय ग्रन्थ नहीं था । इसी प्रकार सम्राट् अशोक के समय तक बौद्ध धर्म यद्यपि अठारह निकायों में विभाजित हो गया था लेकिन उस समय भी सभी निकाय भगवान बुद्ध के मूल सिद्धान्तों को मानते थे । उस समय तक हीनयान और महायान का कोई भेद उत्पन्न नहीं हुआ था । लेकिन सम्राट् अशोक के बाद कुछ कट्टर ब्राह्मणधर्मी लोगों की विद्वेष भावना के कारण बौद्ध क्षति प्रारम्भ

---

1. योगी राज स्वामी महाराज, दि बुद्ध मीमांसा : दि बुद्धा रिलीजन टू वैदिक रिलीजन
2. ए0 एल0 बासम, वन्डर दैट वाज़ इण्डिया, पृ0 309.

हो गयी थी । कुछ इतिहासकार (हरिप्रसाद शास्त्री आदि) तो मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण भी ब्राह्मणी-विद्वेष को मानते हैं ।

चतुर्थ बौद्ध संगीति के समय तक यह विद्वेष स्पष्टतः उभरकर सामने आ गया था । वाटर्स थामस के अनुसार भिक्षु आर्यदेव की हत्या एक ब्राह्मण द्वारा तथा माध्यमिक दर्शन के संस्थापक नागार्जुन की हत्या एक ब्राह्मण सातवाहन शासक द्वारा करा दी गयी थी ।[1]

बौद्ध-संघ विभाजन :

बौद्ध धर्म प्रमुख रूप से हीनयान और महायान दो यानों में विभाजित हो गया था । इस विभाजन ने बौद्ध धर्म को कम क्षति नहीं पहुँचायी । श्रीलंका, बर्मा, कम्बोडिया आदि देश हीनयानी या थेरवादी माने जाते हैं जो बुद्ध के मूल सिद्धान्तों के पक्षधर थे । इसके विपरीत महायान में ब्राह्मण धर्म के अनेक तत्वों का समावेश हो गया था । महायान शाखा के विद्वानों में नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग आदि प्रथित आचार्य थे जिन्होंने ब्राह्मण धर्म की भक्ति और मूर्ति पूजा पर विशेष बल देकर उसे ब्राह्मण धर्म के समीप ला दिया । तिब्बत, चीन, जापान आदि देशों में महायान का प्रचार-प्रसार हुआ ।

बौद्ध तीर्थ-केन्द्रों का ब्राह्मणीकरण और हथियाना :

समन्वय और आत्मसात के इस अभियान में ब्राह्मणों ने बौद्ध मन्दिरों को हथियाना प्रारम्भ कर दिया और धीरे-धीरे बुद्ध मूर्तियों को हटाकर ब्राह्मणी देवी देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित कर दीं जिसका ज्वलन्त उदाहरण बोधगया का महाबोधि मन्दिर है जो इस समय भी ब्राह्मणों के अधिकार में है ।

---

1. वाटर्स, थामस, ऑन युँवान् च्वांग्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, भाग 1 , पृ0 243.

1860–61 ई० में जनरल कनिंघम ने कुशीनगर में यह पाया था कि भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण का स्तूप एक हिन्दू मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था और स्तूप के ऊपर राम भर भवानी का मन्दिर बना दिया गया था ।[1]

संकिसा में जहाँ भगवान बुद्ध अपनी माता माया देवी को उपदेश देने के बाद उतरे थे जिसकी स्मृति में सम्राट् अशोक ने एक विशाल स्तूप बनवाया था । उस पर हिन्दुओं ने विशहरी देवी का मन्दिर बनवा दिया और इस समय उस विशाल स्तूप के शीर्ष भाग पर हनुमान की मूर्ति बिठाने का प्रयास कर रहे हैं ।

आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के तट पर अमरावती में अमरेश्वर हिन्दू मन्दिर का निर्माण बौद्ध स्तूप के ऊपर ही करवाया गया था ।[2] आन्ध्र प्रदेश के ही प्रसिद्ध बौद्ध चैत्य चेज्राला और टेर इस समय विष्णु और शिव मन्दिर है ।[3] इसी प्रकार आसाम में गोहाटी के सामने सतकुशा में मानव मन्दिर किसी समय पवित्र बौद्ध मन्दिर था । यही नहीं यह भी कहा जाता है कि शंकराचार्य ने श्रृंगेरी मठ (केरल में) की स्थापना भी एक– प्रसिद्ध बौद्ध विहार के स्थल पर ही की थी ।[4]

उड़ीसा प्रदेश के पुरी जिले में प्रसिद्ध भगवान् बुद्ध के दन्त धातु स्तूप को जगन्नाथ मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया ।[5] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि बद्रीनाथ का हिन्दू मन्दिर भी हिन्दुओं ने बौद्ध मन्दिर के ऊपर ही बनवाया था ।[6] बम्बई नगर क्षेत्र के उत्तर पशिचम में अन्धेरी से साढ़े छः किलोमीटर

---

1. आ० स० इ० रि० 1860–61.
2. राव पद्म के०, वोमेन एण्ड कास्ट इन इण्डिया, पृ० 39.
3. नीलकण्ठ शास्त्री, के० ए०, हि० सा० इ०, पृ० 448.
4. जोशी, एल० एम०, इ० वु० क० इ०, पृ० 314 इलियट हि०, जि० 2, पृ० 211
5. तिरुपती बालाजी वाज ए बुद्धिस्ट श्राइन, पृ० 18–21.
6. जोशी, एल० एम०, बु० के० इ०, पृ० 351.

दूर उदयगिरि पहाड़ी में दो पंक्तियों में 19 बौद्ध गुफाएँ हैं जो अजन्ता एलोरा से भी प्राचीनतर हैं । चौथी गुफा में निर्मित स्तूप को शैव ब्राह्मणों ने शिवलिंग कहकर प्रचार किया और उन गुफाओं को महाकाली की गुफाएँ कहने लगे । आज वे इसी महाकाली गुफाओं के नाम से ही प्रसिद्ध हैं ।[1]

इस प्रकार बौद्ध विरोधी लोगों ने बौद्ध विहारों और स्तूपों को हिन्दू मन्दिरों और तीर्थ स्थानों के रूप में परिवर्तित करके बौद्ध धर्म को महान क्षति पहुँचायी ।

राजाश्रय की कमियां :

लोगों का यह कहना बहुत सार्थक प्रतीत नहीं होता कि बौद्ध धर्म का पराभव राजाश्रय की कमी के भी कारण हुआ । बौद्ध धर्म को राजाश्रय तो मिलता रहा लेकिन पुष्यमित्र शुंग और शशांक जैसा धर्मान्ध राजाश्रय नहीं मिला और न बौद्ध धर्म में उसकी जरूरत ही थी । ब्राह्मण धर्म ने अपनी स्थिति अधिक से अधिक सुदृढ़ कर ली । इतिहास में विदित ही है कि भारत के उपर्युक्त ब्राह्मण राजाओं ने किस प्रकार बौद्धों तथा उनके धर्म का विनाश किया । इसके विपरीत ऐसा एक भी उदाहरण इतिहास में प्राप्त नहीं होता जहाँ किसी बौद्ध शासक ने बौद्ध धर्म की रक्षा के लिये ब्राह्मणों का संहार किया है । बौद्ध शासकों ने ब्राह्मणों को भी सम्मान दिया और उन्हें सम्मान देने के लिए दूसरे लोगों से भी कहा । अशोक का तीसरा शिलाभिलेख श्रमणों के साथ ब्राह्मणों को भी दान देने का उल्लेख करता है । "ब्राह्मण समणानं साधु दानं)।[2] वह सभी धर्मों का सम्मान करता था और उन्हें दान देता था ।[3]

---

1. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 8 सितम्बर, 1994, पृ0 12.
2. पाण्डेय, हि0 लि0 इ0, पृ0 7 : तीसरा शिलालेख, पं0 4–5.
3. वही, पृ0 14, शि0 ले0 सं0 12, पं0 1–2 :
   देवाने पिये पियदसि राजा सबपासडानि च पर्वाजतानि च घर स्तानि च ।
   पूजयति दानेन च विवाधाम च पूजाय पूजयति पं ।

सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन को कन्नौज में सर्वधर्म सममेलन करते हुए पाते हैं।[1] प्रयाग के पंचवर्षीय मेले में वह सभी धर्मों के लोगों को दान वितरित करता था।[2] हर्ष के पश्चात् कोई शक्तिशाली बौद्ध शासक नहीं हुआ।

हर्ष के समय बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ा। महाराज हर्ष ने कन्नौज में एक सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन किया। उस सम्मेलन में निर्मित चैत्य (पूजा गृह) में विद्वेषियों ने आग लगा दी और जब सम्राट् हर्ष उसे देखने गया तो उस पर कटार से प्राणघातक हमला किया। हर्ष ने आक्रमणकारियों को पकड़ लिया और जब उसने इस प्राणघातक हमले का कारण पूछा तो उन्होंने उन विद्वेषी ब्राह्मण का नाम बतलाया जिन्होंने उसे आक्रमण करने के लिए उकसाया था। फलस्वरूप उकसाने वाले अपराधी ब्राह्मणों को देश निकाला का दण्ड दिया गया।[3]

बंगाल के पाल शासक देवपाल और धर्मपाल बौद्ध धर्म के उन्नायक थे। कुशीनगर में प्राप्त अभिलेखों से स्पष्ट है कि उसने कुशीनगर में एक स्तूप और विहार का निर्माण कराया था।[4] गहड़वाल शासक गोविन्द चन्द्र की रानी कुमारदेवी ने सारनाथ में विशाल विहार (धर्मचक्र जिन विहार) का निर्माण कराया था। गोविन्द चन्द्र का पौत्र जयचन्द्र बौद्ध शासक था जिसके आचार्य भिक्षु जगन्मित्रानन्द थे।[5] जयचन्द्र की एक प्रमुख रानी भी बुद्ध धर्मावलम्बी थी जिसके लिये लिखी गयी प्रज्ञापारमिता की एक पुस्तक आज भी नेपाल दरबार के पुस्तकालय में सुरक्षित है।[6] जयचन्द्र का शासनकाल 12वीं शताब्दी का अन्तिम क्षण था। इस प्रकार ब्राह्मणों के विरोध के बावजूद 12वीं शताब्दी के अन्त तक बौद्ध धर्म का उत्तरी भारत में समाप्त

---

1. मुकर्जी, आर0 के0, हर्ष, पृ0 75–79.
2. वही, पृ0 79–83.
3. वही, पृ0 78–79
4. कुशीनगर का इतिहास, भि0 धर्मरक्षित, पृ0 112–113.
5. सारनाथ का इतिहास, भिक्षु धर्मरक्षित, पृ0 90.
6. साहनी, गाइड टु सारनाथ, पृ0 32.

नहीं हुआ था। उसे राजाओं की कृपा दृष्टि भी मिलती रही लेकिन अन्य धर्मों को मिटाकर उनके तीर्थ स्थलों को हथियाकर उन्होंने बौद्ध धर्म को बढ़ाने की कुचेष्टा कभी नहीं की। इसलिये यह कहना गलत है कि बौद्ध धर्म का पराभव राजाश्रय की शून्यता के कारण हुआ।

तुर्क आक्रमणकारियों की विनाश लीला :

बौद्ध धर्म के पराभव के लिये कुछ सीमा तक तुर्क आक्रमण भी उत्तरदायी थे। ज्ञातव्य है कि आठवीं शताब्दी में भारत पर अरबों के आक्रमण होने लगे थे। तुर्की सुल्तान महमूद ने कश्मीर पर आक्रमण किया और वहाँ के सभी मन्दिरों और विहारों को जलाकर धराशायी कर देने का आदेश दिया। महोदय इलियट का कथन है कि बहुत सारे लोग भाग गये और जो रह गये उन्हें मौत के घाट उतार दिया।[1]

तुर्की आक्रमणकारियों ने नालन्दा वल्लभी तथा अन्य विश्वविद्यालयों को भी नष्ट किया था। काश्मीर में पुनः बौद्ध विनाश और अन्त में (चौदहवीं शताब्दी में) केवल लद्दाख में ही बौद्ध धर्म बच सका। ऐसे बौद्ध धर्म के विनाश के समय शेष बचे बौद्ध भिक्षु तिब्बत तथा नेपाल चले गये।

उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म, बौद्ध विहारों और भिक्षुओं पर आधारित था। अतः बौद्ध भिक्षुओं और बौद्ध विहारों के अभाव में बौद्ध उपासकों को कोई दिशा निर्देश करने वाला न रहा।

निःसन्देह बौद्ध धर्म का पतन मुस्लिम आक्रमणों के कारण हुआ। इस्लामने बुत (बुद्ध) को शत्रु के रूप में ग्रहण किया। 'बुत' एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ मूर्ति है। 'बुत' बुद्ध से निकला हुआ विकृत शब्द है। मुसलमानों के लिये बुत और

---

1. इलियट, दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई ओन हिस्टोरियन्स, जि0 5, पृ0 41.

बुद्ध एक ही थे । मूर्ति का ध्वंस करने का तात्पर्य था बौद्ध धर्म का ध्वंस करना । इस्लाम जहाँ भी गया बौद्ध धर्म का विनाश करता गया । वी0 ए0 स्मिथ के अनुसार मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा बौद्ध धर्म पर किया गया विध्वंस हिन्दू धर्म द्वारा किये गये विध्वंस से कहीं अधिक था । इस्लाम ने ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म दोनों पर आक्रमण किया । परन्तु ब्राह्मण धर्म बचा रहा और बौद्ध धर्म अपने को न बचा सका । कारण यह था कि प्रथमतः बौद्ध भिक्षुओं को उनके काषाय वस्त्रों के कारण पहचानना आसान था । द्वितीयतः ब्राह्मण धर्म के पास राज्य-संरक्षण था । साथ ही ब्राह्मण पुजारियों का संहार भी नहीं हुआ था । बौद्ध जनता का आक्रमणकारियों ने ही नहीं, ब्राह्मण शासकों ने भी उत्पीड़न किया । अतः इस संहार से बचने के लिये बौद्ध जनता के बहुत से लोगों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और बौद्ध धर्म त्याग दिया ।[1]

मुसलमान आक्रमणकारियों ने बौद्ध विश्वविद्यालयों (नालन्दा, विक्रमशिला, जगद्दल, ओदन्तपुरी) को नष्ट कर दिया । भिक्षुगण हजारों की संख्या में नेपाल तथा तिब्बत आदि को चले गये । काफी संख्या में वे मुसलमान सेना द्वारा मार दिये गये । भिक्षुओं का इस हद तक नरसंहार किया गया कि जब मुस्लिम विजेताओं ने बिहार प्रदेश के पुस्तकालयों की कुछ पुस्तकों को पढ़ने के लिये जिन्दा भिक्षुओं को खोजा तो एक भी बौद्ध विद्वान न मिल सका । बौद्ध धर्म की ज्योति को जलाने के लिये कोई न रहा ।[2] बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर के इन शब्दों को अक्षरशः केवल बिहार और उत्तर प्रदेश के लिये ही सत्य माना जा सकता है क्योंकि लद्दाख, हिमालय की तलहटी तथा चटगाँव आदि भारत के भूभागों में बौद्ध भिक्षु बराबर बौद्ध विचारों एवं विहारों की रक्षा प्राण-प्रण से करते रहे ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म बारहवीं शताब्दी तक भारत में विद्यमान रहा । बौद्ध भिक्षु उसकी रक्षा मन, वचन और कर्म से करते

---

1. बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज़, वाल्यूम 3, पृ0 229-230.
2. वही, पृ0 230-231.

थे और धर्म विरोधी लोगों से वाणी और लेखनी से यथासम्भव लोहा लेते और उन्हें पराजित करते रहे। लेकिन कुछ लोगों की राजाओं और सन्यासियों की हिंसक प्रवृत्ति का वे सामना न कर सके। वह स्वतः कुछ ब्राह्मणधर्मी लोग बौद्ध धर्म को येन-केन-प्रकारेण मिटा देने पर ही तुले थे। अस्तु उन्होंने हिन्दू मण्डल सिद्धान्त का सहारा लेकर बौद्धों तथा उनके स्मारकों और विद्यालयों को नष्ट करने के लिये विदेशी आक्रमणकारियों का सहयोग भी किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। फलतः नालन्दा, विक्रमशिला और ओदन्तपुरी जैसे बौद्ध विश्वविद्यालयों को अग्निसात कर दिया गया जिनकी संपूर्ति अभी सैकड़ों वर्षों तक न हो सकेगी। काश हम भारतवासी भारत और भारतीयों की रक्षा के लिये अब भी इन घटनाओं से सीख ले सकें। तभी इतिहास और उसके अध्ययन की सार्थकता है क्योंकि इतिहास एक 'चेतावनी' है जो अतीत के प्रति सजग और सचेत रहने के लिये आगाह करता है।

———:0:———

एकादश अध्याय

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सामग्री संग्रह के समय जिन नये-नये ग्रन्थों को अध्ययन करने का अवसर मिला उनसे ज्ञानवर्द्धन तो हुआ ही, अनेक भ्रान्तियां भी दूर हुईं । बौद्ध धर्म के विषय में ऐसी भ्रान्तियां अच्छे पढ़े-लिखे लोगों में भी व्याप्त हैं । बौद्ध धर्म के प्रति लोगों की पूर्वाग्रही उपेक्षा सी प्रतीत हुई । विदेशियों के साथ भारत की युद्धों में पराजय का कारण बौद्ध धर्म का अहिंसा का सिद्धान्त बतला दिया गया ।

<u>मूल स्रोतों के अध्ययन की उपेक्षा</u> :

भगवान बुद्ध के धर्म का अहिंसा का सिद्धान्त मध्यम मार्ग से बाहर जाकर चरम सीमा नहीं छूता । अहिंसा की चरम सीमा छूने वाला "अहिंसा परमो धर्मः" सिद्धान्त जैन धर्म का सिद्धान्त है, बुद्ध का नहीं । सम्पूर्ण बौद्ध वांग्मय (पालि त्रिपिटक) में "अहिंसा परमो धर्मः" पद का उल्लेख नहीं मिलता । बुद्ध का मध्यमार्गीय अहिंसा सिद्धान्त अपना अस्तित्व मिटाने के लिये नहीं बल्कि स्वयं जीने और दूसरों को जीने देने के लिये था । यही कारण था कि 1199 ई0 में जब मोहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने ओदन्तपुरी महाविहार (विश्वविद्यालय) पर आक्रमण किया तब वहाँ के आचार्यों और विद्यार्थियों ने जमकर मुस्लिम सेना का सामना किया और सभी ने महाविहार की रक्षा के लिये अपनी प्राणाहुति दे दी ।

उपर्युक्त भ्रान्ति-धारणा आज के अध्यापक-विद्यार्थी के लिये रूढ़ि सी हो गयी है । उसे चाहे मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण बतलाना हो अथवा गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण । उसके पास पहले से तैयार किया हुआ उत्तर है "बौद्ध धर्म के अहिंसावादी सिद्धान्त के कारण पतन हुआ" । इसका दोष अध्यापकों या मेरे जैसे विद्यार्थियों का नहीं है बल्कि अध्ययन के प्रति बढ़ती हुई उदासीनता की प्रवृत्ति एवं गम्भीरता की कमी का ही दोष है ।

विचारणीय है कि बुद्ध का मार्ग 'मध्यम मार्ग' था, वह अस्तित्व (सम्मान एवं स्वतन्त्रता) की सुरक्षा के लिये था उसे मिटा देने के लिये नहीं।

वास्तव में बुद्ध के इस सिद्धान्त को जितना गलत समझा गया और उसका जितना गलत प्रचार किया गया उससे बौद्ध धर्म की हानि तो हुई ही साथ ही यह कहकर वीर बौद्धों की देश रक्षा हेतु युद्ध करने की भावना को ही समाप्त करने का प्रयास किया गया। इस गलत भाष्य के विपरीत बुद्ध की देशना के वास्तविक भाव के संदर्भ में दो-एक उदाहरण आवश्यक हैं।

सर्वविदित है कि ओदन्तपुरी महाविहार पालि युगीन सर्वाधिक प्रतिष्ठित बौद्ध विद्या केन्द्र था। 1199 ई0 में मोहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने इस बौद्ध धर्म के केन्द्र पर हमला किया। यदि बुद्ध के प्राणातिपाता का वही उपर्युक्त अर्थ जैसा लोग मानते हैं, होता तो बुद्ध के अनुयायी-धर्माचार्य और विद्यार्थी अपनी रक्षा के लिये संघर्ष न करते। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वहाँ के भिक्षु आचार्यों और विद्यार्थियों ने आक्रमणकारी के दाँत खट्टे कर दिये और जब तक वहाँ का एक भी व्यक्ति जीवित बचा तब तक शत्रु महाविहार में प्रवेश न कर सका।[1]

यही नहीं श्रीलंका थेरवादी बौद्ध देश है और थेरवाद बुद्ध की मूल शिक्षाओं का पालन करता है। जब अँग्रेजों का उस पर आक्रमण हुआ तो अपनी और अपने देश-धर्म की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये वहाँ के गृहस्थ बौद्धों ने ही नहीं बल्कि भिक्षुओं ने भी शस्त्र उठाये। वियतनाम के बौद्ध कितने वर्षों से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये संघर्ष कर रहे हैं। यदि बुद्ध के उक्त सिद्धान्त का अर्थ किसी भी दशा में हिंसा न करना होता तो इन विहारों और देशों के बौद्धों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिये युद्ध न किया होता। इससे यही ज्ञात होता है कि इसका तात्पर्य यही था कि अपने हित स्वार्थ के लिये दूसरों की हिंसा करना पाप कर्म है।

---

1. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 671-72, डॉ0 विद्याधर महाजन.

हूण आक्रमण :

गुप्तादित्य के अस्ताचल की ओर बढ़ने पर ऐसा कोई भी न था जो बुद्ध के सरल पथ पर शाश्वत शान्ति की ओर अग्रसर होता । न तो अब अशोक ही था और न कनिष्क । छोटे-छोटे कुछ राजाओं ने बौद्ध संघ विहारों को दान दिये परन्तु राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ विषम थीं । वे आपस में लड़ने और एक दूसरे को नीचा दिखाने में ही इतिश्री मानते थे :-

"परस्परं नरेन्द्राणां संग्रामो दारुणोऽभवत्"

हूणों के आक्रमणों ने गुप्त वंश की नीवें उखाड़ दी थीं । धरती कांप उठी थी (धरा कंपिता)[1]। विदेशी हूणों ने ही नहीं, स्वदेशी पुष्यमित्रों ने भी आक्रमण करके गुप्त राज्यसत्ता को ही डगमगा दिया था (विचलित कुल लक्ष्मी)[2] यद्यपि हूण पराजित हुए और अपने देश को भी भाग गये थे, लेकिन उनके आक्रमण बन्द न हुये । वे प्रभाकर वर्द्धन के राज्यकाल (सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों) में भी होते रहे । काश्मीर में भी हूणों ने विध्वंस कार्य किया था ।

ईशान वर्मन के हड़हा अभिलेख में कहा गया है कि पृथ्वी कलि-मारुत प्रकोप से रसातल में चली गयी थी (भुवने ज्वालामुखाख्यां गतः)।[3]

कलि-कलह :

यह कलि (कलह) युग था । ब्राह्मणों और शूद्रों में तथा बौद्धों एवं अबौद्धों में वैर था । हीनयानियों और महायानियों में तथा शैवों और वैष्णवों में कलह व्याप्त था ।

---

1. स्कन्दगुप्त का भिटरी प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख, पं० 8.
2. वही, पं० 3.
3. ईशान वर्मन का हड़हा अभिलेख, पं० 4.

गुप्त सम्राटों ने जो 'स्र्व धर्म समन्वय' स्थापित किया था वह विश्रृंखलित हो गया था । हर्ष स्वयं बौद्ध था । कन्नौज के सर्व धर्म सम्मेलन के समय कुछ ब्राह्मणों के उकसाने पर हर्ष पर लोगों ने छुरे से प्राणघाती हमला किया जिसके कारण उन्हें निर्वासन का दण्ड दिया गया । इससे भी तत्कालीन धार्मिक कलह की पुष्टि होती है ।

मुस्लिम आक्रमण :

हूणों के बाद मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हुये । सबसे पहले वलभी पर मुस्लिम आक्रमण हुआ । 636 ई0 में थाना पर मुस्लिम आक्रमण हुआ । 712 ई0 में तीसरी बार मुहम्मद–बिन–कासिम को सिन्ध प्रदेश में विजय मिली । इन आक्रमणों में मठ, मन्दिर, विहार ढाये गये । ऋषि–मुनि, भिक्षु–सन्यासी मारे गये । कुछ तो भाग गये और अधिकांशतः विजेता के धर्म में परिवर्तित होकर चौगुने उत्साह से विध्वंस कार्य करने लगे । अस्तु यह उग्र संघर्ष का युग था ।

हर्ष के बाद अन्तर्वेदी (मध्य देश) में बौद्ध धर्म का कोई संरक्षक न था । काशी, सारनाथ, श्रावस्ती, मथुरा और कन्नौज के मन्दिर और विहार ध्वस्त कर दिये गये । मूर्तियाँ तोड़ दी गयीं । जब क्षत्रिय ही जिनके सिर पर देश रक्षा का भार था, भागने लगे और विजेता का धर्म स्वीकार करने लगे तब साधु, सन्यासियों और बौद्ध भिक्षुओं के पास कौन सा तोपखाना था ? उन्होंने भी शरण–स्थलों में जाकर शरण ली ।

अब केवल मगध ही एक मात्र बौद्धों की रक्षा का स्थान था । जहाँ इस अवधि (लगभग दसवीं से बारहवीं शताब्दी ई0 तक) बौद्ध धर्म, बौद्ध विद्याओं, शास्त्रों, शिल्पों और कलाओं की अत्यधिक उन्नति हुई । नालन्दा, विक्रमशिला और ओदन्तपुर महाविहार (विश्वविद्यालय) इन शताब्दियों में भी भारतीय तथा विदेशी विद्वानों को आकर्षित करते रहे ।

नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार आचार्य एवं विद्यार्थी थे । विक्रमशिला विश्वविद्यालय में छः महाविद्यालय थे । प्रत्येक के लिये अलग–अलग 'द्वार पण्डित' नियुक्त था । यहाँ आचार्यों की संख्या 648 और विद्यार्थियों की संख्या 8000 थी । यह वज्रयानी बौद्ध शिक्षा–दीक्षा का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र था । यहाँ के आचार्यों में रत्नवज्र, रत्नकीर्ति, ज्ञान श्रीमित्र, रत्नाकर शान्ति और अतिश दीपांकर श्रीज्ञान उल्लेखनीय हैं । इसकी स्थापना पाल शासक धर्मपाल ने की थी ।

ओदन्तपुर विश्वविद्यालय (महाविहार) की स्थापना पाल राजवंश के संस्थापक गोपाल ने की थी । बारहवीं शताब्दी का यह सबसे बड़ा बौद्ध विद्या केन्द्र था । यह विश्वविद्यालय एक दुर्ग के समान था । 1199 ई0 में मोहम्मद–बिन–बख्तियार खिलजी ने इसे नष्ट किया था । यहाँ के आचार्य और विद्यार्थियों ने आक्रमणकारी का स्वतन्त्रता और विद्या केन्द्र की रक्षा के लिये पूरी शक्ति के साथ सामना किया और जब तक एक भी व्यक्ति इस महाविहार का जीवित रहा, शत्रु महाविहार में प्रवेश न कर सका ।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि अस्तित्व, सम्मान और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये बुद्ध का 'प्राणिहिंसा से विरत रहने का सिद्धान्त' बाधक न था ।

इस प्रकार जो लोग यह कहते हैं कि 'अहिंसा' का मतलब है अन्याय तथा अत्याचार के सामने सिर झुकाना, उन्होंने बुद्ध के अहिंसावाद की मूलतः गलत व्याख्या की है ।[2]

बुद्ध के अहिंसावाद की आत्मनिष्ठ व्याख्या :

बुद्ध ने स्वयं अपने अनेक उपदेशों में अपने अहिंसा सिद्धान्त को स्पष्ट किया है । संयुक्त निकाय से पता चलता है कि एक बार मगध के सीमान्त प्रदेश में विप्लव मच गया । बिम्बिसार ने अपने सेनापति को आज्ञा दी, "जाओ और सेनानायकों

---

1. विद्याधर महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 671–72.
2. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृ0 395.

से कहो कि वहाँ के अपराधियों का पता लगायें और उन्हें दण्ड दें तथा शान्ति स्थापित करें"।

सेनापति की आज्ञा पाकर सेनानायक बड़ी दुविधा में पड़ गये क्योंकि वे जानते थे कि तथागत बुद्ध की देशना है कि जो युद्ध करवाते हैं, जिन्हें उसमें आनन्द आता है और जो लड़ने जाते हैं वे सभी अपुण्य करते हैं। यह सोचकर सेनानायकों ने भिक्षु-संघ में शामिल हो जाने का विचार किया और भिक्षु संघ से अनुमति प्राप्त कर संघ में शामिल हो गये। यह देखकर सेनापति बहुत अप्रसन्न और क्रोधित हुआ। इसकी सूचना मगधराज को दी। राजा ने न्यायाधीशों की राय ली। उन्होंने भिक्षु बनाने वाले उपाध्याय को विविध कठोर दण्ड देने का परामर्श दिया। यह सुनकर राजा भगवान बुद्ध के पास गया और सारी बात बतलायी।

तथागत बुद्ध ने उत्तर दिया, "मेरा यह कभी विचार नहीं रहा कि अहिंसा का नाम लेकर या अहिंसा की ओट में सैनिक अपने राजा का देश के प्रति जो उनका कर्तव्य है उससे विमुख हो जायें।"

तदनुसार महामानव बुद्ध ने राजकीय सैनिकों के भिक्षु-संघ में प्रविष्ट होने के विरुद्ध एक नियम बना दिया और यह घोषणा कर दी, "भिक्षुओं! किसी राजकीय सैनिक को प्रव्रज्या न मिले। यदि कोई देगा तो उसे दुष्कृत (दुक्कट) दोष होगा"।[1]

भगवान बुद्ध के इस विषय में एक अन्य उपदेश को बतलाना भी आवश्यक है जिससे इस सिद्धान्त से बुद्ध की इरादे और भाष्यकारों के इरादे स्पष्ट हो सकें।

---

1. अलगद्दूपम सुत्त, मज्झिम निकाय (हि0)
   दृष्टव्य, भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृ0 396-97.

सिंह वैशाली का सेनापति था । वह श्रमण महावीर (जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर) का अनुयायी था । अहिंसा के विषय में उसके मन में भी शंकायें थीं । जो सेनापति के कर्तव्य पालन में बाधक थीं । भगवान बुद्ध से उसने निवेदन किया, "अभी भी एक संदेह मेरे मन में शेष है, क्या आप कृपा करके मेरे मन के अन्धकार को दूर कर देंगे ताकि मैं धर्म को उसी रूप में समझ सकूँ जिस रूप में आपने उसका प्रतिपादन किया है" । तथागत की अनुमति पाकर सेनापति ने पूछा –

"मैं सेनापति हूँ । मुझे राजा ने युद्ध लड़ने के लिये और अपने कानूनों का जनता द्वारा पालन करवाने के लिये ही नियुक्त किया है । तो क्या तथागत जो दुनिया के प्रति दया और असीम करुणा की शिक्षा देते हैं, अपराधियों को दण्ड देने की अनुमति देते हैं ? और क्या तथागत का यह भी कहना है कि अपने घरों, अपने बीबी–बच्चों और अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने के लिये युद्ध करना ठीक नहीं ? क्या तथागत सम्पूर्ण आत्मसमर्पण की शिक्षा देते हैं कि हम आततायियों को जो वे चाहें, करने दें और जो ज़ोर–जबर्दस्ती से हमारी चीज हमसे छीनना चाहे उसे ले लेने दें ? क्या तथागत का यह कहना है कि सभी प्रकार के युद्ध – ऐसे युद्ध भी जो न्याय की रक्षा के लिये लड़े जाते हैं – वर्जित हैं ?"

तथागत बुद्ध ने उत्तर दिया, "जो दण्डनीय है उसे दण्ड मिलना ही चाहिये । जो उपहार देने योग्य हैं उन्हें उपहार दिया ही जाना चाहिये । साथ ही किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि उसके साथ प्रेम और दया का बर्ताव होना चाहिए । यह आदेश परस्पर विरोधी नहीं हैं । जब कोई अपने अपराध के लिये दण्ड भुगतता है, वह न्यायाधीश की द्वेष बुद्धि के कारण नहीं, बल्कि अपने ही अकुशल कर्म के परिणाम स्वरूप । न्यायाधीश द्वारा दिया गया दण्ड उसके अपने कर्मों का फल है" ।[1] ... इन बातों पर अच्छी तरह विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए

---

1. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृ0 297–98;
   राहुल सांकृत्यायन, सिंह सेनापति, पृ0 269–275.

कि भगवान बुद्ध की देशना में अहिंसा का मुख्य स्थान है किन्तु निरपेक्ष नहीं ही है । उन्होंने किसी खतरनाक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया आलोचक ही उसके यथार्थ-स्वरूप और क्षेत्र को ठीक-ठीक नहीं समझ पाये ।[1]

राष्ट्रभाषा हिन्दी के जन्मदाता – सिद्ध सरहपाद :

इस शोध-प्रबन्ध के प्रणयन से एक बात यह स्पष्टतः सामने आयी है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के जन्मदाता भिक्षु 'सिद्ध' थे । सिद्ध सरहपाद को इसका जनक माना जा सकता है । इनके बाद तिरासी सिद्ध हुये । सिद्धों की कुल संख्या चौरासी है । सरहपाद, पाल शासन काल के बौद्ध आचार्य थे जिन्होंने बुद्ध उपदेशों (वज्रयानी शाखा) को साधारण लोगों में प्रचार-प्रसार करने के लिये साधारण से साधारण बोल-चाल की भाषा को अपनाया था । इनका समय आठवीं शताब्दी माना जाता है । महामना राहुल सांकृत्यायन ने उनकी रचनाओं का संग्रह 'दोहा कोश' नाम से प्रकाशित किया है । राहुल जी उन्हें दोहा लेखन का भी प्रवर्तक मानते हैं ।[2] कबीर तथा अन्य निर्गुणपन्थी सन्तों की भाषा, शैली, वर्ण्य-विषय आदि पर सरहपाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है ।[3] राष्ट्रभाषा हिन्दी, देवभाषा संस्कृत की अपेक्षा बौद्ध धर्म की मूल भाषा पालि के अधिक सन्निकट और अभिन्न प्रतीत होती है । कुछ शब्दोदाहरण दृष्टव्य हैं

पालि शब्द	हिन्दी शब्द
सब्ब	सब
सुख	सुख
दुक्ख	दुख

---

1. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृ0 298.
2. दोहा कोश, भूमिका, पृ0 1.
3. सरहपाद : जंह मन पवन न संचरह ।
   रवि ससि णाहि पवेस ।।
   कबीर : पानी पचन की गमि नहीं ।
   रवि ससि उदय न होय ।।

पालि शब्द	हिन्दी शब्द
लोक	लोग
वेर	वैर
धम्म	धर्म
थूप	स्तूप
पानिय	पानी
नदिया केवट्ट	नदिया केवट

अठारह निकायों में महायान नहीं :

महावंस के अनुसार बौद्ध धर्म की दूसरी बौद्ध परिषद् में थेरवाद और महासांघिक दो शाखायें हो गयी थीं । बाद में थेरवाद के बारह निकाय और महासांघिक के छः निकाय हुए । ये सभी निकाय एक ही यान – हीनयान की शाखायें थीं । यहाँ तक महायान का आविर्भाव नहीं हुआ था जबकि प्रायः लोग कहते और पढ़ाते भी हैं कि उक्त बारह शाखायें हीनयान की और छः शाखायें महायान की थीं जो बिल्कुल गलत हैं । महायान का उदय सैकड़ों वर्ष बाद हुआ । सम्पूर्ण पालि साहित्य में हीनयान और महायान शब्दों का उल्लेख नहीं मिलता । इन दोनों शब्दों का तुलनात्मक रूप से सबसे पहली बार उल्लेख 'सद्धर्म पुण्डरीक' नामक संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ में मिलता है जो ई0 स० की प्रथम से तृतीय शताब्दी के मध्य की रचना मानी गयी है ।[1]

त्रिपिटक प्रथम बौद्ध संगीति की नहीं, तृतीय संगीति की देन है :

इसी प्रकार लोग यह मान बैठे हैं कि प्रथम बौद्ध संगीति में बुद्ध वचनों का संकलन त्रिपिटक रूप में किया गया । त्रिपिटक में विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक हैं । जबकि त्रिपिटक का संकलन सम्राट् अशोक के संरक्षण में सम्पन्न तृतीय बौद्ध संगीति में किया गया था । प्रथम बौद्ध संगीति में केवल दो पिटक – विनयपिटक तथा धर्मपिटक के रूप में ही बुद्ध वचनों का संकलन हुआ जिनके क्रमशः

1. सं0 बो0 सा0 भा0 जी0, पृ0 139

संयोजक उपालि तथा आनन्द थे । तृतीय बौद्ध संगीति में धम्मपिटक को सुत्त और अभिधम्मपिटक दो भागों में विभक्त कर दिया गया और उन्हें सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक नाम दिया गया ।अस्तु त्रिपिटक अशोककालीन उपलब्धि थी ।

जयचन्द्र बौद्ध शासक एवं अन्तिमचक्रवर्ती सम्राट :

उत्तर भारत का अन्तिम चक्रवर्ती सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) नहीं, बल्कि गहड़वाल शासक जयचन्द था । चन्द्रबरदाई जैसे पृथ्वीराज के दरबारी कवि और चारणों ने जयचन्द्र को देशद्रोही और मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित करने वाला तक लिख दिया और अपने स्वामी को उत्तरी भारत का अन्तिम चक्रवर्ती सम्राट् । उस समय के किसी भी लेखक–कवि ने जयचन्द्र पर ऐसा आरोप नहीं लगाया । चन्द्रबरदाई का आरोप सापेक्ष था ।

यह उल्लेखनीय है कि गहड़वाल शासकों की दो राजधानियां थीं – वाराणसी और कन्नौज । विस्तृत भूभाग पर जयचन्द्र तथा उसके पिता का साम्राज्य था । साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से गहड़वाल साम्राज्य चाहमान राज्य की अपेक्षा कई गुना विस्तृत था । कुशीनगर, श्रावस्ती, नालन्दा, बोधगया और कन्नौज आदि के विहारों और महाविहारों (बौद्ध विद्या केन्द्रों) को जयचन्द्र तथा उसके पूर्वजों ने धन तथा भूमि का दान दिया था ।[1] दक्षिण में चन्देलों की राज्य सीमा तक उसका राज्य फैला हुआ था ।

जयचन्द्र के बोधगया अभिलेख से पता चलता है कि यह गहड़वाल शासक बुद्ध धर्मानुयायी था और श्रीमित्र उसके दीक्षा गुरु थे । यह भी पता चलता है कि बचपन में ही जयचन्द्र की बौद्ध शिक्षा–दीक्षा के लिये उसकी दादी महाराजा गोविन्दचन्द्र की पटरानी कुमारदेवी ने जो स्वयं बौद्ध धर्म की अनुयायी थी, प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु जगन्मित्रानन्द को नियुक्त किया था ।[2] यह भी उल्लेखनीय है कि बाद में सम्राट्

---

1. सारनाथ का इतिहास, भिक्षु धर्म रक्षित, पृ0 92.

2. वही,

जयचन्द्र ने अपने धर्मगुरु को बुद्ध उपदेशों के प्रचार–प्रसार के लिये नेपाल भेजा था ।[1] वे बौद्ध धर्मानुयायी होते हुये भी ब्राह्मण धर्म के प्रति उदार थे । अपनी प्रजा के हित–सुख का वे सदेव ध्यान रखते थे ।

यह कथन कि मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय जयचन्द्र ने पृथ्वीराज की सहायता न करके देशद्रोह किया, उचित प्रतीत नहीं होता क्योकि चाहमान राज्य पर आक्रमण करने से पहले उसने चाहमान राज्य के पड़ोसी चालुक्य राज्य पर आक्रमण किया था । उस समय पृथ्वीराज भी हाथ पर हाथ रखे बैठा रहा और चालुक्य शासक भीम द्वितीय की सहायता नहीं की थी । अस्तु यदि विदेशी आक्रमण के समय पड़ोसी राज्य की सहायता न करना देशद्रोह था तो जयचन्द्र की अपेक्षा पृथ्वीराज अधिक बड़ा देशद्रोही था । क्योकि यदि उन्होंने चालुक्य शासक की सहायता की होती तो शायद मुहम्मद गोरी भारत की ओर मुड़कर देखने की हिम्मत भी न करता ।

पृथ्वीराज की तरह जयचन्द्र विलासी और दूसरों की पुत्रियों का अपहरण करने वाला शासक भी न था । ऐसी स्थिति में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि चूँकि बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी ई० के बाद उत्तर भारत में बौद्ध धर्म के पराभूत होने के कारण ब्राह्मणधर्मी लेखकों ने बौद्ध शासक जयचन्द्र तथा उसके माध्यम से बौद्ध धर्म के प्रति कदाचित ऐसे निराधार दोष मढ़े ।

ब्राह्मण धर्म का द्वेषभाव :

भारत धर्म प्रधान देश है । धर्म के नाम पर यहाँ के धन–जन का जितना शोषण हुआ है उतना शायद ही विश्व के किसी दूसरे देश में हुआ हो । जैसे यहाँ एक राज्य पड़ोसी राज्य को हड़प कर एक साम्राज्य बनना चाहता था वेसे ही धर्मों की भी स्थिति थी । शैवों और वैष्णवों की प्रतिद्वन्दिता ज्ञात ही है । बौद्ध धर्म के पराभव का

---

1. सारनाथ का इतिहास, पृ0 93

सूत्रपात गुप्तकालीन धार्मिक समन्वयवाद से प्रारम्भ हुआ जिसके कारण ब्राह्मण धर्म के वे सामाजिक दोष और अन्धविश्वास तथा रूढ़ियां बौद्ध धर्म में भी घर करने लगीं। ऐसी ही रूढ़ियों और दोषों के विरुद्ध तथागत महामानव बुद्ध ने आन्दोलन छेड़ा था।

प्रारम्भ में इस समन्वयवाद का उद्देश्य कितना भी पवित्र रहा हो लेकिन इसकी परिणति बौद्ध शासकों पर घातक हमले, छद्मवेशी बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध केन्द्रों और तीर्थों का ब्राह्मणीकरण करने में हुई। बोधगया के बोधिवृक्ष को जड़मूल से कटवा देना, महाबोधि विहार से भगवान बुद्ध की मूर्ति हटाकर शिवलिंग की स्थापना करना, वहीं पर पंचवर्गीय भिक्षुओं और सुजाता की मूर्तियों को पाँच पाण्डवों और छठवीं द्रोपदी की मूर्ति घोषित करना, संकिशा (जिला फर्रुखाबाद) के सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित स्तूप के नीचे विसहरी देवी का मन्दिर बना देना, उड़ीसा के पुरी के भगवान बुद्ध के दन्तधातु स्तूप पर मन्दिर बना देना, इसी प्रकार अमरावती (आन्ध्र प्रदेश) तथा अन्य बौद्ध केन्द्रों को बौद्धों के हाथों से छीनकर अपना बना लेने के कार्यवाहियाँ आदि इसी समन्वयवाद के दुष्परिणाम थे।

छद्मवेशी भिक्षु :

सम्राट् अशोक ने ठीक ही कहा था कि जो कुछ भी भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है वह सुभाषित ही है – ए केचि भंते भगवता बुधेन भासिते सर्वे से सुभाषिते वा। आज जो कुछ अन्धविश्वास तथा बुद्ध सिद्धान्त के परे की बातें बौद्ध धर्म में दिखाई पड़ रही हैं वे उन लोगों द्वारा जोड़ी गयी प्रक्षिप्त बातें हैं जिन्होंने इसी कार्य के लिये ही छद्म रूप में बौद्ध भिक्षु–चर्या ग्रहण की थी।

विचार स्वातन्त्र्य :

बुद्ध का धर्म काल सीमाओं से परे (अकालिक) है। वह अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों के लिये हितकारी और सुखकारी है। वह धर्म सन्दृष्ट है। बौद्ध धर्म कहता है कि आओ देखो और समझो (एहि पस्सिको) यदि तुम्हें हितकर लगे तो अपनाओ।

कालाम गणराज्य के लोग इसलिये परेशान थे कि जिस धर्म के आचार्य आते थे वे अपने धर्म की प्रशंसा और दूसरों के धर्म की निन्दा करते थे । इसलिए कौन धर्म अच्छा है यह जानने के लिये वे चिन्तित थे । एक समय जब बुद्धचारिका करते हुए कालाम गण की राजधानी केसपुत्त मे ठहरे तो कालाम लोगो ने अपनी इस परेशानी को उनसे भी बतलाया । महामानव बुद्ध ने उनसे कहा 'कालामो ! किसी बात को इसलिए सही मत मानो कि वह धर्म ग्रन्थो मे लिखी है, किसी बात को इसलिए सही मत मानो कि वह परम्परा से चलती आ रही है किसी बात को इसलिए भी सही मत मानो कि उसे पूर्वज कहते या करते आ रहे है और किसी बात को इसलिए भी सही मत मानो कि उसे किसी आकर्षक व्यक्तित्व ने (मैने भी कही है किसी बात को सुनो, समझो और मनन करके देखो कि वह तुम्हारे तथा समाज के हित, सुख और कल्याण के लिये है या नहीं. यदि कल्याणकर है तो उसे स्वीकार करो अन्यथा नहीं ।[1]

ससार के चिन्तन स्वातंत्र्य के इतिहास मे यह प्रथम घोषणा-पत्र था जब किसी धर्म प्रर्वतक ने मानव समाज को यह स्वतन्त्रता दी हो कि जिससे वह स्वयं धर्म प्रवर्तक के विचार कथनो को भी बुद्धि की कसौटी पर कस सके और साहस के साथ कह सके यह अकल्याणकर है और अकरणीय है।

कर्मफल की आत्मनिष्ठ व्याख्या

बुद्ध कर्मफल सिद्धान्त के प्रतिपादक थे जिन्होने सबसे पहले कहा कि 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे उनका कहना था, यदि कर्मफल के सिद्धान्त को दृढ़तापूर्वक न माना जाये तो नैतिक अनुशासन निभ ही नही सकता' ।[2] बुद्ध का यह कर्मफल सिद्धान्त अन्य धर्मो से भिन्न था । उनके कर्म सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल

---

1. कालाम सुत्त
2. भगवान बुद्ध और उनका धर्म पृ0 269

कर्म से था और वह भी वर्तमान जन्म के कर्म से ही । कुछ धर्मो में यह सिद्धान्त पूर्वजन्म के कर्म से ही सम्बन्धित माना जाता है । उनके अनुसार यदि आदमी का जन्म गरीब परिवार मे हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्मो का परिणाम है । यदि एक आदमी धनी घर में पैदा हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का परिणाम है । यदि किसी में कोई जन्मजात दोष है तो उसका कारण उसके पूर्वजन्म का बुरा कर्म है । यह एक बड़ा ही खतरनाक सिद्धान्त है क्योंकि यदि कर्म की यदि कर्म की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाये तो मानव प्रयास के लिये कहीं कुछ गुंजायश नहीं रह जाती । पूर्वजन्म के कर्म से ही सभी कुछ पूर्व निश्चित रहता है । [1] भगवान बुद्ध ने इस प्रकार का सिद्धान्त कभी भी प्रतिपादित नहीं किया ।

बौद्ध धर्म की उपादेयता

आज के आणविक और इलेक्ट्रानिक युग मे ससार सिमट कर बहुत संकुचित हो गया है अब हजारो किलोमीटर दूरस्थ देशो को कुछ ही घण्टों मे पहुँचा जा सकता है । दूषित मन होने पर बिना वहाँ गये हुये उन्हें नष्ट किया जा सकता हे । शक्तिशाली राष्ट्रो ने ऐसे सृष्टि विनांशक यन्त्र बना रखे है कि चन्द मिनटों में ही पूरे संसार को तबाह किया जा सकता है । लेकिन मनुष्य को जीवन बहुत प्रिय है वह कभी मरना नही चाहता । विडम्बना यह है कि वह दूसरों को तो नष्ट करना चाहता है लेकिन अपने को बचाना चाहता है । यह राग, द्वेष, लोभ और मोह के कारण ही है । अस्तु अब विश्व को ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो करुणा मैत्री, समानता, बन्धुता और न्याय पर आधारित हो और अपने हित के साथ अन्यों के हित को भी महत्व देता हो जो बाहरी शक्ति को महत्व प्रदान करने के स्थान पर पुरुष के अन्दर निहित पौरुष को गुरुता प्रदान करता हो, साथ ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' की केवल शिक्षा ही न देता हो उसे व्यवहार में भी लाता हो । इन कसौटियो पर बौद्ध धर्म खरा

---

1 भगवान बुद्ध और उनका धर्म. पृ0 269.

उतरा है, यही कारण है कि विश्व के अन्य धर्मों के भी लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए और अब भी हो रहे हैं। निष्कर्षतः विश्व मे सुख और शान्ति की स्थापना के लिये बुद्ध के सिद्धान्तों की परमावश्यकता है।

इस विषय में कुछ विद्वानों के विचारो को उदधृत करना उपयुक्त प्रतीत होता है ताकि हम भारतीय यह भी समझ सके कि दुनिया के विद्वानो के बुद्ध और बौद्ध धर्म के विषय मे क्या विचार हैं ?

महोदय ई0 जी0 टेलर ने अपने ग्रन्थ 'बुद्धिज्म एण्ड मॉडर्न थाट' में लिखा है, 'काफी समय से आदमी बाहरी ताकतों के दबाव में रहा है। यदि उसे सभ्य शब्द के वास्तविक अर्थों में सभ्य बनना है तो उसे अपने ही नियमों द्वारा अनुशासित रहना सीखना होगा। बौद्ध धर्म ही वह प्राचीनतम विचारधारा है जिसने आदमी को स्वय अपने आप अनुशासक बनने के शिक्षा दी है। इसलिए इस प्रगतिशील संसार को बौद्ध धर्म की आवश्यकता है ताकि वह इससे यह ऊँची शिक्षा हासिल कर सके।[1]

प्रोफेसर डेविड गोडर्ड का कथन है, "संसार मे जितने भी धर्म संस्थापक हुए है उनमे भगवान बुद्ध को ही यह गौरव प्राप्त है कि उन्होंने आदमी में मूलत विद्यमान उस निहित शक्ति को पहचाना जो बिना किसी वाह्य निर्भरता के उसे मोक्ष पद पर अग्रसर कर सकती है। यदि किसी महान पुरुष का महात्म्य इसी बात में है कि वह मानवता को कितनी मात्रा मे महानता की ओर अग्रसर करता है, तो तथागत से बढ़कर दूसरा कौन सा व्यक्ति महान हो सकता है ? भगवान् बुद्ध ने किसी बाह्य शक्ति को आदमी के ऊपर बिठाकर उसका दर्जा नही घटाया बल्कि उसे प्रज्ञा और मैत्री के शिखर पर ले जाकर बिठा दिया है।"[2]

---

1. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृ0 465.
2. वही, पृ0 465 66.

बुद्धिज़्म ग्रन्थ के लेखक ई0 जे0 मिलर महोदय का मत है कि किसी दूसरे धर्म में विद्या को इतना महत्व नही दिया गया है और अविद्या की इतनी गर्हा नहीं की गयी है जितनी बौद्ध धर्म मे । कोई दूसरा धर्म अपनी आँख खुली रखने पर इतना जोर नहीं देता किसी दूसरे धर्म मे आत्म विकास की इतनी विस्तृत तथा इतनी व्यवस्थित योजना प्रस्तुत नही की । [1]

स्पष्टत बुद्ध के वर्ण जाति और वर्ग विहीन उदात्त सिद्धान्त ही है जो आज भी भारत को एक सूत्र में बाधने मे समर्थ हैं और जिनके आधार पर ही भारत विश्व के अधिकाश देशों को अपना हितैषी मित्र बना सकता है और बना भी रहा है । वस्तुतः वर्ण और जाति समाज को विश्रृंखलित करने वाले तत्व हैं इसीलिए इस बीसवीं शताब्दी के बौद्ध धर्म के महान् चिन्तक और सद्धर्म चक्र के पुरावर्तक गणतन्त्र भारत के संविधान निर्माता डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने यहॉ तक कह दिया था वर्ण विहीन समाज की स्थापना के बिना स्वराज्य प्राप्ति का कोई महत्व नहीं।

आगे इस प्रकार शोध प्रबन्ध से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर यही स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म जो बारहवी शताब्दी तक एक जीवन्त शक्ति के रूप में विद्यमान था आज भी वह देश को सबल और समृद्ध तथा सगठित बनाने के लिये सक्षम है ।

0

सहायक ग्रंथ-सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

मूल स्रोत ग्रन्थ

(अ) पालि ग्रन्थ

अंगुत्तर निकाय - स0 भिक्खु जगदीश कस्सप, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा 1960.

अभिधम्मावतार - स0 महेश तिवारी, पालि परिवेण दिल्ली 1987.

कथाव थु - स0 जगदीश कस्सप नव नालन्दा महाविहार नालन्दा, 1961.

खुद्दक निकाय - राहुल सांकृत्यायन, आनन्द कौशल्यायन एव जगदीश कस्सप महाबोधि सभा, सारनाथ, 1937.

चरिया पिटक - जगदीश कस्सप, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा 1959.

जातक - भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं0 2008–14

दीघ निकाय – भिक्खु जगदीश कस्सप नव नालदा महाविहार नालन्दा .

दीघ निकाय - राहुल सांकृत्यायन बुद्ध विहार लखनऊ, 1979

धम्मपद – स0 विनोबा सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी 1991.

पालि- प्रकृत -व्याकरण - मथुरा प्रसाद दीक्षित, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली 1954

बौद्ध चर्या - पद्धति – भदन्त बोधानन्द महास्थविर, भारतीय बौद्ध समिति बुद्ध विहार, 1990 (संस्करण 6)

मज्झिम निकाय - राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा सारनाथ, बुद्धाब्द 2508

महापरिनिब्बान सुत्तं - भिक्षु कित्तिमा, बर्मा, बुद्धाब्द 2485.

महापरिनिब्बान सुत्तं स्थविर ग0 प्रज्ञानन्द भारतीय बोर्ड शिक्षा परिषद् लखनऊ, 1981.

मिलिन्द प्रश्न – जगदीश कस्सप, धर्मोदय सभा कलकत्ता, 1951.

महावंस – गुणपाल वीर शेखर कोलम्बो, 1955.

महावंस भदन्त आनन्द कोसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 2014.

वृहज्जातक - वराहमिहिर, जयकृष्ण दास हरिदास गुप्त बनारस 1957.

विनयपिटक - राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा सारनाथ 1935.

संयुक्त निकाय - भिक्खु जगदीश कस्सप, भिक्खु धर्मरक्षित, महाबोधि सभा, सारनाथ बुद्धाब्द, 2498.

(ब) संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ

अभिधर्म कोश - आचार्य वसुबंधु अनु0 आचार्य नरेन्द्रदेव हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद 1958.

आर्यमंजुश्रीमूलकल्प - सं0 पी0 एल0 वैद्य, मिथिला विद्यापीठ. दरभंगा 1964

अवदान कल्पलता - क्षेमेन्द्र. सम्पादक पी0 एल0 वैद्य मिथिला विद्यापीठ दरभगा 1959.

अवदान शतक - सं0 पी0 एल0 वैद्य मिथिला विद्यापीठ. दरभंगा, 1958.

अशोकावदान स0 एस0 के0 मुखोपाध्याय नई दिल्ली 1963.

जातकमाला – आर्यशूर, पी0 एल0 वैद्य मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1959

दिव्यावदान - सं0 पी0 एल0 वैद्य मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1959.

दिव्यावदान - स0 कावेल एण्ड नील, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 1886

बुद्धचर्यावतार शान्ति भिक्षु शास्त्री बुद्ध विहार, लखनऊ बुद्धाब्द 2499.

बुद्ध चरित - अश्वघोष स0 ई0 एच0 जास्टन कलकत्ता 1936.

बुद्ध चरित (अश्वघोष) - सं0 ई0 वा0 कावेल आक्सफोर्ड 1893.

बुद्ध चरित, अश्वघोष, स0 अनु0 सूर्य नारायण चौधरी संस्कृत भवन कठौतिया विहार 1953.

महायान सूत्र सग्रह - पी0 एल0 वैद्य, मिथिला विद्यापीठ दरभंगा, 1961.

महावस्तु सं0 ई0 स्नेनार्ट पेरिस 1882 1897

महावस्तु स0 आर0 जी0 वसाक, कलकत्ता संस्करण

लंकावतारसूत्र - सं0 पी0 एल0 वैद्य, मिथिला विद्यापीठ, दरभगा 1963.

ललितविस्तर स0 पी0 एल0 वैद्य मिथिला विद्यापीठ दरभंगा 1958.

(स) <u>संस्कृत ग्रन्थ</u>

अभिज्ञान शाकुन्तलम – कालिदास, सुबोध कान्त पन्त, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली 1983

कल्कि पुराण स0 पं0 श्री राम शर्मा आचार्य
सस्कृति सस्थान, बरेली. प्रथम सस्करण 1970

कादम्बरी निर्णय सागर प्रेस, सप्तम सस्करण, 1970.

कालिका पुराणम स0 श्री विश्व नारायण शास्त्री
सस्कृति सस्थान वाराणसी प्रथम संस्करण वि0 संवत 2029.

कूर्म पुराण - स0 पं0 श्री राम शर्मा आचार्य
सस्कृति सस्थान, बरेली 1970 प्रथम सस्करण खण्ड 1-2.

कूर्म महापुराणम सं0 डॉ0 सी0 आर0 स्वामीनाथन
नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1983.

कूर्म महापुराणम, जि0 2 - सं0 डॉ0 सी0 आर0 स्वामीनाथन

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1983

दन्त पुराणम - स्व0 टीकाकार स्वामी श्री मद्वासु देवानन्द सरस्वती

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

देवी भागवत पुराणम - स0 डॉ0 पुष्पेन्द्र कुमार

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1986

नारद पुराण - स0 आचार्य श्री राम शर्मा

सस्कृति सस्थान, बरेली, प्रथम सस्करण 1971

नारद पुराण - स0 पं0 श्री राम शर्मा आचार्य

सस्कृति सस्थान बरेली 1971 प्रथम सस्करण ॥

नारदीय महापुराणम स0 डॉ0 चारुदेव शास्त्री

नाग पब्लिशर्स, दिल्ली 1984

पद्म महापुराणम - सं0 प्रो0 डॉ0 चारुदेव शास्त्री

नाग पब्लिशर्स 1984 प्रथम भाग

पद्म महापुराणम - स0 चारुदेव शास्त्री

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1984 द्वितीय भाग

पद्म महापुराणम - सं0 चारुदेव शास्त्री

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1984 तृतीय भाग

पद्म पुराण - सं0 प्रो0 डॉ0 चारुदेव शास्त्री

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1984 चतुर्थ भाग

ब्रह्मपुराणम - सं0 डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1985

वराह महापुराणम् - स0 डॉ0 के0 वी0 शर्मा

मेहर चन्द्र लक्ष्मण दास दरियागंज, नई दिल्ली, 1984

ब्रह्माण्ड पुराण डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1985.

भविष्य महापुराणम. जि0 एक - डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स, दिल्ली 1984. I

भविष्य पुराणम - डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स. दिल्ली 1984. II

भविष्य पुराणम् - डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स. दिल्ली 1985. III

भागवत पुराण - सं0 आशुतोष शर्मा विश्वास

पब्लिशर्स भारत सरकार सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय 1968

मत्स्य पुराण डॉ0 पुष्पेन्द्र कुमार

मेहर चन्द्र लक्ष्मण दास दरियागंज नई दिल्ली. 1984

मत्स्य महापुराणम् डॉ0 प्रो0 एच0 एच0 विल्सन

नाग पब्लिशर्स. दिल्ली 1983 प्रथम संस्करण I.

मत्स्य महाराण प्रो0 एच0 एच0 विल्सन

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1983 प्रथम संस्करण II.

मुद्राराक्षस- विशाखदत्त सं0 सत्यव्रत सिंह. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1968.

मनुस्मृति मनु व्या0 कुल्लूक भटट पाण्डुरग, बम्बई 1929.

महाभागवत् पुराणम् डॉ0 पुष्पेन्द्र कुमार

पब्लिशर्स ईस्टर्न बुक लिंकर, दिल्ली 1983.

महाभारत - गीता प्रेस. 1980.

मार्कण्डेय पुराणम् - डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स. दिल्ली 1983.

मुण्डक उपनिषद गीता प्रेस गोरखपुर 1965.

राजजतरंगिणी - कल्हण - व्या0 रामतेज शास्त्री चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, दिल्ली 1985

लिंग पुराणम् - सम्पा0 पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्कृति संस्थान बरेली 1971 द्वितीय संस्करण, II.

वामन पुराणम स0 पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब बाली, बरेली, 1971.

वृहदारणयक उपनिषद - गीताप्रेस गोरखपुर, 1964.

विष्णु पुराण -- स0 डॉ0 एच0 एच0 विल्सन वाल्यूम - I

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1984.

विष्णु पुराणम् - डॉ0 एच0 एच0 विल्सन वाल्यूम II.

नाग पब्लिशर्स. दिल्ली 1984.

विष्णु महापुराणम् - सं0 डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1985.

स्कन्द महापुराणम - स0 डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1986, II.

स्कन्द महापुराणम - डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स, दिल्ली 1986, III.

स्कन्द पुराणम - सं0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली. 1987, IV

स्कन्द महापुराणम सं0 डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1986, V.

हरिवंश पुराणम - सं0 डॉ0 राजेन्द्र नाथ

नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1985, I.

हरिवश महापुराणम सं0 डॉ0 राजेन्द्र नाथ
नाग पब्लिशर्स दिल्ली 1985 ।।

हर्षचरित बाण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी 1962.

गौण स्रोत ग्रन्थ

(अ) हिन्दी ग्रन्थ

अल्टेकर ए0 एस0; गुप्त युग, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी. 1970.

अवस्थी ए0 बी0 एल0, प्राचीन भारतीय भूगोल, लखनऊ प्रकाशन 1973.

उपाध्याय बलदेव; बौद्ध दर्शन मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी. 1972

कासीनाथ; उपनिषत्सार सग्रह नवल किशोर प्रेस लखनऊ. 1933

कोसबी, दामोदर धर्मानद; भारतीय सस्कृति और सभ्यता राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1990

कौसल्यायन. भदन्त आनन्द, भगवान बुद्ध और उनका धर्म सिद्धार्थ प्रकाशन बम्बई 1961.

गार्डन, डी0 एच0, भारतीय सस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना 1970

गुप्त, नत्थूलाल; विदर्भ का सांस्कृतिक इतिहास, विश्व भारती प्रकाशन नागपुर 1979

चिन्मयानन्द, स्वामी, कठ उपनिषद तथा आत्म दर्शन इन्द्र प्रिंटिंग प्रेस अल्मोड़ा, 1946

चौधरी, राममूर्ति; हरिवंश पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन, सुलभ प्रकाशन लखनऊ. 1989.

झा, रघुनाथ; वृहदारण्यक उपनिषद : एक समीक्षात्मक अध्ययन, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 1984

थपल्याल के0 के0 एव शुक्ला, सकटा प्रसाद पुरातत्व के रोचक प्रसग, स्वाति पब्लिकेशन दिल्ली 1988

दत्त, रमेशचन्द्र; प्राचीन भारतीय सभ्यता का इतिहास, अनु0 गोपालदास एव कमलाकर तिवारी. इतिहास प्रकाशन संस्थान इलाहाबाद. 1963

दास वृन्दावन; प्राचीन भारत के हिन्दू राज्य साहित्य प्रकाशन, दिल्ली 1972.

दुबे, हरिनारायण; पुराण समीक्षा, इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फार डेवलपमेन्ट रिसर्च, इलाहाबाद, 1984.

देव, नरेन्द्र आचार्य; बौद्ध धर्म दर्शन, पटना 1956.

देवराज, एन0 के0 भारतीय सस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग), लखनऊ 1979.

धर्मरक्षित, भिक्षु; सारनाथ का इतिहास मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी 1981.

पाण्डेय, उमा; वाराणसी : भारत के सांस्कृतिक केन्द्र. द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली 1980

पाण्डेय गोविन्द चन्द्र; बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान लखनऊ 1990.

पाण्डेय, वीणापाणि; हरिवंश पुराण का सास्कृतिक विवेचन, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ 1960.

बाजपेयी, कृष्ण दत्त; मथुरा भारत के सांस्कृतिक केन्द्र, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली 1980.

बापट, पी0 वी0, बौद्ध धर्म के पच्चीस सौ वर्ष, भारत सरकार पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली 1956.

बोधानन्द, भदन्त भगवान गौतम बुद्ध बुद्ध विहार रिसालदार पार्क लखनऊ प्रकाशन 1960

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद सद्धर्म पुण्डरीक, पटना, 1966

भट्ट गौरीशकर; भारतीय सामाजिक विचार, एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसाइटी. लखनऊ 1979.

भट्टाचार्य सच्चिदानन्द; भारतीय इतिहास कोश, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान , लखनऊ, 1989.

मजूमदार, रमेशचन्द्र एवं अल्टेकर अनत सदाशिव; वाकाटक गुप्त युग मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1968.

मिथिला विद्यापीठ: सद्धर्म पुण्डरीक, 1960.

मिश्र, आनन्दस्वरूप; कन्नौज का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992.

मिश्र, जयशकर; प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास. बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना 1983.

मिश्र. भाष्कर नाथ ; सॉंची मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. भोपाल, 1982

मिश्र. राम जी; दास्ताने पाटलिपुत्र , सीमान्त प्रकाशन नई दिल्ली 1989.

मुकर्जी, राधा कुमद; अशोक, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी. 1985

मुले, गुणाकर; भारत इतिहास और सस्कृति. ओरियण्ट लागमैन लिमिटेड नई दिल्ली 1973

याजदानी, जी0; दकन का प्राचीन इतिहास, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड. दिल्ली, 1977.

राज, भारती ; प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन (पूर्व वैदिक काल से लेकर तीसरी-चौथी शती ई0 तक) ब्राइट रेज़ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1985.

लाल, अँगने; अश्वघोष कालीन भारत, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1967.

लाल, अँगने; संस्कृत बौद्ध साहित्य मे भारतीय जीवन (प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी तक), कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, 1967.

लाल यमुना; भारत एवं विश्व में बौद्ध प्रसारक प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1993.

ला विमल चरण; प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, अनु0 रामकृष्ण द्विवेदी उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ 1972.

लामा, तारानाथ; भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना 1971.

विद्यालंकार, सत्यकेतु प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली 1989.

विद्यालंकार, सत्यकेतु; मध्य एशिया तथा चीन मे भारतीय संस्कृति, श्री सरस्वती सदन, मसूरी , 1980.

शर्मा, रजनीकान्त; (अनु0) अलबेरूनी का भारत, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद 1967.

शर्मा श्रीराम (आचार्य) 108 उपनिषद (साधना खण्ड संस्कृति सस्थान, बरेली 1961.

शास्त्री अजयमित्र; अजंता , भारत के सांस्कृतिक केन्द्र, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड दिल्ली 1980.

शास्त्री चन्द्रकान्त बाल खारवेल प्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1988

शास्त्री देवदत्त; उपनिषद मदाकिनी किताब महल, इलाहाबाद शकाब्द 1983

शास्त्री, नीलकण्ठ, चोलवंश द मेकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली 1979.

सत्यव्रत; दकादशोपनिषद द्वितीय भाग विजयकृष्ण लखनपाल एण्ड कम्पनी देहरादून 1970.

सांकृत्यायन, राहुल, दोहा कोश (सरहपाद), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1957.

सांकृत्यायन, राहुल; पुरातत्व निबन्धावली, किताब महल, इलाहाबाद 1958.

साकृत्यायन, राहुल; बौद्ध संस्कृति, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, 1970.

सांकृत्यायन राहुल; सिंह सेनापति, किताब महल, इलाहाबाद, 1961.

सिंह, भगवान; हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 1991.

सिंह, रघुनाथ; बुद्ध कथा, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी 1990.

श्रीवास्तव, एम० पी०; प्राचीन अदभुत भारत की सांस्कृतिक झलक, सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद 1988.

त्रिपाठी, हवलदार बौद्ध धर्म और विहार बिहार राष्ट्र परिषद, पटना 1960.

(ब) अँग्रेजी ग्रन्थ सूची

Acharya, Prasanna Kumar ; Glories of India on Indian Culture and Civilization; Jai Shankar Brothers; Allahabad; 1952.

Agarwala, V.S.; India as known to Panini : A Study of Cultural material in the Asthadyayi, University of Lucknow, 1953.

Agarwala, V.S. ; Sarnatha, 2nd edition, Department of Archaeology in India, Delhi, 1957.

Al-Biruni's India, translated into English by E. Gschau, 2 Volumes, London, 1910.

Alexander, P.C. ; Buddhism in Kerala, Annamalainger, 1949.

Alteker, A.S.; Education in Ancient India, 5th Printing, Banaras, 1957.

Ambedker, B.R.; Buddha and His Dhamma, Siddarth Prakashan, Bombay, 1980.

Ambedkar, B.R.; Writing and Speeches, Vol. 3; Education deptt. Maharasthra govt. Bombay, 1992.

Ambedkar, B.R.; Writings and Speeches, Vol. 4; Education deptt. Maharasthra govt., Bombay, 1992.

Arora, Raj Kumar; Historical and Cultural Data from the Bhavisya Puran; Sterling Publishers; New Delhi, 1972.

Ayyar, A.S. Panchpakesa; Chanakya and Chandra Gupta; V. Ramaswamy Sastrulu and Sons; Madras, 1961.

Awasthi, A.B.L.; Studies in Skanda Puran : Part three Vol. 1; Kailash Praskashan; Lucknow, 1983.

Banerjee, A.C.; Sarvastivada Literature, Calcutta, 1957.

Banerjee, A.C.; Studies of Chinese Buddhism, Calcutta, 1957.

Bapat, P.V.; (Ed.) 2500 years of Buddhism, Publications Division, government of India, Delhi, (1956) reprint 1959.

Bapat, P.V. ; Sects and Schools of Buddhism in the Cultural Heritage of India, Vol. 1, Calcutta, 1956.

Barua, B.M.; Gaya and Buddha Gaya, 2 Volumes, Calcutta, 1934.

Barua, D.K. ; Buddha Gaya Temple - its History; Boddha Gaya Temple Management Committee, Buddhar Gaya, 1981.

Barua, D.K. ; Viharas in Ancient India, Calcutta, 1934.

Barua, Kanaklal; The date of Saraha, The Journal of Assam Research Society Vol. II.

Bayley; History of Gujarat; S. Chand & Co., New Delhi, 1980.

Beal Samual; Chinese Accounts of India, 4 Volumes, S. Chand & Co.,

Beal, Samual; Travels of Huen Tsang; London, 1957.

Benerjee, R.D. ; Eastern Indian School of Medieval Sculpture, Delhi, 1933.

Benoytosh ; The Tantric Culture Among the Buddhists, the Cultural Heritage of India, Vol. IV, the Religions, Calcutta, 1956 (Chapter 16).

Benoytosh; Buddhist worship and Idolatry, in Buddhistic Studies edited by B.C. Law, Calcutta, 1932.

Bernet-Kempers; the Bronzes of Nalanda and Hindu Javanese Art, Leiden, 1933.

Bhagwat, N.K. ; Buddhism and its contribution to Universal Religion, The Maha Bodi, Vol. 64, Calcutta, B.E. 2500.

Bhandarkar, D.R. ; A list of the inscriptions of Northern India in Brahmi and its derivative scripts from about 200 A.C., Epigraphia Indica, Vols. XIX-XXII, Appendix.

Bhandarkar, B.G.; Collected Works, Volume II, B.O.R.I Poona, 1929.

Bhandarkar, R.G. ; Some Aspects of Ancient Indian Literature, Banaras, 1929.

Bhattacharya ; The Indian Buddhist Iconography, 2nd edition, Calcutta, 1958.

Bhattasali, N.K.; Iconography of Buddhist and Brahmancial Sculptures in the Dacca Museum, Dacca, 1929.

Brown, Percy ; Indian Architecture : Buddhist and Hindu Periods, 4th edition, Bombay, 1959.

Buddhist Scriptures; Selected and translated by Edward Conze, Penguin Classics, L88, 1959.

Chattopaddhyaya, A; Attisa and Tibet, Delhi, 1981.

Chau, Thich Minha ; Hsuan Tsang; the Pilgrim and Scholar, Viet-Nam Buddhist Institute, Nha-trang, 1963.

Coomaraswamy, A.K. ; Buddha and the Gospel of Buddhism (London 1928), Reprint (Bombay), 1955.

Coomaraswamy, A.K. ; Hinduism and Buddhism, Philosophical Library, New York (No date).

Cunningham, A. ; Ancient Geography of India, Banaras, 1963.

Cunningham ; Maha Bodhi or the great Buddhist Temple at Bodh Gaya, London, 1892.

Dandeker, R.N. ; Vedic Mythological tracts, Ajanta Publications (India), Delhi, 1979.

Dange, S.A. ; Sexual Symbolism from the Vedic Ritual; Ajanta Publications, Delhi, 1979.

Das Gupta, S.B. ; An Introduction to Tantric Buddhism 2nd edition, Calcutta, 1958.

De, Nundolal ; Vikramsila Monastry, J.A.S.B. (letters) New Series, Volume v, 1909, Calcutta.

De, S.K. ; History of Sanskrit Literature; Calcutta, 1947.

D' Souza, Alfred ; Children in India, Monohar Publications; New Delhi, 1979.

Dutt, Nalinaksha ; Buddisht Sects in India, Moti Lal Banarasi Das, Varanasi, 1978.

Dutt, Sukumar ; The Buddha and Five Centuries, London, 1957.

Dutt, Sukumar ; Early Buddhist Monachism, 2nd edition, Bombay, 1956 (reprint).

Dutt, Sukumar; Buddhist Monks and Monasteries, London, 1963.

Dutt, Sukumar ; Buddhist Monks and Monastries of India : their history and their contribution to Indian Culture; George Allen and Unwin Ltd., London, 1962.

Eliott ; Hinduism and Buddhism, Vol. I, London, 1954.

Forguahar, J.N. ; An outline of the Religious Literature of India, London, 1920.

Fergusson, J.B.J. ; Cave Temples of India, London, 1901.

Franke, A.H. ; Antiquities of India 2 volumes, Calcutta, 1914, 1926.

Garg, Garg Ram ; Encyclopaedia of Hindu World ; Concept Publishing Company, New Delhi, 1992. Vol. I, II & III.

Ghosh, A. ; Nalanda, the edition, New Delhi, 1959.

Gode, P.K. ; Studies in Indian Cultural History (series) Prof. P.K. Gode Collected works. Publication Committee, B.O.R. Institute, Poona, 1969.

Gour, Hari Singh; The Spirit of Buddhism, Lal Chand and Sons, Calcutta, 1929.

Goyal, S.R. ; A Religious History of Ancient India, 2 Volumes, Kusumanjali Prakashan, Meerut, 1986.

Goyal, S.R. ; Harsha and Buddhism; Kusumanjali Prakashan, Meerut, 1986.

Griswold, A Whitney ; In the University Tradition Oxford Uni. Press, London, 1957.

Grover, Satish ; The Architecture of India; Buddhist and Hindu; Vikas Publishing House Pvt. Ltd., Ghaziabad, 1980.

Grunwedel, A. ; Buddhist Art in India, London, 1901.

Guruge, Anand (ed.) ; Return to Righteousness : A Collection speeches, Essays and Letters of the Anagarika Dharma Pala, Govt. Press, 1965.

Heras, H., ; The Royal Patrons of the University of Nalanda, J.B.O.R.S., Vol. XIV, 1928.

Hira Lal, Rai Bahadur ; Descriptive List of Inscriptions in the Central Provices and Berar, Nagpur, 1916.

Jain, Jagdish Chandra ; Life in Ancient India New Book Company Ltd., Bomaby, 1947.

Jamunna Das, K. ; Tirpati Balaji was a Buddhist Shrine, New Delhi, 1911.

Joshi, L.N. ; Studies in the Buddhistic Culture of India; MotiLal Banarasidas Delhi, 1977.

Keith, A.B., ; A History of Sanskrit Literature London, 1941.

Kern, H. and Bunijieu Nenjio ; Saddharma Pundarika, St. Petersberg, 1908,

Kern, H. ; Manual of Indian Buddhism, St. Petersberg, 1910.

Law, B.C. ; India as Described in Early Texts of Buddhism and Jainism, London, 1941.

Law, B.C. ; Manual of Buddhist Historical Traditions, University of Calcutta, 1941.

Law, Narendra Nath ; Studies in Indian History and Culture ; Low Price Publications, Delhi, 1990.

Macdonell, A.A. ; A History of Sanskrit Literature, London, 1929.

Majumdar, R.C. (Ed.) ; The History and Culture of the Indian People

Vol. I - The Vedic Age; Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1950.

Vol. II - The age of Imperial Unity, Bombay, 1951.

Vol. III - The Classical Age, Bombay, 1954.

Vol. IV - The Age of Imperial Kannauj, Bombay, 1955.

Vol. V - The Struggle for Empire, Bombay, 1957.

Max Mullar ; A History of Ancient Sanskrit Literature; Allahabad, 1912.

Mishra, yogendra ; History of Veheha ; Janki Prakashan, Patna, 1981.

Mishra, Yogendra ; An Early History of Vaishali, Motilal Banarsidas, Delhi, 1962.

Mookerji, R.K. ; Asoka, Motilal Banarsidas, Varanasi, 1954.

Mookerji, R.K. ; Harsha, Motilal Banarsidas, Varnasi, 1960.

Mookerji, R.K. ; Ancient Indian Education, London, 1947.

Murthy, H.V. Srinivasa ; History and Culture of India to 1000 A.D.; S. Chand and Co., New Delhi, 1980.

Murthy, K. Krishna ; Material Culture of Sanchi, Sandeep Prakashan, Delhi, 1983.

Pańdey, Raj Bali ; Historical Literary Inscriptions, Varanasi, 1911.

Radhakrishnan, S. ; Indian Philosophy, Vol. I, London, 1940.

Ramteke, D.L. ; Revival of Buddhism in Modern India, New Delhi, 1983.

Sankalia, H.D. ; University of Nalanda, Madras, 1934.

Sastri, Har Prasad ; Literary History of the Pala Period, J.B.O.R.S., Vol. V, 1919 (Patna).

Sastri, Hiranand ; Nalanda and its Epigraphic Material, M.A.S.I., No. 66, Calcutta, 1942.

Sastri Hiranand ; 'Nalanda, in Ancient Literature', Proceedings of the 5th Oriental Conference, Poona, 1930.

Smith, V.A. ; History of Indian Culture, Oxford, 1930.

Takakus, J.A. ; A Record of the Buddhist Religion in India and Malaya Archipelego, Delhi, 1966.

Thaplyal, K.K. ; Studies in Ancient Indian SEals, Akhila Bhartiya Sanskrit Parishad, Lucknow, 1972.

Upasak, C.S. ; Nalanda : Past and Present; Nava Nalanada Mahavihara, Nalanda, 1977.

Watters, Thomas ; On Yuan Chwangs Travels in India, Vol. I & II, Reprinted, Delhi, 1961.

Winternitz, M.A. ; History of Indian Literature, Calcutta,
Vol. I - 1927.
Vol.II - 1933.

----------:0:----------